ISSN : 2348 - 0890

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला चतुर्थ पुष्पम्

भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा

प्रधान सम्पादक

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय

कुलपति

सम्पादक

प्रो. प्रेम कुमार शर्मा

ज्योतिष विभाग

उप-सम्पादक

प्रो. बिहारी लाल शर्मा



ज्योतिष विभाग

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-110016

ISSN : 2348 - 0890

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला चतुर्थ पुष्प

भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा

प्रधान सम्पादक
प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति

सम्पादक
प्रो. प्रेम कुमार शर्मा
ज्योतिष विभाग

उप-सम्पादक
प्रो. बिहारी लाल शर्मा



ज्योतिष विभाग
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली-16

ISSN : 2348 - 0890

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला चतुर्थ पुष्प

भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा

प्रधान सम्पादक

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय

कुलपति

सम्पादक

प्रो. प्रेम कुमार शर्मा

ज्योतिष विभाग

उप-सम्पादक

प्रो. बिहारी लाल शर्मा



ज्योतिष विभाग

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-16

प्रकाशकः
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्
नवदेहली-११००१६

जनवरी, 2015

मूल्यम् : 150/- ₹

मुद्रकः
अमरप्रिंटिंगप्रैसः
देहली-११०००९
दूरभाषः : 9871699565, 8802451208

पुरोवाक्

वेदपुरुष का नेत्र रूप ज्योतिषशास्त्र समस्त चराचर जगत के भूत भविष्य तथा वर्तमान का बोध कराने वाला शास्त्र है। जिस प्रकार अन्धकार में दीपक की सहायता से सभी वस्तुएँ स्पष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र की सहायता से मानव जीवन की सम्पूर्ण शुभाशुभ घटनाओं का संज्ञान सरलता से हो सकता है।

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतद् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥ लघुजातक 1/3

मानव जीवन में व्याप्त अनेक प्रकार की व्याधियों का ज्योतिषीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्त रोगों के मूल में ग्रहों का प्रभाव है। ज्योतिषशास्त्र के द्वारा रोगों के ज्ञान के लिए सर्वप्रथम प्राचीन ग्रन्थों में निरूपित प्रत्येक ग्रह के स्वरूप, तत्त्व, प्रकृति, कारकत्व, शुभाशुभ फल इत्यादि का उचित ज्ञान होना आवश्यक है आयुर्वेद शास्त्र और ज्योतिषशास्त्र में परस्पर सम्बन्ध होने से दोनों ही शास्त्र मानव के रोगारोग्य का विचार करते हैं। **मिथ्याहारविहाराभ्यां रोगोत्पत्तिः प्रजायते** आयुर्वेद की इस उक्ति के अनुसार अनुचित आहार और विहार से वात, पित्त और कफ इन तीनों की साम्यावस्था में विक्षोभ होने से रोग उत्पन्न होते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार **जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते** अर्थात् अन्य जन्म–जन्मान्तरों में किया गया अनुचित कार्य प्राप्त जन्म में व्याधि के रूप में उत्पन्न होता है।

आचार्य चरक लिखते हैं कि **कर्मजा व्याधयः केचित् दोषजाः सन्ति चापरे** अर्थात् कुछ व्याधियाँ पूर्व जन्मों के प्रभाव से होती हैं तथा कुछ व्याधियाँ शरीरस्थ दोष (वात, पित्त, कफ) के प्रभाव से होती हैं। त्रिदोष जन्य व्याधियों का निदान चिकित्सा विज्ञान के द्वारा होता है, किन्तु कर्मज रोगों का निदान तथा उसके कारण का ज्ञान केवल ज्योतिषशास्त्र के द्वारा सम्भव है।

ज्योतिषशास्त्र ग्रह एवं राशियों पर आधारित शास्त्र है, ग्रहों के प्रभाव से ही मानव–जीवन की रूप रेखा तैयार होती है। ग्रहों के अशुभ प्रभाव से छुटकारा पाने के लिए मुख्यतः मणि, मन्त्र, औषधि, दान एवं स्नान का उपयोग किया जाता है, यही प्रक्रिया ग्रह चिकित्सा कहलाती है।

तच्छांतिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः॥ वीरसिंहावलोक पृ. 4

आयुर्वेद शास्त्र में आहार तथा विहार के अनुचित उपयोग से त्रिदोषों का प्रकुपित होना रोग का हेतु कहा गया है, किन्तु जगत में यह भी दृश्यमान है, कि उचित आहार–विहार के होने पर

भी रोगों का उद्‌भव हो जाता है। इस तरह से जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि में कर्म प्रकोप कहलाते हैं। इस प्रकार कर्म प्रकोपों की चर्चा ज्योतिषशास्त्र में त्रिविध कर्मों के माध्यम से विशिष्ट रूप से की गई है।

ज्योतिषशास्त्र में कर्म-प्रकोपों की चर्चा के साथ-साथ उसके निदान की एक नवीन विधि ही भैषज्य ज्योतिष का रूप लेकर समाज में प्रथित हो रही है। इस परिप्रेक्ष्य में **श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ** के ज्योतिष विभाग द्वारा भैषज्य ज्योतिष पर नैकविध अध्ययन-अध्यापन का प्रयास किया जा रहा है जो अत्यन्त श्लाघ्यपूर्ण है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा प्रदत्त विशेष सहायता योजना (सैप-डी.आर.एस.-II) के माध्यम से यहाँ शोध कार्यों के साथ-साथ सायंकालीन पाठ्यक्रम का सञ्चालन किया जा रहा है, जो इस विषय में गहन अध्ययन के लिए अतीव सहायक है। इसी क्रम में ज्योतिष विभाग द्वारा **'भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा' चतुर्थ अङ्क** का संपादन किया जा रहा है। अतः मैं सम्पादक **प्रो. प्रेमकुमार शर्मा** तथा उपसंपादक **प्रो. बिहारी लाल शर्मा** को धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। क्योंकि इनके द्वारा किया जा रहा महनीय प्रयास भैषज्य ज्योतिष की उपयोगिता तथा ज्योतिषशास्त्र के लोककल्याणकारी स्वरूप को उपस्थापित करेगा।. ऐसी कामना करते हुए **'भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा' चतुर्थ अङ्क** इस षाण्मासिकी पत्रिका को विद्वानों के लिए समर्पित करते हुए अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा है।

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति

सम्पादकीय

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।[1]

जिस शास्त्र में हितायु, अहितायु, सुखायु, दुःखायु इन चार प्रकार की आयु के हितकर और अहितकर द्रव्य, गुण, कर्म, आयु का प्रमाण एवं लक्षण कहा गया है, उसे आयुर्वेद कहा गया है। इस सम्पूर्ण प्राणिजगत् में स्वेदज, उद्भिज, अण्डज और जरायुज ये चार प्रकार के प्राणी कहे गये हैं, इन सभी में पुरुष प्रधान होने के कारण पुरुष आयुर्वेदशास्त्र का अधिष्ठान कहा गया है।[2]

जगत् स्रष्टा ने पुरुष की सुखायु के लिए प्राकृतिक सृष्टि को किया। किन्तु के भौतिकवादी पुरुष ने विकासवाद के नाम पर औद्योगिकीकरण से अन्धाधुन्ध प्रकृति दोहन से जल, स्थल एवं वायु को दूषित करने के कारण सभी प्रकार के प्राणियों को दुःखायु जीवन जीने के लिए विवश कर दिया है। प्रदूषण के कारण कई जीव-जन्तुओं की प्रजातियाँ तो काल के ग्रास में समा गयी हैं। इसी प्रकार मानव जाति भी प्रदूषित जलवायु एवं दूषित अन्न के सेवन से नित्य नयी-नयी व्याधियों से आक्रान्त होकर दुःखायु जीवन जीने को विवश हो रही है। यदि प्रकृति के अन्धाधुन्ध दोहन की यही स्थिति रही तथा पर्यावरण को स्वच्छ रखने का प्रयास न किया गया तो अगले कुछ दशकों में मानव का सुखायु जीवन दुर्लभ हो जायेगा। मनुष्य जितना प्राकृतिक जीवन जीने का प्रयास करेगा उतना स्वस्थ एवं सुखायु रहेगा, जितना प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर अप्राकृतिक जीवन जीने का यत्न करेगा, उतना अस्वस्थ एवं दुःखायु होगा। भारतीय शास्त्रों में कर्म के आधार पर सुखायु एवं दुःखायु का विचार किया गया है। शुभकर्मों के आधार पर सुखायु एवं अशुभ कर्मों के आधार पर दुःखायु कही गयी है। वस्तुतः दुःख और रोग के निदान में आयुर्वेद शास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र का विशिष्ट स्थान है। आयुर्वेद में काल, बुद्धि तथा इन्द्रियविषय के मिथ्यायोग, अयोग और अतियोग को शारीरिक एवं मानसिक रोग का कारण तथा काल, बुद्धि एवं इन्द्रियों के समयोग को आरोग्य का कारण कहा गया है।[3]

---

1 चरकसंहिता, सूत्रस्थानम् अध्याय 1, श्लो. सं. 40

2 सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय 1, सूत्र सं. 22
तथा सुखानां योगस्तु सुखानां कारणं समः।।

3 कालबुद्धीन्द्रियार्थानां योगो मिथ्या न चाति च। द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतुसंग्रहः।।
शरीरं सत्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः। चरकसंहिता, सूत्रस्थानम्, श्लो. सं. 53-54

भी रोगों का उद्भव हो जाता है। इस तरह से जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि में कर्म प्रकोप कहलाते हैं। इस प्रकार कर्म प्रकोपों की चर्चा ज्योतिषशास्त्र में त्रिविध कर्मों के माध्यम से विशिष्ट रूप से की गई है।

ज्योतिषशास्त्र में कर्म-प्रकोपों की चर्चा के साथ-साथ उसके निदान की एक नवीन विधि ही भैषज्य ज्योतिष का रूप लेकर समाज में प्रथित हो रही है। इस परिप्रेक्ष्य में **श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ** के ज्योतिष विभाग द्वारा भैषज्य ज्योतिष पर नैकविध अध्ययन-अध्यापन का प्रयास किया जा रहा है जो अत्यन्त श्लाघ्यपूर्ण है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा प्रदत्त विशेष सहायता योजना (सैप-डी.आर.एस.-।।) के माध्यम से यहाँ शोध कार्यों के साथ-साथ सायंकालीन पाठ्यक्रम का सञ्चालन किया जा रहा है, जो इस विषय में गहन अध्ययन के लिए अतीव सहायक है। इसी क्रम में ज्योतिष विभाग द्वारा **'भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा' चतुर्थ अङ्क** का संपादन किया जा रहा है। अतः मैं सम्पादक **प्रो. प्रेमकुमार शर्मा** तथा उपसंपादक **प्रो. बिहारी लाल शर्मा** को धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। क्योंकि इनके द्वारा किया जा रहा महनीय प्रयास भैषज्य ज्योतिष की उपयोगिता तथा ज्योतिषशास्त्र के लोककल्याणकारी स्वरूप को उपस्थापित करेगा। ऐसी कामना करते हुए **'भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा' चतुर्थ अङ्क** इस षाण्मासिकी पत्रिका को विद्वानों के लिए समर्पित करते हुए अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा है।

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति

सम्पादकीय

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।[1]

जिस शास्त्र में हितायु, अहितायु, सुखायु, दुःखायु इन चार प्रकार की आयु के हितकर और अहितकर द्रव्य, गुण, कर्म, आयु का प्रमाण एवं लक्षण कहा गया है, उसे आयुर्वेद कहा गया है। इस सम्पूर्ण प्राणिजगत् में स्वेदज, उद्भिज, अण्डज और जरायुज ये चार प्रकार के प्राणी कहे गये हैं, इन सभी में पुरुष प्रधान होने के कारण पुरुष आयुर्वेदशास्त्र का अधिष्ठान कहा गया है।[2]

जगत् स्रष्टा ने पुरुष की सुखायु के लिए प्राकृतिक सृष्टि को किया। किन्तु के भौतिकवादी पुरुष ने विकासवाद के नाम पर औद्योगिकीकरण से अन्धाधुन्ध प्रकृति दोहन से जल, स्थल एवं वायु को दूषित करने के कारण सभी प्रकार के प्राणियों को दुःखायु जीवन जीने के लिए विवश कर दिया है। प्रदूषण के कारण कई जीव-जन्तुओं की प्रजातियाँ तो काल के ग्रास में समा गयी हैं। इसी प्रकार मानव जाति भी प्रदूषित जलवायु एवं दूषित अन्न के सेवन से नित्य नयी-नयी व्याधियों से आक्रान्त होकर दुःखायु जीवन जीने को विवश हो रही है। यदि प्रकृति के अन्धाधुन्ध दोहन की यही स्थिति रही तथा पर्यावरण को स्वच्छ रखने का प्रयास न किया गया तो अगले कुछ दशकों में मानव का सुखायु जीवन दुर्लभ हो जायेगा। मनुष्य जितना प्राकृतिक जीवन जीने का प्रयास करेगा उतना स्वस्थ एवं सुखायु रहेगा, जितना प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर अप्राकृतिक जीवन जीने का यत्न करेगा, उतना अस्वस्थ एवं दुःखायु होगा। भारतीय शास्त्रों में कर्म के आधार पर सुखायु एवं दुःखायु का विचार किया गया है। शुभकर्मों के आधार पर सुखायु एवं अशुभ कर्मों के आधार पर दुःखायु कही गयी है। वस्तुतः दुःख और रोग के निदान में आयुर्वेद शास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र का विशिष्ट स्थान है। आयुर्वेद में काल, बुद्धि तथा इन्द्रियविषय के मिथ्यायोग, अयोग और अतियोग को शारीरिक एवं मानसिक रोग का कारण तथा काल, बुद्धि एवं इन्द्रियों के समयोग को आरोग्य का कारण कहा गया है।[3]

---

1 चरकसंहिता, सूत्रस्थानम् अध्याय 1, श्लो. सं. 40

2 सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय 1, सूत्र सं. 22
तथा सुखानां योगस्तु सुखानां कारणं समः।।

3 कालबुद्धीन्द्रियार्थानां योगो मिथ्या न चाति च। द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतुसंग्रहः।।
शरीरं सत्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः। चरकसंहिता, सूत्रस्थानम्, श्लो. सं. 53-54

ज्योतिषशास्त्र में वैदिकदर्शन के कर्मवाद के सिद्धान्त के अनुसार जन्मान्तर में किये गये पाप को व्याधि का कारण कहा गया है तथा उसकी शान्ति औषधि, दान, जप, होम और पूजा के अनुष्ठान से होती है।[4]

चरकसंहिता में रोग के तीन भेद कहे गये हैं[5]-(1) निज (शारीरिक), (2) मानसिक तथा (3) आगन्तुक, किन्तु सुश्रुतसंहिता में रोग का चतुर्थ भेद 'स्वाभाविक' कहा गया है।[6] निज अथवा शारारिक रोग चरक के मत से वात, पित्त, कफ तथा सुश्रुत के मत से 'रक्त' के दोष से भी उत्पन्न होते हैं। मानसिक रोग चरक के मत से इष्ट वस्तु के न मिलने तथा अनिष्ट वस्तु के मिलने से उत्पन्न होते हैं। तथा सुश्रुत के मत से क्रोध, शोक, भय, हर्ष, दुःख, ईर्ष्या, असूया, दीनता, मात्सर्य, काम, लोभ तथा इच्छा और द्वेष के भेदों से उत्पन्न होते हैं। आगन्तुक रोग भूत (संक्रामक विषाणु) आदि विष, वायु, अग्नि तथा शस्त्र आदि के अभिघात से तथा स्वाभाविक रोग भूख, प्यास, वृद्धावस्था, मृत्यु, निद्रा आदि से उत्पन्न होते हैं।[7] सुश्रुत ने पुनः रोगों (दुःखों) के आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीन भेदों को सात समूहों में विभक्त किया है। आध्यात्मिक रोग आदिबल प्रवृत्त (मात-पिता के माध्यम से होने वाले वंशज रोग), जन्मबल प्रवृत्त तथा दोषबलप्रवृत्त तीन प्रकार के हैं। आधिभौतिक रोग संघात प्रवृत्त रोग है तथा आधिदैविक रोग कालबलप्रवृत्त, दैवबलप्रवृत्त तथा स्वभावबलप्रवृत्त तीन प्रकार के हैं।[8]

1) **आदिबलप्रवृत्त (वंशज रोग)**-पितृज एवं मातृज शुक्र-आर्त्तव दोष के कारण कुष्ठ, अर्श आदि आनुवंशिक रोग सन्तति में उत्पन्न होते हैं।

2) **जन्मबलप्रवृत्त रोग**-जन्मजात, पंगुत्व, अन्धत्व, बधिरत्व, मूकत्व मिन्मिनत्व (अनुनासिक ध्वनि) वामन आदि रोग गर्भावस्था में माता के दूषित आहार विहार से उत्पन्न होते हैं।

3) **दोषबलप्रवृत्तरोग**- मिथ्याहार-विहार के कारण वात पित्त एवं कफ प्रकृति की विषमावस्था (विकृति) के कारण आमाशय से कफज और पित्तज तथा पक्वाशय से वातज शारीरिक रोग तथा रजोगुण और तमोगुण की विषमावस्था (दोष) से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं।

4) **सङ्घातबलप्रवृत्तरोग**- आधिभौतिक दुःखों में सङ्घातबलप्रवृत्त आगन्तुक रोग कहलाते हैं। ये सङ्घातबलप्रवृत्त रोग दुर्बल के बलवान के साथ विग्रह अर्थात् लड़ने से होते हैं।

---

4 जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते। तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः।।
प्रश्नमार्ग, अध्याय 13, श्लो. सं. 29

5 चरकसंहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय 11, सूत्र सं. 48

6 सुश्रुत संहिता, अध्याय 1, सूत्र सं. 24

7 तत्रैव सूत्र सं. 25

8 सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय 24, सूत्र सं. 4-7

ये दो प्रकार के हैं- शस्त्रजन्यसङ्घात के द्वारा तथा काल (सर्प) आदि हिंसक प्राणियों के काटने आदि से उत्पन्न होते हैं।

5) कालबलप्रवृत्त रोग- शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, आतप (धूप) आदि काल से उत्पन्न होने वाले रोग कालबलप्रवृत्त कहलाते हैं। ये रोग भी दो प्रकार के हैं- व्यापन्नर्तुकृत अर्थात् विकृत ऋतुओं के कारण तथा अव्यापन्नर्तुकृत अर्थात् प्राकृत ऋतुओं के कारण उत्पन्न होने वाले रोग।

6) दैवबलप्रवृत्त रोग- दैवशक्ति से उत्पन्न देवता, गुरु, सिद्धपुरुषों के साथ द्रोह करने से उनके अभिशाप से उत्पन्न अथवा अथर्ववेद प्रणीत आभिचारिक मन्त्रों द्वारा उत्पन्न अथवा रुग्ण के समीप रहने से उपसर्ग द्वारा उत्पन्न संक्रामक रोग दैवबलप्रवृत्त कहलाते हैं। ये भी दो प्रकार के हैं- विद्युत् अशनि (वज्र) आदि के द्वारा तथा पिशाच आदि के द्वारा उत्पन्न रोग। ये पिशाचादि जन्य रोग भी दो प्रकार के हैं- रोगी के पास रहने से संसर्गजन्य तथ आकस्मिक् देवद्रोह आदि के कारण उत्पन्न रोग।

7) स्वभावबलप्रवृत्तरोग - क्षुधा, पिपासा (प्यास), जरा (वृद्धावस्था), मृत्यु और निद्रा आदि से उत्पन्न स्वभावबलप्रवृत्त रोग कहलाते हैं। ये भी हैं- कालजन्य और अकालजन्य भेद से दो प्रकार के हैं। शरीर की सुरक्षा करने पर भी जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे कालजन्य तथा बिना सुरक्षा के जो रोग होते हैं, वे अकालजन्य कहलाते हैं। कालबलप्रवृत्त, दैवबलप्रवृत्त तथा स्वभावबलप्रवृत्त रोग आधिदैविक दु:ख कहलाते हैं।

इस प्रकार आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दु:खों में सभी रोगों का समावेश हो जाता है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विद्यापीठ के ज्योतिषविभाग को प्रदत्त विशेष सहायता कार्यक्रम (सैप) के अन्तर्गत आयोजित संगोष्ठियों, विशिष्ट व्याख्यानों एवं ज्योतिष तथा आयुर्वेद के शोध लेखों में से विभागीय प्रकाशन समिति के द्वारा मानक शोधात्मक लेखों का चयन करके **'भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा'** का यह **चतुर्थ षाण्मासिक अङ्क** प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। आशय है हमारा यह प्रयास रोग से ग्रस्त समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। विद्यापीठ एवं ज्योतिष विभागीय विभिन्न पाठ्यक्रमों के उन्नयन के लिए सर्वप्रथम विद्यापीठ के संस्थापक कुलपति **श्रद्धेय स्व. मण्डन मिश्र** एवं उन्हीं के प्रयास को चरम और परमसीमा तक पहुँचाने वाले पूर्वकुलपति **प्रो. वाचस्पति उपाध्याय**, ज्योतिष-विभाग के उन्नायक **श्रद्धेय प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी** जी का स्मरण करते हुए विद्यापीठ के वर्तमान कुलपति **प्रो. रमेशकुमार पाण्डेय** के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। ज्योतिष विभाग के अध्यक्षचर **प्रो. ओंकारनाथ चतुर्वेदी** जी एवं **आचार्य रामदेव झा** जी का ज्योतिष विभाग की प्रत्येक गतिविधियों को आगे बढ़ाने में आशीर्वाद रहता है। आप दोनों विभूतियों का अभिवादन करते हुए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। विद्यापीठ के कुशलप्रशासक **डॉ. बी.के. महापात्र**, वित्ताधिकारी **श्रीमती कल्पना सिंह** सहायक कुलसचिव

(प्रशासन) **डॉ. शिवदत्त त्रिपाठी** सहायक कुलसचिव (वित्त) **अजय कुमार टण्डन** तथा प्रकाशन के सभी अधिकारियों का पत्रिका के प्रकाशन में सहयोग के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इसी सन्दर्भ में पत्रिका उप-सम्पादक **प्रो. बिहारी लाल शर्मा** एवं ज्योतिष विभागीय प्रकाशन समिति के अपने सभी सदस्यों का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ, जिनके अथक प्रयास से यह चतुर्थ अङ्क समाज एवं राष्ट्र तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त हुई है।

प्रो. प्रेम कुमार शर्मा
अध्यक्ष-ज्योतिष-विभाग
को-आर्डिनेटर सैप (डी.आर.एस.-ज्योतिष)

विषयानुक्रमणिका

सम्पादक मण्डल

रोगोत्पत्ति एवं उपचार

म.म. स्व. कल्याणदत्त शर्मा

प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ, ज्यौतिषशास्त्र ने अपने जन्म के साथ ही ब्रह्माण्ड में मनुष्य की स्थिति का अनुभव किया, उसके आकलन में शरीर में ब्रह्माण्डीय तत्वों की स्थापना की। ऊर्जा के प्रभाव को ज्योतिष शास्त्र में ९, १२, २७ भागों में विभाजित किया है, यही नवग्रह, बारह राशि और नक्षत्र के रूप में माने जाते हैं। इसका सम्बन्ध मानवीय चेतना से होता है, इन सम्बन्ध सूत्रों के कारण ही तो ज्यौतिष शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। ज्योतिषशास्त्र ब्रह्माण्डीय ऊर्जा को मानव शरीर के विभिन्न अंगों में स्थापित करता है। आयुर्वेद इन ग्रहों के साथ मानव प्रकृति को जोड़ता है। इस प्रकार मूल में आयुर्वेद और ज्यौतिष दोनों अविभाजित रूप से सम्बन्धित पाये जाते हैं। इसी कारण ग्रहों की प्रतिकूलता के शमन के लिये आयुर्वेद की औषधियों का प्रचलन प्राप्त होता है। आयुर्वेद के अनुसार रोग तीन असंतुलनों के कारण होती है। ये त्रिदोष वात, पित्त, कफ ज्यौषिशास्त्र के अनुसार सूर्य और मंगल पित्त प्रकृति को, चन्द्र कफ और कुछ वात मात्रा को, बुध वात, पित्त, कफ तीनों को, गुरु कफ को शुक्र वात और पित्त की अधिकता को एवं शनि वात को तथा राहु और केतु वात को प्रभावित करते हैं। १२ राशियों का कालपुरुष के आधार पर मेष का शिर, वृष का मुख, मिथुन गला व स्कंध का, कर्क हृदय, सिंह का आमाशय, कन्या का कमर और आंतड़ियाँ, तुला का अमाशय का निचला भाग, वृश्चिक का गुप्ताङ्ग, धनु का जंघा, मकर का घुटना, कुम्भ की पिण्डलियाँ और मीन का दोनों पैर पर स्थान निश्चित किया है। मानव शरीर की रचना अद्‌भुत, अनोखी और जटिल है। शरीर में भिन्न-भिन्न तन्त्र हैं। सभी तन्त्रों के आपसी सहयोग से शरीर रूपी यन्त्र सुचारू रूप से चलता है। कोई तन्त्र यदि अपनी क्रिया पद्धति को उचित ढ़ंग से नहीं चला पाने के अभाव में दूसरे तन्त्र को प्रभावित करता हो और यह प्रभाव लम्बे समय तक चलता रहे तो रोग और विकार उत्पन्न होते हैं। विभिन्न प्रकार के तन्त्रों के रोग भी अलग-अलग होते हैं। ऐसी परिस्थिति में चिकित्सा पद्धति द्वारा रोग नष्ट कर शरीर को सुचारु रूप से चलाया जाता है। रोग नष्ट करने की चिकित्सा पद्धतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। उसमें यौगिक प्रक्रिया के माध्यम से सरलता और अल्पव्यय करने पर नष्ट किया जा सकता है। शरीर के सभी तन्त्रों की महत्ता विशिष्ट है। परन्तु जीवन जीने के लिये साँस लेना, भोजन करना, और मल-मूत्र विसर्जन करना महत्वपूर्ण कार्यों के तन्त्रों की प्रधानता है। अस्थितन्त्र, पेशीतन्त्र रक्त संचरण तन्त्र, पाचन तन्त्र, श्वासतन्त्र एवं मल मूत्र विसर्जन तन्त्र। **अस्थि तन्त्र**–शरीर के आधार को सुदृढ़ कर प्रगतिशील बनाता है। **पेशी तन्त्र**–सूचनाओं के संप्रेषण का कार्य करता है।

रक्त सञ्चारण तन्त्रः- जहाँ जीवन सरल रूप में बहता है, पाचन तन्त्र भोजन पचाने वाला तन्त्र है, **श्वास तन्त्र**–प्राणतत्व का प्रमुखता से सन्तुलन करता है। **मलमूत्र विसर्जन तन्त्र**–मल, मूल के विसर्जन का तन्त्र है जो अवशेषित भोजन का निस्सार भाग मल, मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकालता है। शरीर के दृढ़ता व बलवत्ता के लिये आहार की पाचन क्रिया उपरान्त अन्य प्रक्रियाओं के अन्त में हड्डी के रूप में शरीर में स्थित होता रहता है। इसी का नाम अस्थि तन्त्र है। अन्य इसके सहायक तन्त्रों की प्रक्रिया उचित रूप से चलने पर यह तन्त्र दृढ़ होता है। अन्यथा शरीर का अस्थि भाग निर्बल व रोगी बन जाता है।

पेशी तन्त्रः- अन्य तन्त्रों को उचित सूचना देकर संकेत करता है जिससे वे सुचारू रूप में कार्य करते हैं।

रक्तसञ्चालनतन्त्र- रक्त प्रवाहिका नाड़ियों द्वारा शुद्ध अशुद्ध रक्त का संचरण करता रहता है।

पाचनतन्त्र- भोजन पचाने के तन्त्रों की देखरेख करता है।

श्वास तन्त्र- (पञ्चप्राण) प्राण-अपान-समान-उदान-व्यान प्राणों का उचित व अनुचित क्रियाकलाप करता रहता है।

उत्सर्जन तन्त्र- गुप्तेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और रोम कूपों द्वारा भलाहि को शरीर से बाहर निकालने की प्रक्रिया करता रहता है।

इन सभी तन्त्रों में से प्रत्येक तन्त्र की विकृति को दूर करने में योगिक प्रक्रिया के अन्तर्गत आसन, प्राणायाम, शोधन प्रक्रिया, और ध्यान करने का विधान है।

पश्चिमोत्तान आसन, भुजंगासन, गोमुखासन, मण्डूकासन, मयूरासन, वज्रासनादि प्रमुख आसन हैं। प्राणायाम में नाडीशोधन, भस्रिका, भ्रामरी, शीतली, सीत्कारी एवं सूर्य भेदन प्राणायाम। शोधनप्रक्रिया में नेति, वमन, लघुशंरव प्रक्षाण एवं कपाल भाति क्रिया उपयोगी होती है। ध्यान प्रक्रियाः- नेत्र बाहर से बन्द कर अन्दर खोलकर एकाग्रचित्त से आराधन मानसिक रोगों को नष्ट कर आध्यात्मिक प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है।

अस्थि तन्त्र के विकृत होने पर महाभयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। कैन्सर, बीन टयूमर, ओसीटयोमेलिशिप बोन इन्यूक्शन, आदि रोग हड्डियों को जर्जरित कर देते हैं। मार्जारी, भुजंगासन, सूर्य नमस्कार आदि से रोग मुक्ति होती है। रोगोत्पत्ति के लक्षण उत्पन्न होते ही योग्य योगाभ्यासी मनुष्य के संरक्षण में ही इनका प्रयोग करना चाहिये। रोग बढ़ने पर ये आसन सहायक नहीं होते हैं। नाड़ी शोधन में भस्त्रिका प्राणायाम, शोधन प्रक्रिया में नेति, कुञ्जल तथा योगनिद्रा आदि से भी इन रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है।

संचरणतन्त्र- इस तन्त्र की विकृति से हार्ट डीजीज, मायेस्थनिया, मस्कुलर डिस्टोफीस, मायोटोनिक डिस्ट्रोफी, आदि रोग उत्पन्न होते हैं। पवन मुक्तासन, मार्जारी, ताड़ासन, कटि चक्रासन आदि के अभ्यास द्वारा तथा प्राणायाम व षट्कर्म भी उपयोग में लाये जाते हैं। शरीर का मुख्य अंश जल होता है। जो रक्त, प्लाज्मा आदि के रूप में बिछे कणों से सूक्ष्म-सूक्ष्मवाहिकाओं को प्रवाहित करता रहता है, इसमें रोमेटिक हार्ट डीजीज, एंडो कर्डिटीस, पेरीकार्डाटीस, हार्ड पर टेन्शन, आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इसमें शवासन्, पवन मुक्तासन, वज्रासन, गोमुखासन, सर्वासन, जलनेति, उज्जायी, कपाल भाति, शीतली और सोहं या ॐ मन्त्र का जप करना लाभप्रद होता है।

प्रजनन तन्त्र- इसमें प्रोटेस्ट, कैंसर, सर्वाइकल कैंसर, जेनाइटज हरपीस एड्स इफ्लेमेटरी आदि रोग उत्पन्न होते हैं। भुजंगासन, धनुषासन, ताडासन, भद्रासन, नेति जलेनति मूलबन्ध, वज्रोली, नाडीशोधन भस्रिका प्राणायाम, नाद योग और विशिष्ट मन्त्र जप से रोग निवृत्ति होती है।

सूर्यादि ग्रहों का शरीर पर प्रभावः- सूर्य शारीरिक दृष्टि से हड्डी, नीचे के दाँत, बड़ी आँत और माँसपेशियों पर प्रभाव डालता है, हृदय रक्तसंचालन केन्द्र, नेत्र, दन्त, कान पर भी प्रभाव डालता है।

सूर्यजन्यरोग :- ज्वारपित्तोष्ण मृगी, देहताप, चर्मरोग, नेत्ररोग, क्षय हृदय रोग, पित्त ज्वर अतिसार, आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

चन्द्र द्वारा रोगः- आन्तरिक दृष्टि से संवेदन भावना जल्दबाजी, घरेलू जीवन का चिन्तन, कल्पना, सतर्कता एवं लाभेच्छा उत्पन्न करता है। शारीरिक दृष्टि से उदर, पाचन शक्ति, अंसि गर्भाशय, गुप्तांग, आँख और सभी गुप्ताङ्गों को प्रभावित करता है। छाती व गले के रोग, निद्रा रोग, कफरोग मलेरिया मन्दाग्नि मूत्ररोग, जलोहर पाण्डुरोग पीलिया रक्तदोष सर्दी जुकाम आदि रोगों से उत्पन्न होते हैं।

मंगल आन्तरिक दृष्टि से साहस दृढ़तर आत्मविश्वास, क्रोध लड़ने झगड़ने की प्रवृति, प्रभुत्व व बहादुरी आदि का प्रतीक है। शारीरिक दृष्टि से खोपड़ी, नाक व गाल पर प्रभाव डालता है। **रोगः**- त्रिदोष नेत्ररोग पित्त ज्वर, गुल्म, मृगी, मज्जा चर्म रोग चेचक गिल्टी फोड़ा फुंसी अग्नि व विषजन्य रोग शस्याघात फेफड़ा गला जीभ आँख नाक व कान सम्बन्धी रोगोत्पन्न करता है।

बुधजन्यरोगः- आन्तरिक दृष्टि से समझदारी, स्मरण शक्ति, खण्डन मण्डन शक्ति, मनोविनोद लेखनकला तर्क करना आदि को प्रभावित करता है। शारीरिक दृष्टि से वाणी, जिह्वा, स्नायु, क्रिया, मस्तिष्क, हाथ तथा कलापूर्ण कार्योपादक अंगों पर प्रभाव डालता है।

रोगः- गले व नाक में होने वाले रोग वातज व्याधि, चर्मरोग, अस्थमा मन्दाग्नि, गुप्तरोग कुष्ठ व शूल रोगोत्पत्ति बुध ग्रह से होती है। प्रेतबाधा भी उत्पन्न करता है।

गुरुजन्य रोगः- आन्तरिक दृष्टि से विचार, मनोभावना, उदारता सौंदर्य, प्रेम, न्यायोचित विचार व्यक्ति, भक्ति, व्यवस्था बुद्धि, प्रशासनिक कार्य ज्ञान ज्योतिष, तन्त्र मन्त्र विचार शक्ति आदि को प्रभावित करता है। शारीरिक दृष्टि से पैर जंघा हृदय पाचन क्रिया रक्त व नसों को प्रभावित करता है।

रोगः- आंतों का रोग, हरनिया, कर्णरोग कमर से जंघा तक के रोग देवद्विजयक्ष किन्नर आदि के शाप से रोग प्रदान करता है। **शुक्रजन्य रोगः**- शुक्र आन्तरिक दृष्टि से प्रेमस्नेह सौन्दर्य आनन्द विश्रान्ति स्वच्छता कामुकता, कार्यक्षमता को प्रभावित करता है। शारीरिक दृष्टि से गला गुर्दा लिंग केश आकृति व वर्ण को प्रभावित करता है।

रोगः- कफज, वातज व्याधि, नेत्रपीड़ा मूत्र सम्बन्धी रोग, मूत्रकृच्छ्र प्रमेह रोग, गुप्तेन्द्रिय रोग वीर्य जनित रोग, लषा रोग शुक्र उत्पन्न करता है।

शनिजन्य रोग- आन्तरिक दृष्टि से तात्विकज्ञान गूढ़रहस्यमय ज्ञान अनुसन्धात्मक कार्य, आलस्य मन्द गति से कार्य करना, प्रमाद यदा कदा मूर्खता के विचार, विप्राप्रियता आदि को प्रभावित करता है। शारीरिक दृष्टि से हड्डी जंघा से पैर तक का भाग, बड़ी आँतें स्नायु सम्बन्धित भाग नीचे के दाँत और माँसपेशियों को प्रभावित करता है। **रोगः**- कफज वातज रोग पैरों में रोग कुक्षिरोग, चित्तभ्रमित रोग भूख प्यास सम्बन्धी रोग विषजन्य रोग तथा भयानक ज्वर रोग उत्पन्न होते हैं।

राहुजन्य रोगः- भूत बाधा, आकस्मिक घटना, ज्वर, अपस्मार चर्मरोग विषूचिका विषजन्य रोगोत्पत्ति होती है, केतु भी राहु जनित रोग प्रदान करता है।

ग्रहों की युति दृष्टि से रोगः- यहाँ संक्षेप में ही विचार व्यक्त किये हैं।

सूर्य से युक्त लग्नेश व षष्ठेश होने पर ज्वर रोग, लग्न में मंगल, अष्टम में सूर्य से ज्वर रोग, धनभाव में चन्द्र राहु का योग सन्निपात रोग उत्पन्न करता है। शनि सप्तम में चन्द्र पापाक्रान्त हो तो क्षय रोग, गुल्प श्वास, पीलिया रोग। मकर राशि में सूर्य शनि सप्तम में चन्द्र पाप ग्रहों के मध्य में होने पर कैंसर क्षय, अस्थामा, श्वास, रोग पीलिया रोग। षष्ठेश सूर्य पापयुक्त चतुर्थ में होने से हृदय रोग, नवमांश में चतुर्थेश सूर्य के नवमांश में होने पर हृदय रोग।

चतुर्थ में मंगल शनि तथा पापग्रहों से युक्त गुरु हो तथा दृष्ट हो तो भयंकर घाव हृदय में होता है। सप्तम में सूर्य मंगल शनि स्थित होने पर भंगदर, बवासीर व शूल रोग। कर्क में शनि मकर में चन्द्र होने पर जलोदर रोग। शनि सप्तम में हो या व्ययेश षष्ठ भाव में और षष्ठेश व्यय भाव में गुल्म रोग। शनि चन्द्र की युति ६ या 8 भाव में होने पर पीलिया रोग। सूर्य मकर राशि में हो और चन्द्र शनि मंगल के मध्य में हो तो कैंसर, पीलिया, गुल्म और श्वास आदि रोग। चन्द्र शुक्र की युति छठे या ८वें भाव में हो अथवा सिंह लग्न में चन्द्र पापयुत दृष्ट हो। छठे स्थान में शनि की युति या दृष्टि होने पर उदर रोग। शुक्र सप्तम में होने पर अतिसार रोग, चन्द्र मंगल बुध और लग्नेश एकत्र हों तो कुष्ठरोग। लग्नस्थ मंगल को शनि मंगल देखते हों तो चेचक रोग। चन्द्र लग्न में सूर्य और मंगल सप्तम में होने पर व्रण (फोड़ा) रोग। छठे और ८वें भाव पर राहु और मंगल की दृष्टि से पीठ में फोड़ा रोग।

छठे स्थान में जलराशि में चन्द्र से मूत्रकृच्छ्र रोग। षष्ठेश बुध जल राशि में होने पर मूत्र रोग। नपुंसक या मूत्र कृच्छ्र रोग सप्तम में मंगल को पापग्रह देखते हों या युत हों। सूर्य शनि व शुक्र की युति पञ्चम भाव में होने पर प्रमेह रोग। सूर्य लग्न में मंगल सप्तम या दशम में शुक्र युत दृष्ट होने पर प्रमेह रोग। चन्द्र बुध सूर्य राहु की युति किसी भी भाव में हो तो उपदंश रोग। लग्नेश छठे भाव में मंगल के साथ होने पर शिश्न (लिंग) रोग। षष्ठेश शनि ८वें में मंगल के साथ होने पर गुप्तेन्द्रिय में शल्य चिकित्सा। विषम राशि में शनि तथा समराशि में बुध हो और परस्पर दृष्ट हों अथवा सप्तम में गुरु के साथ राहु हो अथवा लग्न शुक्र व चन्द्र तीनों पुरुष ग्रह की राशियाँ नवमांश होने पर नपुंसक योग। पापयुक्तचन्द्र कर्क राशि या कर्क के नवमाशं में होने पर गुदा रोग। कर्क राशि के सूर्य पर शनि की दृष्टि हो अथवा वृश्चिक राशि में मंगल शनि की युति होने पर बवासीर रोग। लग्न में राहु छठे भाव में चन्द्र अथवा शनि मंगल सूर्य की युति अष्टम भाव में होने पर मिर्गी रोग। लग्न में सप्तम में मंगल होने पर उन्माद या पागलपन का रोग। क्षीण चन्द्र के साथ शनि द्वादश भाव में होने पर भी पागलपन का रोग। दूसरे या द्वादश में चन्द्र हो अथवा धनभाव में सूर्य चन्द्र की युति हो अथवा व्ययभाव में शुक्र हो तो नेत्ररोग होता है। शनि राहु लग्नस्थ होने पर पिशाच पीड़ा रोग। धन भाव में शनिराहु की युति या क्षीण चन्द्र राहु के साथ अष्टम में और धन भाव में पापग्रह होने पर पिशाच पीड़ा रोग। सिंह लग्न में ६, ८, १२वें भाव में अस्त शुक्र होने पर जन्मान्ध रोग। ६, ८, १२ भाव में चन्द्र शुक्र की युति से निशान्ध योग।

यन्त्रों द्वारा रोगों का उपचार:–

(९०) ज्वरनाशक यन्त्र

३७	४४	२	७
६	३	४१	४०
४३	३८	८	१
४	५	३९	४२

पीपल के पत्ते पर केसर चन्दन की स्याही से अनार की कलम से लिखकर दायें भुजा पर बाँध देवे।

टाईफाइड व मोतीझरा रोगनाशक यन्त्र

श्रीः	श्रीः	श्रीः	श्रीः
श्रीः	श्रीः	श्रीः	श्रीः
श्रीः	श्रीः	श्रीः	श्रीः
श्रीः	श्रीः	श्रीः	श्रीः

लाल चन्दन की स्याही से अनार की कलम से भोजपत्र पर लिखकर धूपदीप देकर रोगी के गले में बाँधना।

(१६०) नपुंसकतानष्ट यन्त्र

२	७	७४	७७
७९	७२	८	१
६	३	७६	७५
७३	७८	२	७

(१८६) असाध्य रोगनिवारक यन्त्र

१०	२	७४	१००
७३	७४	३	६
१	८	१०१	७६
१०२	७२	८	४

शुद्ध लिखकर कमर में बाँध देवे।

भोजपत्र पर केसर से अनार की कलम से गूगल की धूप देकर गले में धारण करें।

मिर्गी रोग नाशक

१०००

८	१	९८१	१०
११	९८०	४	५
२	७	९	९८२
९७९	१२	६	३

सूर्य या चन्द्र ग्रहण में भोजपत्र पर लिखकर भुजा में बाँधना। अनार की कलम और लाल चन्दन की स्याही से लिखना।

बवासीर नाशकयन्त्र

१००

१	४७	४४	८
४५	७	२	४९
६	४२	४९	३
४८	४	५	४३

असाध्य रोग व आपत्तिनिवारक योग

१६५ ६११	१६५ ६२५	१६५ ६२०	१६५ ६१८
१६५ ६२४	१६५ ६१४	१६५ ६१५	१६५ ६२१
१६५ ६१७	१६५ ६१९	१६५ ६२६	१६५ ६१२
१६५ ६२२	१६५ ६१६	१६५ ६१३	१६५ ६२३

केसर की स्याही और अनार की कलम से भोजपत्र लिखकर गले में धारण करना।

रक्तस्राव रोकने का यन्त्र

(२८)

६	१३	२	७
६	३	१०	९
१२	७	८	१
४	५	८	११

कागज पर लाल चन्दन से अनार की कलम से लिखकर स्त्री के गले में बाँधना।

अण्डकोश वृद्धिनाशक यन्त्र

९००

४४२	४४९	२	७
६	३	४४६	४४५
४४८	४४३	८	१
४	५	४४४	४४७

केसर की स्याही अनार की कलम से भोजपत्र पर लिख कर दाहिने हाथ में बाँधनी चाहिये।

कान का दर्द दूर करने का यन्त्र

७	५
९	१

कागज पर स्याही से लिख कर सूर्य के सन्मुख पानी में घोलकर पीने से वायु गोला दर्द दूर होवे

आँख दर्द निवारण

५७८२०६०२

स्याही से कागज पर लिखकर दुखती आँख को दिखाने पर आँख दर्द दूर होवे

भ	ज	व
क	ग	ज
छः	छः	दः

स्याही से कागज पर लिखकर कान पर बाँधने से दर्द शान्त हो जाता है।

आधा शीशी निवारक यन्त्र

५३	४२
३११	७०

स्याही से कागज पर लिखकर कान पर बाँधने से दर्द शान्त हो जाता है।

श्रीः	श्रीः	श्रीः
श्रीः	श्रीः	श्रीः
श्रीः	श्रीः	श्रीः

शीतला शान्ति यन्त्र लिखने का प्रकार दोनों एक ही हैं एक यन्त्र धोकर प्रतिदिन भी पिलाना।

शीतला शान्तियन्त्र

६२३	१स	८६
७सी	५ पू	३७
२म	१२९	४स

भोजपत्र पर केसर चन्दन और मुनक्का के रस से अनार की कलम से लिखकर गले में बाँधे और एक यन्त्र प्रतिदिन जल से धोकर पिलाने से शीतला शान्त होती है।

प्रत्येक ग्रहजन्य रोग के लिये मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, दानपदार्थ, पशु–पक्षी पोषण का विवरण निम्नोक्त है। **सूर्यः**– मन्त्र ऊं ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः।

१५ यन्त्र

६	१	८
७	५	३
८	९	४

वैदिक मन्त्रः– आकृष्णेन रजसावर्तमानो...। आदित्य हृदय एवं गायत्री जप।

तन्त्रः– विल्वपत्र की जड रविवार को रक्त वस्त्र में रखकर भुजा में धारण करें अथवा अर्क (मदार) की जड़ बाँधें। यन्त्र लाल चन्दन से अनार की कलम से लिखें। **औषधिः**– ताम्रभस्म, सुवर्ण भस्म। प्रत्येक ग्रह के दान पदार्थ पञ्चाङ्गों में लिखित हैं। अतः दान पदार्थ की सूची पञ्चाङ्गों से अथवा **ज्यौतिष पीयूष** ग्रन्थ से संकलित कर उन पदार्थों का दान वार के अनुसार जैसे (सूर्य की वस्तुओं का दान रविवार को, चन्द्र की वस्तुओं का दान सोमवार को) करें। सूर्य की वस्तुओं का दान प्रातः रविवार को करें।

पशुपक्षीः– व्याघ्र, हरिण, चकवा इनका पालन पोषण।

चन्द्रजन्य रोग शान्ति के उपचारः–

मन्त्रः– ॐ श्रां श्रीं श्रौं स. चन्द्राय नमः। **वैदिकमन्त्रः**– इमं देवा असपत्...

यन्त्र
सफेद चन्दन
अनार की कलम

७	२	९
८	६	४
३	१०	५

नवकोष्ठक में १८ का यन्त्र विधिपूर्वक लिखकर सफेदवस्त्र में रखकर सोमवार को भुजा में धारण करें। स्त्री वर्ग को बांयी भुजा में पुरुष वर्ग को दाहिनी भुजा में यन्त्र धारण करना चाहिये।

तन्त्रः– खिरनी के बीज अथवा पलाश की जड श्वेतवस्त्र में रखकर सोमवार को धारण करें।

औषधिः– मुक्ता भस्म या मुक्ता पिठिर, रजत भस्म, का उपयोग करें।

दान पदार्थों का सोमवार को सन्ध्याकाल में दान करें।

भौमजन्य रोग का उपचारः-
वैदिक मन्त्रः- अग्निमूर्धा दिवेति...।

मन्त्रः- ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः। भौमयन्त्र कोष्ठक में २१ का यन्त्र विधिपूर्वक लिखकर अंगारक स्तोत्र का पठन भी लाभप्रद है।

२१

८	३	१०
९	७	५
४	११	६

भौमवार को रक्तवस्त्र में रखकर भुजा में धारण करें। प्रत्येक यन्त्र को आम्रपट्ट पर ग्रह वर्ण के अनुसार (रवि मंगल का रक्त, चन्द्र शुक्र का श्वेत, बुध का हरित, गुरु का पीत, शनि राहुकेतु का नीला काला वस्त्र)।

वस्त्र बिछाकर ११ या १३ अंगुल की अनार की कलम से यन्त्र पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर लिखना चाहिये। यन्त्र लिखने के लिये अष्टगन्ध की स्याही को सर्वोत्तम माना गया है, किन्तु अष्ट गन्ध में गोरोचन व कस्तूरी का भी मिश्रण किया जाता है क्योंकि आजकल शुद्ध गोरोचन की उपलब्धि नहीं हो रही है अतः ग्रहों के यन्त्र लिखने हेतु चन्द्र शुक्र को सफेद चन्दन की स्याही, सूर्य मंगल को रक्त चन्दन की स्याही गुरु को हरिद्रा की स्याही या केसर चन्दन से शनि राहु केतु को काली स्याही से। बुध को (पालक रस मिश्रित सफेद चन्दन की) स्याही से तथा सभी यन्त्रों को अनार की कलम से लिखकर धूप दीप कर धारण करना चाहिये। अंक लिखते समय सर्वप्रथम सबसे छोटा अंक लिखकर पश्चात् उत्तरोत्तर वृद्धि के अंक लिखें।

तन्त्रः- खदिर (खैर) अथवा नागजिह्वा की जड़ रक्तवस्त्र में रखकर प्रातः सूर्योदय से १ घन्टे तक के समय में भुजा में मंगलवार को धारण करें।

औषधिः- ताम्र भस्म या प्रवाल भस्म का वैद्य के परामर्शानुसार सेवन करें।

दानः- मंगलवार को मध्याह्न में मंगल की वस्तुओं को दान करें।

पशुपक्षीः- कुक्कुट मेंढक सूकर, चोर गिद्ध सियार आदि का पालन पोषण करें।

बुध जन्य रोग का उपचारः- मन्त्रः- ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः। **वैदिकमन्त्र**–उद्बुध्य स्वाग्ने-I यन्त्र नवकोष्ठक में २४ का यन्त्र भोजपत्र पर लिखकर बुध की होरा में अथवा प्रातः सूर्योदय से १ घन्टे के मध्य में बुध को धारण करें। यहाँ इस बात को ध्यान में रखना चाहिये, सभी ग्रहों का यन्त्र भोजपत्र पर लिखें।

बुध यन्त्र २४

९	४	११
१०	८	६
५	१२	७

तन्त्रः- अपामार्ग की जड अथवा विधारे (वृद्धमूल) की जड हरित वस्त्र में रखकर बुधवार को भुजा में धारण करें। **औषधिः-** सुवर्ण या पन्ने की भस्म वैद्य परामर्श से सेवन करें।

दानः- बुध वस्तुओं का दान बुध की होरा में करें। **पशुपक्षीः-** चातक, तोता,

बिल्ली का पालन–पोषण करें। **गुरुजन्य रोग का उपचारः– मन्त्रः–** ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः)

गुरु यन्त्र २७

१०	५	१२
११	९	७
६	१३	८

वैदिक मन्त्रः– ॐ वृहस्पते अति अदर्यो....। **यन्त्र** २७ अंक का विधिपूर्वक लिखकर गुरुवार को धारण करें यन्त्र पीतवस्त्र में रखकर भुजा में बाँधे। **तन्त्रः–** पीपल की जड अथवा भारंगी की जडपीत वस्त्र में रखकर गुरुवार को भुजा में धारण करें। **औषधी–**स्वर्णभस्म या पुखराज भस्म वैद्य के परामर्श से सेवन करें। **दानः–** गुरु की वस्तुओं का गुरुवार को गुरु की होरा में दान करें। **पशुपक्षीः–** पीपलवृक्ष, कबूतर, हंस, अश्व का पालन–पोषण करें।

शुक्र यन्त्र

११	६	१३
१२	१०	८
७	१४	९

३०

शुक्रजन्य रोग का उपचारः–

मन्त्रः– द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्रायनमः। वैदिक मन्त्रः ॐ अन्नात्परिस्रुतो। ९ कोष्ठक में ३० अंक का यन्त्र विधिपूर्वक लिखकर सफेद वस्त्र में बाँधकर शुक्रवार को भुजा में धारण करें। **तन्त्रः–** गूलर की जड या मंजिष्ठ की जड़ श्वेत वस्त्र में रखकर शुक्र की होरा में शुक्रवार को भुजा में धारण करें।

औषधिः– रजत भस्म या हीरे की भस्म वैद्य के परामर्श से सेवन करें।

दानः– शुक्र की वस्तुओं का शुक्रवार को शुक्र की होरा में दान करें।

पशुपक्षी आदिः– मोर, महिष गौ, तोता वैश्या, जुलाहा का पालन पोषण करें।

शनिजन्य रोग का उपचारः– मन्त्रः– ऊं प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः

३३

१२	७	१४
१३	११	९
८	१५	१०

वैदिक मन्त्रः– शन्नोदेवीरभिष्ट्य....। यन्त्र ३३ अंक का ९ कोष्ठक में विधिपूर्वक लिखकर शनिवार को नीले वस्त्र में रखकर भुजा में धारण करें।

तन्त्रः– शमीवृक्ष की जड़ नीले वस्त्र में रखकर शनिवार को भुज़ा में धारण करें। अम्लवेत की जड़ भी धारण कर सकते हैं।

औषधिः– लौह भस्म, नीलम भस्म वैद्य के परामर्शानुसार सेवन करें।

दानः– शनि की वस्तुओं का सायंकाल या शनि की होरा में शनिवार को दान करें।

पशुपक्षी आदिः– कोयल हाथी कौवा तेली, लुहार, मजदूर (श्रमिकवर्ग) नौकर नीच जाति का पालन पोषण करें।

राहु जन्य रोग का उपचारः– मन्त्रः– ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः।

३६

१३	८	१५
१४	१२	१०
९	१६	११

राहु यन्त्र

वैदिक मन्त्र कयानाश्चित्र....। यन्त्र ९ कोष्ठक में ३६ का यन्त्र विधिपूर्वक लिखकर शनिवार सायंकाल काले वस्त्र में भुजा में धारण करें। **तन्त्रः–** चन्दन लेप या चन्दन का टुकड़ा जेब में हमेशा रखें, दूर्वा का सिञ्चन करें। **औषधिः–** गोमेद भस्म तथा विष मिश्रित औषधि का सेवन, लोहभस्म वैद्य परामर्श से सेवन करें।

पशुपक्षी आदि:- सर्प को दूध पिलायें श्रमिक वर्ग को शनिवार की सायंकाल में मदिरापान करवाकर मांसमिश्रित वस्तुओं का भोजन करवाना चाहिये।

केतुजन्य रोग का उपचार:- ॐ केतुं कृवन्न केतवे....**वैदिक मन्त्र।**

३९

१४	९	१६
१५	१३	११
१०	१७	१२

केतु यन्त्र

केतु **यन्त्र** ॐ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः। **यन्त्र** ९ कोष्ठक में ३९ का **यन्त्र** विधिपूर्वक लिखकर शनिवार को सायंकाल में काले वस्त्र में धारण करें। तन्त्र: असुंगध की जड़ या कुशा की जड़ काले वस्त्र में रखकर शनि के सांय काल के समय में भुजा में धारण करें। **औषधि:-** लहसुनिया की भस्म लोह भस्म असगन्ध का चूर्ण वैद्यपरामर्श से सेवन करें।

पशुपक्षी:- मछली का दान, राम नाम की गोलियाँ आटे में मिलाकर मछलियों को खिलाना। साध्य असाध्य रोगों के लिये महामृत्युञ्जय जप, लघुमृत्युञ्जय जप, रुद्राभिषेक, शतचण्डी सम्मुट मन्त्र सहित करवाना लाभप्रद होता है। दैविक दिनचर्या में जिस वार को जो खाद्यान्न का दान लिखा है उन वस्तुओं की भोजन सामग्री उस वार को बनाकर सेवन करने से शरीर स्वस्थ रहता है। सूर्योदय से पूर्व स्नान करना, ऊषाकाल में उठकर जलपान कर शौचादि से निवृत्त होना नीम की दातुन करना। शौच की स्वच्छता के लिये गणेश क्रिया शौच के समय करना परमावश्यक है। सूर्य स्वर में भोजन कर भोजनोपरान्त कुछ समय तक वज्रासन करना, रात्रि को बांयी करवट लेटना। प्रातः सूर्योदय से पूर्व स्नान कर प्राणायाम व सूर्य नमस्कार करना स्वास्थ्य की रक्षा में परमोपयोगी रहता है। शहद के साथ नित्य त्रिफला सेवन तथा हरड का चूर्ण ऋतु के अनुसार अनुपान के साथ लेना व्यक्ति को स्वस्थ व निरोग रखता है।

कालसर्पयोग:—राहु और केतु की राशियों के बीच में सूर्यादि ७ ग्रह होने पर काल सर्प योग बनता है, यदि राहु या केतु के अंशों के आगे के अंशों में कोई ग्रह हो वह ग्रह राहु या केतु के साथ में हो तो काल सर्प योग नहीं बनता। राहु जिस राशि में हो उसके पीछे (पृष्ठ भाग) जैसे राहु 2 अंक पर है तो १, १२, ११, १०, ९, ८ की राशियों में ग्रह होने पर— काल सर्प योग बनता है। राहु स्थित राशि से आगे की ३, ४, ५, ६, ७, ८ राशियों में ग्रह होने पर काल सर्प योग की व्याप्ति ही नहीं होती। **कालसर्पयोग की शान्ति:-** लोहे के तारों की 2 सर्पाकृति बनाकर काले तिल के शूर्पाकार मण्डल में उनकी प्राण प्रतिष्ठा कर के राहु के मन्त्र की संख्या से चतुर्गुणित जप करवाकर शोडषोपचार से पूजा कर (प्रदोष को) अर्थात् जिस दिन सायंकाल त्रयोदशी तिथि हो उस दिन रुद्राभिषेक करके भगवान् शंकर के समीप उन दोनों सर्पों को स्थापित करने से काल सर्प दोष दूर हो जाता है अर्थात् वह योग प्रभावहीन हो जाता है। ढ़ैया तथा शनि की साढ़े साती में जब शनि १, ८, ४, ५ राशि में हो तब विशेष अनिष्ट करता है अन्य राशिगत शनि की साढ़े साती विशेष कष्टकारक नहीं होती है। यदि जन्मकुण्डली में शनि स्वक्षेत्र में तथा उच्च राशि में हो तो उस व्यक्ति को साढ़े साती विशेष कष्टकारक नहीं होती। यदि कुण्डली में शत्रु राशि १, ८, ४, ५ में स्थित हो तो विशेष कष्टकारक शनी की साढ़े साती होती है और परिवार के किसी वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। विवाह के समय साढ़े साती व ढैया शनि अनिष्टप्रद होता है।

आयुर्दाय-विमर्श

– **प्रो. ओंकारनाथ चतुर्वेदी**

ज्योतिषशास्त्र में आयुनिर्णय करना कठिनतम कार्य है। विविध प्रकार से आयु निर्धारण करने की प्रक्रिया जातक ग्रन्थों में उपलब्ध है। इनमें प्रमुख रूप से आठ प्रकार से व्यक्ति की आयु निर्धारण करने का वर्णन मिलता है।

१. निसर्गायु २. पिण्डायु ३. लग्नायु, ४. अंशकायु (नवांशायुः) ५. रश्मिजायु ६. चक्रायु ७. नक्षत्रायु एवं ८. अष्टकवर्गजायु।

१. निसर्गायु–सूर्य से शनि पर्यन्त सातों ग्रहों की स्वाभाविक रूप से आयु निर्धारित की गई है। जन्मकुण्डली में ग्रहों की राश्यादि से उनकी निसर्गायु का निर्धारण किया जाता है।

यथा– नखाः शशी द्वौ नवकं धृतिश्च कृतिः खबाणा रविपूर्वकाणाम्।
इमा निरुक्ताः क्रमशो ग्रहाणां नैसर्गिके आयुषि वर्षसंख्याः॥[१]

अर्थात् सूर्य की २० वर्ष, चन्द्रमा की १ वर्ष, मंगल की २ वर्ष, बुध की ९ वर्ष, गुरु की १८ वर्ष, शुक्र की २० वर्ष एवं शनि की ५० वर्ष नैसर्गिक (स्वाभाविक) आयु मानी गई है। कुल योग १२० वर्ष होता है। जन्मकुण्डली में ग्रहों की तात्कालिक स्थिति विशेष में कुछ आयु क्षीण हो जाती है।

२. पिण्डायु– उच्चराशि (परमोच्च अंश) में स्थित सूर्यादि ग्रहों की पिण्डायु निम्न प्रकार है–

पिण्डायु में सूर्यादि ग्रहों के वर्ष तत्तत् ग्रहों के परमोच्चांश में ही निर्धारित हैं। यथोक्तम् जातक पारिजात आयुर्दायाध्याय में **नवेन्दवो बाणयमाः शरक्ष्मा दिवाकराः पञ्चभुवः कुपक्षाः। नखाश्च भाश्वत् प्रमुखग्रहाणां पिण्डायुषोऽब्दा निजतुङ्गगानाम्॥**

सूर्यादि ग्रहों की उच्चराशिगत स्थिति में पिण्डायु के वर्ष इस प्रकार हैं– सूर्य की १९ वर्ष, चन्द्रमा की २५ वर्ष, मंगल की १५ वर्ष, बुध की १२ वर्ष, गुरु की १५ वर्ष, शुक्र की २१ वर्ष एवं शनि की २० वर्ष पिण्डायु होती है।

---

१. जातकपारिजात आयुदार्याध्याय श्लो. २/३

पिण्डायु एवं नैसर्गिक आयु का स्पष्टीकरण

राश्यादि स्पष्ट ग्रहों में उस ग्रह के उच्चराश्यादि को घटाने पर शेष ६ राशि से कम हो तो उसे १२ राशि में से घटायें। यदि शेष ६ राशि से अधिक हो तो यथावत् रखें। घटाने पर शेष ग्रह की कला बनाकर उस ग्रह की निसर्ग अथवा पिण्डायु के पठित वर्षों से गुणाकर उसमें २१६०० (१२ राशि कला) का भाग देने पर क्रमशः लब्धि, वर्ष, मास, दिन, घटी एवं पल प्राप्त होते हैं। यही उस ग्रह की निसर्ग अथवा पिण्डायु स्पष्ट होती है यथा–

निजोच्चशुद्धः खचरो विशोध्यो भमण्डलात् षड्भवनोनकश्चेत्।
यथास्थितः षड्भवनाधिकश्चेल्लिप्तीकृतः संगुणितो निजाब्दैः॥
तत्र खाभ्ररसचन्द्रलोचनैरुद्धृते सति यदाप्यते फलम्।
वर्षमासदिननाडिकादिकं तद्धि पिण्डभवमायुरुच्यते॥
स्वोच्चोनस्फुटखेचरं यदि रसादल्पं भचक्रोद्धृतम्।
लिप्तीकृत्य निजायुरब्दगुणितं तच्चक्रलिप्ताहृतम्॥
लब्धं वासरनायकादिखचरैर्दत्तायुरब्दादिकम्।
नीचार्द्धक्रमशो वदन्ति मुनयः पैण्ड्ये च नैसर्गिके॥[२]

उदाहरण– स्पष्ट बुध १–१४°–२९'–४९''। बुध का उच्च ५–१५०

स्वबुध – बुध-उच्च= १–१४°–२^{१}–४^{११}

– ५–१५०

७–२ई°–२ई'–४'' (६राशि से अधिक होने पर यथावत, कम होने पर १२ राशि से घटाना चाहिए।)

शेष ७–२९°–२९'–४९" की कला बनाने पर

पिण्डायु १२ वर्ष x १४३६९'१४९" = १२व. x १४३६९-४९" = १७२४२८'–५८८"

भचक्रकला २१६०० २१६००

६० से त्रिकला में भाग देने पर = १७२४३७'–४८' = ७ वर्ष, ११ माह, २३ दिन ५० घटी

२१६००

उदाहरण द्वारा बुध ग्रह द्वारा पिण्डायु का स्पष्टीकरण प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की स्पष्ट राश्यादि से प्रत्येक ग्रह की स्पष्ट आयु निकालनी चाहिए।

---

२. जातकपारिजात आयुदार्याध्याय श्लो. ४-६

आयु का हरण

ऊपर उच्चराशि में स्थित ग्रहों की जो पूर्ण आयु बतलाई गई है, वह नीच राशि में ग्रह रहने पर पठित आयु का आधा भाग नष्ट होकर केवल आयु का आधा भाग ही प्राप्त होता है।

उच्च एवं नीच राशि के मध्य ग्रह की स्थिति के अनुसार अनुपात द्वारा आयु का स्पष्टीकरण किया जाता है।

६ राशि x ३० x ६० = १०८००' में आयु का $\frac{1}{2}$ भाग घट जाता है, तो ग्रह एवं उच्च के अन्तर में कितना घटेगा? अनुपात द्वारा प्राप्त फल को पूर्णायु में घटाने पर ग्रह की स्पष्ट पिण्डायु अथवा निसर्गायु प्राप्त होती है।

अन्यहरण– मंगल ग्रह को छोड़कर शत्रु राशि में स्थित ग्रह प्राप्त आयु का $\frac{1}{3}$ भाग नष्ट कर देता है।

शुक्र एवं शनि ग्रह के अतिरिक्त सभी ग्रह अस्त हो जाने पर अपनी प्राप्त आयु का $\frac{1}{2}$ भाग अर्थात् आधी आयु नष्ट कर देते हैं। किन्तु शुक्र-शनि अस्त होने पर भी अपनी प्राप्तपूर्ण आयु ही प्राप्त करते हैं। यथोक्तम्–

नीचेऽतोऽर्द्धं ह्रसति हि ततश्चान्तरस्थेऽनुपातो
होरात्वंशप्रतिममपरे राशितुल्यं $\frac{1}{5}$ वदन्ति।
हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभागः
सूर्योच्छिन्नद्युतिषु च दलं प्रोज्झ्य शुक्रार्कपुत्रौ॥

क्षोणीपुत्रं वर्जयित्वा रिपुस्थास्त्र्यंशं नीचस्थानगास्ते तदर्धम्।
अस्तं याताः सर्व एवार्द्धं हानिं कुर्युर्हित्वा शुक्रमार्तण्डपुत्रौ॥[३]

व्ययादिहरण (चक्रार्धहानि)

जन्मलग्न से विपरीत क्रम से छः भावों में अर्थात् दृश्य चक्रार्ध (१२, ११, १०, ९, ८, ७) में पापग्रहों की उपस्थिति से आयु का हरण हो जाता है।

द्वादशभाव में पापग्रह स्थित होने पर पूर्ण आयु का हरण होता है। एकादश भाव में आयु का आधा, दशम भाव में आयु का तृतीयांश ($\frac{1}{3}$), नवमभाव में चतुर्थांश ($\frac{1}{4}$), अष्टम भाव में पञ्चमांश, ( ), एवं सप्तम भाव में स्थित पापग्रह प्राप्त आयु का षष्ठांश ($\frac{1}{6}$) हरण कर लेता है। इन्हीं भावों में यदि शुभ ग्रह हो, तो पूर्वोक्त पठित आयु के आधे भाग को ही नष्ट करता है। अर्थात् जिस भाव में पापग्रह के रहने पर जितना भाग आयु हरण होता है, शुभ ग्रह के रहने पर

---

३. जा.पा.आयु.अ.श्लो.-७-८

उसका आधा ही भाग नष्ट होता है। जैसे– द्वादश में आधा, एकादश में चतुर्थांश, दशम भाव में षष्ठांश, नवम भाव में अष्टमांश, अष्टम भाव में दशमांश तथा सप्तम भाव में प्राप्त आयु का द्वादशांश ही नष्ट होता है।

एक ही भाव में एकाधिक ग्रह होने पर उनमें जो ग्रह सर्वाधिक बली हो, उसी शुभ अथवा पापग्रह के ही भाग का हरण होता है, सभी ग्रहों के अंश का हरण नहीं होता। यहाँ यह भी स्मरणीय है, क्षीण चन्द्रमा एवं पापयुक्त बुध यहाँ पर पापग्रह की श्रेणी में नहीं माने गये हैं। इस प्रसंग में सूर्य-शनि एवं मंगल को ही पापग्रह स्वीकार किया गया है। यथा–

सर्वार्द्धत्रिचरणपञ्चषष्ठभागाः क्षीयन्ते व्ययभवनादसत्सुवामम्।
सत्स्वर्द्धं ह्रसति तथैकराशिगानामेकोऽशं हरति बली तथाह सत्यः।।[४]

अपि च–

एकर्क्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण।
क्षपयति यथोक्तमंशं स एव नान्योऽपि तयस्थः।।[५]

क्रूरोदयहरण

स्पष्ट लग्न की कला बनाकर २०० का भाग देने से लब्धि संख्या के तुल्य भगण राशियों के युक्त नवांश होते हैं। शेष तुल्यवर्तमान नवांश को उक्त नवांश में जोड़ने से समग्र संख्या सार्द्धोदित नवांश कहलाती है।

यदि जातक के लग्न में पापग्रह बैठा हो तो पूर्व प्रकार से साधित ग्रह के आयुर्दाय में संस्कार विशेष होता है।

पहले से ग्रहों की साधित आयु को लग्न की वर्तमान नवांश संख्या का तत्तत् ग्रह के अन्य वर्ष में कम कर देने से शेष तुल्य ग्रह की आयु होती है।

यथा–

सार्द्धोदितोदितनवांशहतात्समस्ताद्
भागोऽष्टयुक्तशतसंख्यम्पैतिनाशम्।
क्रूरे विलग्नसहिते विधिना त्वनेन
सौम्येक्षिते दलमतः प्रलयं प्रयाति।।[६]

४. बृ.जा.आयु.अ.श्लो.३
५. जा.पा.आयु.अ.श्लो.१०
६. बृ.जा.आयु.अ.श्लो.४

यदि लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो प्राप्त हीनांश का आधा भाग ही घटाना चाहिए। अनेक पापग्रह लग्न में होने पर बलवान एक पापग्रह का हीनांश घटेगा, सभी का नहीं।

"होरात्वंशप्रतिम"–इस युक्ति से

लग्न नवांशवश ग्रह की आयु का अपचय (क्षीणता) होता है। अर्थात् लग्न के प्रारम्भ में पूर्णायु, लग्न के अन्त में आयु के द्वादशांश की हानि तो लग्न के भुक्तांशों में क्या?

$$\frac{\text{आयु लग्नभुक्तांश (नवांश)}}{१२ \times ९ \text{ नवांश}}$$

$$= \frac{\text{आयु} \times \text{लग्न भुक्तांश}}{१०८} = \text{इष्ट हीनांश।}$$

| यहाँ २०० संख्या से गुणा, भाग करने पर

$$= \frac{\text{आयु} \times \text{लग्न भुक्तांश} \times २००}{१०८ \times २००} = \frac{\text{आयु} \times \text{लग्न भुक्तकला}}{२१६००} = \text{इष्ट हीनांश।}$$

लग्नायु साधन

जिस प्रकार ग्रहों की निसर्ग-पिण्डायु पठित है, उस प्रकार लग्न की आयु पठित नहीं की गई। अतः लग्न की अलग प्रकार से आयु निकाली जाती है।

बलवान् लग्न (होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुतानान्यैः) यह लक्षण शास्त्रो में प्राप्त होता है। अर्थात् लग्न अपने स्वामी गुरु तथा बुध से दृष्ट अथवा युत हो अन्यग्रहों से युत अथवा दृष्ट न हो, तभी लग्न को बलवान माना जाता है। लग्न के बलवान् होने पर लग्न की गणितागत आयु में भुक्तराशि संख्या तुल्य वर्ष जोड़ दिये जाते हैं। तब लग्न की स्पष्ट आयु मानी जाती है। अन्य का लग्न की गणितागत आयु ही स्पष्ट मानी जाती है।

लग्नायु साधन

बलवान लग्न की राशि को छोड़कर शेष अंशादि की कला बना लें उसमें २०० का भाग लगाकर (१ नवांश की २०० कला) लब्धि क्रमशः वर्षादि प्राप्त होगी। इससे लग्न के नवांश तुल्य ही वर्षादि लग्नायु होती है।

"राशि तुल्यं वदन्ति" अर्थात् राशि तुल्य वर्ष होते हैं।

मासादि प्राप्त करने के लिये अनुपात–

१२मास x लग्न भुक्तकला = लब्ध मासादि।
―――――――――――――――
१ राशि कला (१८००)

राशि तुल्य वर्ष में मासादि जोड़कर लग्नायु ज्ञात होती है।

"किन्त्वत्राभांशप्रमितं ददाति वीर्यान्विता राशिसमं च होरा"
क्रूरोदये योऽपचयः स नात्र कार्यं च नाब्दैः प्रथमो पदिष्टैः।।[७]

लग्नायु में पापग्रहयुक्त जन्य संस्कार यहाँ नहीं किया जायेगा।

षड्विधहरण

इस प्रकार उस ६ तरह से ग्रहों की गणितागत आयु में क्षीणता या हरण होता है। (१) लग्न में पापग्रह स्थित होने पर (२) ग्रह के अस्त होने पर, (३) शत्रुराशि में (४) नीच राशि में (५) ग्रहों के योग में (६) चक्रार्द्धहानि में। इन सभी संस्कारों का ग्रहों की आयु में संस्कार करने के बाद ग्रहों की समृद्धि के योग में लग्न की आयु जोड़कर जातक की स्पष्ट आयु तुल्य ही आयु होती है। यथा–

क्रूरोदयास्तरिपुनीचखगोपगानां रिःफायमाननवरन्ध्रकलत्रगानाम्।
कृत्वा यथाहरणषट्कमिनादिकानां लग्नायुषा सह युते यदि तुल्यमायुः।।[८]

क्या इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकारों से प्राप्त आयु जातक प्राप्त करता है? यह ऽ प्रश्न खड़ा होता है। इस प्रकार ग्रहों से प्राप्त आयु मनुष्य को वास्तविक रूप से प्राप्त होती है क्या? यह बहुत ही विवादग्रस्त प्रश्न है। शास्त्रों में निर्देशित आयु साधन का दिग्दर्शन मात्र कहा गया है।

कठिन परिश्रम द्वारा ग्रहानीत आयु मनुष्य प्राप्त करता है? इसकी कोई भी प्रमाणिकता नहीं दी जा सकती।

केशवाचार्य जी का इस विषय में कथन है–

स्याद्धर्मिष्ठसुशीलपथ्यसुभुजां न स्यादिदं पापिनाम्

अर्थात् जो मनुष्य स्वधर्म एवं सत्कार्य में तत्पर रहे, जितेन्द्रिय, पथ्य भोगी, सत्यवक्ता, देव-ब्राह्मण में श्रद्धावान् एवं सद्गुणी हो, वह सम्भवतः या ग्रहानीत आयु को प्राप्त कर सकता है। अन्य लोग नहीं।

―――――――――――――――
७. बृ. जा. आद्र. द्र. श्लो. १२
८. जा.पा.आयु.अ.श्लो.१६

इस कलिकाल में मनुष्य का इस प्रकार का होना प्रायः असम्भव ही है। अतः गणितागत आयु प्रायः कम ही घटित होती है।

आयु सम्बन्धी आचार्यों के मत में भिन्नता भी उपलब्ध होती है।

जीवशर्मा के मतानुसार परमायु प्रमाण १२० वर्ष ५ दिन होता है। इसको ९ ग्रह संख्या से भाग देने पर वर्ष-मास-दिन-घटी-पल १७-१-२२-८-३४ प्रत्येक ग्रह की आयु प्राप्त होती है। यह भी अपने उच्च स्थान में स्थित होने पर। नीच स्थान में स्थित ग्रह की आयु इसकी आधी होती है। मध्य में ग्रहस्थित होने पर अनुपात द्वारा आयु निकाली जाती है। यथा-

सप्तदशैको द्वियमौ वसवो वेदाग्नयो ग्रहेन्द्राणाम्।
वर्षाण्युच्चस्थानां नीचस्थानामतोऽर्द्धं स्यात्॥
मध्येऽनुपाततः स्यादानयनं शेषमय यत् किंचित्।
पिण्डायुष इव कार्यं तत्सर्वं गणिततत्वज्ञैः॥

जीव शर्मा के मतानुसार साधित आयु को आचार्यों ने स्वीकार नहीं किया है। सत्याचार्य, यवनेश्वर आदि आचार्यों के मत को वराहमिहिर ने भी प्रमाणित किया है। सर्वसम्मत मत सत्याचार्य का ही है।

सत्याचार्य के अनुसार सूर्यादि ग्रहों की स्पष्ट राश्यादि की कला बनाकर उसमें २०० का भाग देने से (१ नवांश=२००) लब्धि वर्ष आता है, यदि प्रथमलब्धि १२ से अधिक हो तो १२ का भाग देकर शेष को वर्ष मानें २०० से भाग देने पर प्रथमलब्धि के बाद शेष को १२ से गुणा कर २०० से भाग देने पर मास, शेष को ३० से गुणा कर २०० से भाग देने पर लब्धि दिन होते हैं। इसी प्रकार ६० से गुणा कर २०० से भाग देने पर घटी एवं अन्तिम शेष को भी ६० से गुणा कर २०० से भाग देने पर पल प्राप्त होते हैं।

आयु वृद्धि- सत्याचार्य के मत में इतना विशेष है कि जो ग्रह अपनी उच्च राशि में हो अथवा वक्री हो, उसकी प्राप्त आयु त्रिगुणित हो जाती है, जो ग्रह वर्गोत्तम नवांश अथवा स्व नवांश में या स्वराशि स्वद्रेष्काण में स्थित हो, उसकी आयु द्विगुणित हो जाती है। अन्य ह्रास सम्बन्धी संस्कार पूर्ववत् होते हैं। केवल शत्रुराशि में तृतीयांश अस्तंगत में (शुक्र-शनि को छोड़कर) ग्रह का अर्धांश घटता है।

लग्नायु में सत्याचार्य का मत है, कि लग्न अपने भुक्त नवांश तुल्य आयु देता है। लग्न के बलवान् होने पर राशि तुल्य वर्ष लग्न की आयु में जोड़े जाते हैं।

उनके मत में क्रूरोदय (लग्न में पापग्रह होने पर) हरण नहीं किया जाता। तथा पिण्डायु द्वारा ग्रहों की आयु स्पष्ट नहीं करनी चाहिए।

यहाँ एक शंका होती है, जिस ग्रह की आयु में द्विगुणित अथवा त्रिगुणित करना हो, वहाँ क्या करें? उसमें उन्होंने स्पष्ट किया है। वृद्धि में अनेक प्राप्ति होने पर अधिकतम की एक बार ही वृद्धि करनी चाहिए। ह्रास के प्रसंग में भी केवल चक्रार्द्धहानि को यथावत् करें। शेष अनेक बार हानि न करें। अधिकतम हानि एक बार ही करना चाहिए।

अनेक बार एक ही ग्रह में ह्रास-वृद्धि प्राप्त होने पर पहले ह्रास संस्कार करें। बाद में वृद्धि संस्कार करें। ह्रास के क्रम में पहले चन्द्रार्द्धहानि करें, बाद में अन्य हानि के संस्कार करें। अन्त में वृद्धि कार्य करना चाहिए। यह अंशायु साधन प्रकार है। आचार्य जी ने निसर्गायु-पिण्डायु को छोड़कर अंशायु को ही प्रमाणित माना है। बहुसम्मत मत यही है। कुछ लोगों के मतानुसार लग्न के अधिक बली होने पर अंशायु, सूर्य के बली होने पर पिण्डायु तथा चन्द्रमा के बलवान होने पर निसर्गायु ग्रहण करनी चाहिए। किन्तु सर्वसम्मत मत अंशायु का ही प्रतीत हो रहा है।

जैसा कि जातक पारिजात में उल्लेख है—

स्वमतेन किलाह जीव शर्मा ग्रहदायं परमायुषः स्वरांशम्।
ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यं बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम्
सत्योक्ते ग्रहमिष्टं लिप्तीकृत्वा शतद्वयेनाप्तम्।
मण्डलभागविशुद्धेऽब्दाः स्यु शेषात्तु मासाद्या॥
स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणं द्विरुत्तमस्वांशगृहत्रिभागगैः।
इयान् विशेषस्तु भदन्तभाषिते समानमन्यत् प्रथमेऽप्युदीरितम्॥
किन्त्वत्रभांशप्रतिमं ददाति वीर्यान्विता राशिसमं च होरा।
क्रूरोदये योऽपचयः स नात्र कार्यं च नाब्दैः प्रथमोपदिष्टैः॥
सत्योपदेशोवरमत्रः किन्तु कुर्वन्त्ययोग्यं बहुवर्गणाभिः।
आचार्यकं त्वत्र बहुघ्नतायामेकं तु यद् भूरि तदेव कार्यम्॥[१]

---

१. जा.पा.आयु.अ.श्लो.-१७-२१

वाहक स्नायुरोग (Motor Neuron Disease) : एक ज्योतिषीय अध्ययन

डॉ॰ अशोक थपलियाल
असि.प्रो.वास्तुशास्त्र
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
मानित वि.वि., नई दिल्ली

प्रास्ताविक–

वाहक स्नायुरोग (Motor Neuron Disease) पक्षाघात रोग का ही एक प्रकार है। पक्षाघात के समान ही यह शरीर के विभिन्न हिस्सों को प्रभावित कर देता है। प्राचीन आयुर्वेद पद्धति एवं ज्योतिषादि में इसे पक्षाघात रोग के अन्तर्गत ही परिगणित किया गया है। पक्षाघात की परिभाषा शब्दकल्पद्रुम में निम्न प्रकार से प्राप्त होती है–

पक्षस्य (देहार्धस्य) घातं (विनाशनं) यस्मात् यत्रा वा पक्षाघातः। – शब्दकल्पद्रुमः

अर्थात् शरीर के प्रायः आधो भाग का विनाश जिस रोग द्वारा हो जाता है उसे पक्षाघात कहते हैं। व्यक्ति पक्षाघात प्रभावित अंगों पर प्रायः किसी भी प्रकार का स्पर्शादि का अनुभव नहीं कर पाता है। पक्षाघात मुख, हाथ एवं पैर अथवा शरीर के दाहिने या बाएं भाग को प्रभावित कर सकता है। इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति, खाने–पीने, बोलने और घूमने– फिरने में असमर्थ हो सकता है। जब मस्तिष्क एवं मांसपेशियों के मध्य परस्पर संदेश पहुंचना बन्द हो जाता है तब उसका परिणाम शरीर के भागों में मांसपेशियों के कार्यावरोधा के रूप में सामने आता है जिसे पक्षाघात कहा जाता है। यह शरीर की वह स्थिति है जिसमें एक या अधिक मांसपेशियाँ अपने कार्य को सम्पादित करने में असमर्थ हो जाती हैं। प्रस्तुत शोधापत्र में आधुनिक चिकित्सापद्धति एवं आयुर्वेदचिकित्सापद्धति के अनुसार वाहकस्नायु रोग एवं पक्षाघात के कारणों का विवेचन कर ज्योतिश्शास्त्र के आलोक में इस रोग की सम्भावना का ज्ञान तथा उपचार पर विचार किया गया है।

कारण–

भारतीय दर्शन के अनुसार पक्षाघातादि रोग जन्मान्तरीय किए गए महापातकों का सूचकचिह्न है।

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधाते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिः शमः।।

कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा।
मूत्राकृच्छ्राश्मरीकाशा अतिसारभगन्दरौ।।

दुष्टव्रणं गण्डमाला पक्षघातोऽक्षिनाशनम्।
इत्येवमादयो रोगा महापापोद्भवा गदाः।।

– शब्दकल्पद्रुम

एलोपैथी चिकित्सा प्रणाली के अनुसार पक्षाघात के कई कारण हो सकते हैं। जिसमें प्रायः मुख्य कारण अचानक पडने वाला आघात या दौरा (Stroke) है जो मस्तिष्क की कार्यप्रणाली एवं नियन्त्रण को रक्तप्रवाह की अनियमितता अथवा रक्तधमनियों के अवरुद्ध या फट जाने के कारण बुरी तरह प्रभावित करता है। अन्य कारण सदमे के कारण प्रभावित मानसिक स्थिति या घाव (Trauma) भी हो सकते हैं। सिर या गले मे रक्तप्रवाह में रुकावट होने पर रक्तवाहिनियों में आन्तरिक रक्तस्राव (Haemorrhage) मस्तिष्क को हानि पहुंचा सकता है। जन्म से पूर्व या जन्म के समय मस्तिष्क के अपघात से उसके मुख्य स्नायु तन्त्र में लकवा (Cerebral palsy) के कारण भी व्यक्ति हाथ एवं पैरों पर नियन्त्रणरहित हो जाता है। आयुर्वेद के अनुसार इसका मुख्य कारण वातविकार है। जो शिरा एवं स्नायु को सोखकर शरीर के एक भाग को नष्ट कर देती है। यथा–

गृहीत्वार्धं ततो वायुः शिरास्नायू विशोष्य च।
पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिबन्धान् विमोक्षयन्।।

– शब्दकल्पद्रुम

ज्योतिष एवं आयुर्वेद –

शरीरस्थ त्रिदोषों में परिगणित वातविकार की चिकित्सा करना कठिन कार्य है क्योंकि वायुदोषजनित अनेक रोग हैं जिनके कारण कर्मेन्द्रियों अथवा वाहक क्रिया (Motor Function) में अवरोध होकर अक्षमता हो जाती है। आयुर्वेद इन सभी बीमारियों को वातदोष में समाहित कर लेता है। ऐसा होने पर भी पक्षाघात के उपचार में आयुर्वेद की सफलता दर अन्य उपचारपद्धतियों से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। इसका कारण ज्योतिष एवं आयुर्वेद का पारस्परिक गहन सम्बन्ध रहा है। रोगी की कुण्डली के ज्योतिषीय विश्लेषण द्वारा रोग की गम्भीरता का निर्णय हमारे यहाँ आयुर्वेद एवं ज्योतिष के ग्रन्थों में प्राप्त है। साथ ही वहाँ जडी-बूटियों का संग्रह एवं उनसे आयुर्वेदिक औषधियों का निर्माण तथा सेवन, प्रयोग आदि के काल का निर्देश भी प्राप्त होता है। जिसका समुचित पालन प्राचीन काल से ही हमारे वैद्य रोगों के सफल उपचार के लिए करते आये

हैं। अतः प्राचीन काल से ही आदर्श वैद्यराज के लिए ज्योतिष का ज्ञान होना भी अत्यावश्यक रहा है।

ज्योतिषीय योगादि द्वारा पक्षाघात रोग होने की सम्भावना

प्राक्कल्पना -

ज्योतिश्शास्त्र के अनुसार इस रोग का सम्बन्ध वात प्रकृति से होने के कारण मुख्यतया शनि ग्रह के साथ है। शनि स्नायुकारक ग्रह भी है। अतः शनि की अशुभ स्थिति पक्षाघात रोग की स्थिति को प्रबल बना सकती है। यदि शनि लग्नेश होकर नीच या पापी ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो स्नायुरोग की सम्भावना बनती है। साथ ही आत्मकारक सूर्य, मन-मस्तिष्क का कारक चन्द्र, रोगकारक मंगल एवं शरीरपुष्टिकारक गुरु के साथ शनि का सम्बन्ध तथा इनकी अशुभ स्थिति भी पक्षाघात का कारण बन सकती है। इस विषय में रोगेश, अष्टमेश, व्ययेश की भावो में अशुभ स्थिति तथा रोगकारक ग्रहों के साथ सम्बन्ध का विचार भी आवश्यक है। उपर्युक्त ग्रहों की दशा, अन्तर्दशादि में तथा गोचर में अशुभ स्थिति होने पर रोग की सम्भावना बन सकती है।

कुछ विशेष कुण्डलियों का अध्ययन-

उपर्युक्त प्राक्कल्पना की पुष्टि अथवा तथ्यों की सत्यता जानने एवं पक्षाघात रोग की सम्भावना का व्यावहारिक पक्ष जानने के लिए पक्षाघात रोग से ग्रसित कुछ व्यक्तियों के जन्मसमय, जन्मदिनांक एवं जन्मस्थान के आधार पर कुण्डलियां बनाई गई हैं। साथ ही स्रोत के माध्यम अथवा स्वयं व्यक्तिगतरूप से रोगी से मिलकर उसके रोगारम्भ आदि के बारे में जानकारी एकत्रित की गई है। समयाभाव के कारण अधिक रोगियों की कुण्डलियां प्राप्त नहीं हो पाई। अतः इस विषय में पूर्व में हुए एक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष भी प्रस्तुत हैं। आशा है कि यह लघु शोध अग्रिम बृहत् शोधकार्य की पृष्ठभूमि तैयार करेगा।

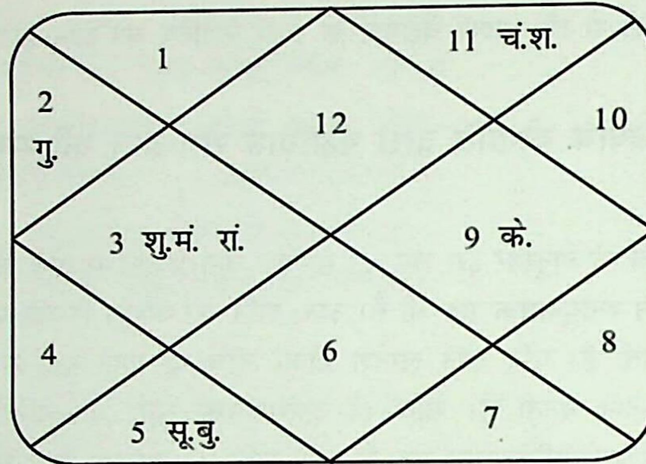
1. नाम- संजय मिश्र

जन्मदिनांक - 24.08.64,

जन्मसमय - 8.41 रात्रि,

जन्मस्थान - कन्नौज उ.प्र.

स्रोत - डॉ. पी.वी.बी.सुब्रह्मण्यम्

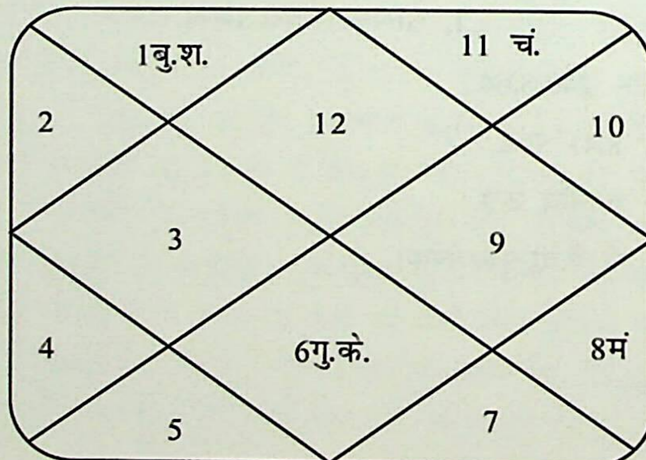


इस कुण्डली में सप्तमेश बुध (वाणीकारक), षाष्ठेश सूर्य (आत्मकारक एवं स्नायु, मेरुदण्ड आदि का प्रभावक) के साथ षष्ठभाव में, चन्द्र (मन-बुद्धिकारक) द्वादशेश शनि (वात एवं स्नायुकारक) के साथ द्वादशभाव में है। इनका परस्पर दृष्टिसम्बन्ध भी है। पापग्रह राहु अष्टमेश शुक्र (वीर्यकारक) एवं द्वितीयेश मंगल (रक्त एवं मांसलकारक)के साथ चतुर्थभाव में विद्यमान है। रोगारम्भ के समय बुध की महादशा में सूर्य की अन्तरदशा में शनि की प्रत्यन्तर्दशा चल रही थी। जातक प्रायः 10-12 वर्ष से पराधीन, चलने - फिरने में असमर्थ, कृत्रिम श्वासयुक्त है। जातक पक्षाघात के प्रकार वाहक स्नायुरोग (डवजवत छमनतवद क्पेमेंम) से पीडित है।

2.नाम - स्टीफेन हेबुड

जन्मदिनांक - 13.04.1969 **जन्मसमय** - 4.10 प्रातः

जन्मस्थान - बोस्टन (यू.एस.ए.) कुण्डली **सौजन्य** - डॉ. पी.वी.बी.सुब्रह्मण्यम्



सूर्य 29 अंश, शुक्र 22 अंश, बुध 4 अंश एवं शनि 4 अंश पर स्थित है। अतः निकट स्थित हैं। जिस कारण षष्ठ- सप्तम-अष्टम एवं द्वादश भाव के स्वामी का युति सम्बन्ध कहा जा सकता है। द्वादशस्थ चन्द्र पापग्रह की राशि में होकर पापग्रह मंगल से दृष्ट है। सूर्य से द्वितीयस्थ शनि नीचराशि में होकर मंगल एवं गुरु से षडाष्टक बना रहा है।

जातक पक्षाघात के प्रकार वाहक स्नायु रोग **(Motor Neuron Disease)** से पीडित है।

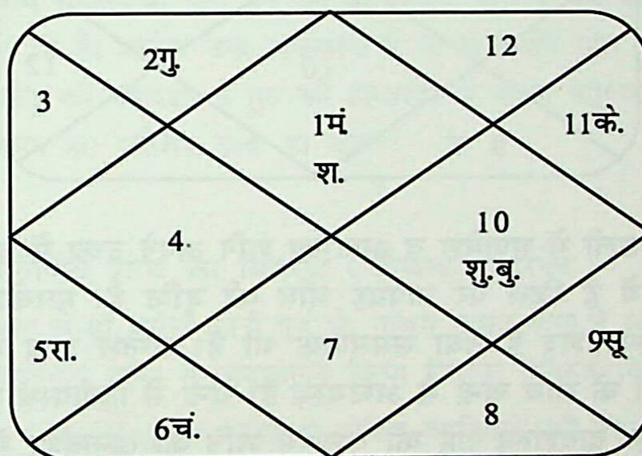
3. नाम - स्टीफेन हाकिंग (प्रसिद्धखगोलविज्ञानी)

जन्मदिनांक - 08.01.1942,

जन्मसमय - 12.00 मध्या]न,

जन्मस्थान - आक्सफोर्ड (यू.के.)

जन्मादि का स्रोत - इण्टरनेट



षष्ठेश बुध एवं सप्तमेश शुक्र की मित्र शनि के घर में युति व उससे दृष्ट भी हैं। साथ ही वे सूर्य से द्वितीयस्थ हैं। अष्टमेश मंगल लग्न में स्वगृह में स्थित है। द्वादशेश गुरु द्वितीयभाव में स्थित है। लग्न में मंगल के साथ शनि नीचराशि में स्थित है जो चन्द्र से अष्टमस्थ हैं।

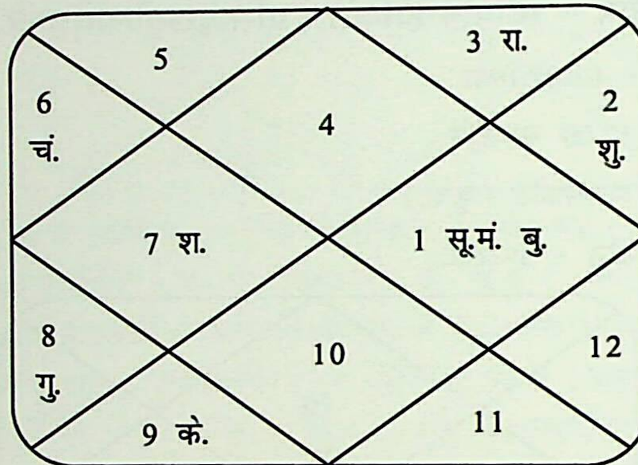
जातक पक्षाघात के प्रकार वाहक स्नायु रोग (Motor Neuron Disease) से पीडित है।

4. नाम - आशीष चौधरी

जन्मदिनांक - 24.04.83,

जन्मसमय - 11.07 ण्डण

जन्मस्थान - भागलपुर, विहार, स्रोत- जातक



प्रस्तुत कुण्डली में सप्तमेश व अष्टमेश शनि अपने उच्च में चतुर्थभाव में स्थित है। रोगेश गुरु पंचम में है जिस पर पापग्रह भौम की दृष्टि है। मारकेश द्वितीयेश सूर्य एवं सप्तमेश शनि परस्पर शत्रु हैं तथा समसप्तक भी हैं। लग्नेश चन्द्र तृतीयस्थ है, जिसका स्वामी बुध पापग्रहों के साथ चन्द्र से अष्टमस्थ है। चन्द्र से द्वितीयस्थ शनि है जिसकी लग्न पर पूर्णदृष्टि भी है। द्वादशस्थ राहु की दशा में शनि की अन्तर्दशा में जातक दुर्घटनाग्रस्त हुआ था। उस समय जातक की साढे साती का आरम्भ भी हुआ था। जातक का दाहिना हिस्सा दुर्घटना के कारण पक्षाघात से प्रभावित हुआ था। अब जातक अपना कार्य स्वयं करने में काफी हद तक समर्थ हो चुका है।

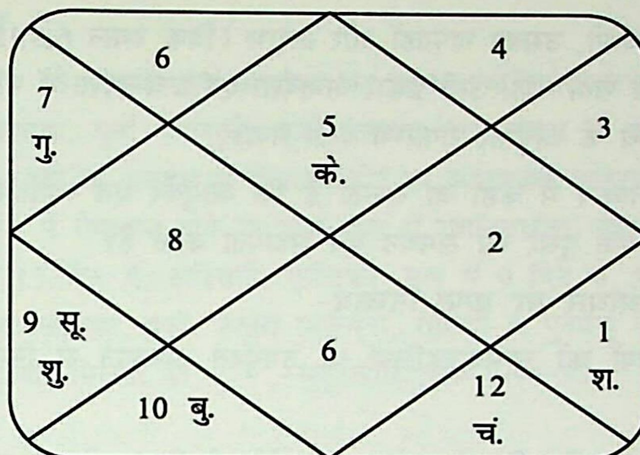
5. नाम - अज्ञात महिला

जन्मदिनांक - 12.01.1970,

जन्मसमय - 09.57 रात्रि,

जन्मस्थान - दिल्ली

स्रोत - श्रीमती आभा शर्मा, वे.ज्यो. टीम, इण्टरनेट



इस कुण्डली में षष्ठेश व सप्तमेश शनि नवम भाव में अपनी नीचराशि में स्थित है जिसका अष्टमेश के साथ समसप्तक योग बन रहा है। सप्तम भौम व राहु की युति तथा लग्नस्थ केतु का समसप्तक योग भी है। व्ययेश चन्द्र अष्टमस्थ है जो पापकर्तरि योग में स्थित है। द्वितीयेश बुध षष्ठ भाव में हैं। केतु की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा में मंगल की प्रत्यन्तर्दशा में पक्षाघात हुआ। अब जातक लगभग 80 प्रतिशत ठीक हो चुकी है।

पक्षाघात पर हुए ज्योतिषीय शोध का विवरण (सौजन्य इण्टरनेट)

जयपुर, राजस्थान में डॉ. सुरेन्द्र सोनी एवं प्रो. अजय कुमार शर्मा ने 10 पक्षाघातरोगियों की जन्मकुण्डलियों का ज्योतिषीय दृष्टि से अनुशीलन किया जिसके निष्कर्ष बिन्दु निम्न हैं-

* अधरंगघात (Paraplegia) रोग से पीडित व्यक्तियों की 10 कुण्डलियों में से 9 कुण्डलियों में लग्नेश प्रपीडित, पापग्रह से किसी न किसी सम्बन्ध के कारण कष्ट में था। मात्र एक कुण्डली में लग्न शुभ स्थिति में होने के कारण सुरक्षित था।

* मेष राशि एवं उसका स्वामी मंगल भी प्रायः प्रपीडित अर्थात् पापग्रहाक्रान्त ही मिला। जबकि अधरंगघात (Paraplegia) में सिंह एवं कन्या राशि भी पीडित रहीं।

* सभी कुण्डलियों में केन्द्रीय स्नायु तंत्र (Central Nervous system) को कुप्रभावित करने में बुध एवं शनि महत्त्वपूर्ण कारक रहे। मुख्यतया शनि ने राहु एवं केतु की सहायता से स्नायुतन्त्र को क्षति पहुंचाई।

* सभी कुण्डलियों के अध्ययन में रोग के महत्त्वपूर्ण कारक मजबूत स्थिति में पाये गये जबकि रोगनाशक शुभ कारक अत्यन्त कमजोर स्थिति में थे।

* दशा के स्वामी, उसका पापग्रहों और अशुभ (त्रिक स्थान 6,8,12) भावों से सम्बन्ध के अनुसार ही रोगारम्भ पाया गया। उसी प्रकार अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा में भी उनके पापग्रहों और अशुभ भावों से सम्बन्ध के अनुसार रोगारम्भ देखा गया।

* यह भी निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि आयुर्वेद एवं ज्योतिष का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनों एक दूसरे का समर्थन एवं सहायता करते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष-

पक्षाघात रोगियों की जन्मकुण्डलियों के उपर्युक्त अध्ययन से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बिन्दु प्राप्त हुए -

1. पक्षाघात रोग में शनि के मुख्यकारक होने के विषय में की गई प्राक्कल्पना प्रायः सत्यरही। शनि का षष्ठ, अष्टम, द्वादश भाव (त्रिकस्थान), एकादश एवं द्वितीय-सप्तम भाव (मारक) का स्वामी होकर नीचस्थान में स्थिति अथवा पापग्रहों से युति व दृष्टिसम्बन्ध बनाना, इस रोग की सम्भावना को बढ़ाने में सहायक प्रतीत हुआ।

2. मन-मस्तिष्क का कारक चन्द्र का शत्रुक्षेत्री होना, पापग्रहों से संयुति या दृष्टि सम्बन्ध रखना अथवा अशुभ भावों में रहना इत्यादि अशुभ स्थिति भी मानसिक तनाव एवं आघात को बढ़ाने में सहायक होकर इस रोग की प्रभावकता में सहायक प्रतीत हुआ।

3. इसी प्रकार बुध, जो वाणीकारक के साथ ही वात, पित्त और कफ त्रिदोषों की ही प्रकृति को धारण करता है, की अशुभ स्थिति (पापग्रहों से युति या दृष्टि सम्बन्ध अथवा त्रिकस्थानों का स्वामी) इस रोग की प्रभावकता में सहायक अनुभव हुआ।

4. सभी कुण्डलियों में मेषराशि का पापग्रहों से सम्बन्ध दिखाई दिया। साथ ही इस रोगसे आक्रान्त व्यक्तियों की कुण्डलियों में प्रायः रक्त एवं मांसलकारक भौम, जो सत्व, बल, साहसादि का भी प्रतीक है, का भी पापग्रह से सम्बन्ध अथवा अशुभभावों में स्थिति या अशुभभावाधिपति होना भी देखा गया।

5. अधिकांश कुण्डलियों में पुष्टिकारक गुरु का पापग्रहों से सम्बन्ध परिलक्षित हुआ।

6. अशुभभावाधिपतियों (मारकेश, त्रिकेश) एवं पापग्रहों के परस्पर सम्बन्ध के अनुसार उनकी महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशादियों में रोग के लक्षण आरम्भ देखे गये। उसमें भी शनि की दशादिकों में प्रबलता पाई गई।

7. पापग्रहों की गोचर में अशुभ स्थिति एवं शनि की साढेसाती या ढैया में भी रोगारम्भ एवं रोग की प्रबलता रही।

रोग के निदानोपाय

* **रोग के साध्य एवं असाध्य का ज्ञान**- ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यदि स्वाती, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढा, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वा भाद्रपदा एवं ज्येष्ठा में रोग उत्पन्न हो तो वह असाध्य हो जाता है। रेवती या अनुराध में रोगारम्भ होने पर कष्टपूर्वक प्राणरक्षा होती है। इसी प्रकार उत्तराषाढा या मृगशीर्ष में रोगारम्भ होने पर एक मास में रोगनिवष्टत्ति, मघा में 20 दिन में, हस्त, विशाखा, धनिष्ठा में 15 दिन में, अश्विनी, कृत्तिका, मूल में 9 दिन में, भरणी, चित्रा, शतभिषा में 11 दिन में, उत्तरा भाद्रपदा, पुष्य, उत्तरा फाल्गुनी, रोहिणी व पुनर्वसु में रोग उत्पन्न होने पर 7 दिन में रोग से मुक्ति मिलती है। -मुहूर्तसंग्रहदर्पण 4/94-97

इसका विचार करते हुए वैद्यराज, चिकित्सकादि की सेवाएं लेनी चाहिए।

* **औषधक्रिया का विचार**- ज्योतिषशास्त्र के अनुसार आयुर्वेदादि औषधियों के निर्माण- क्रिया एवं सेवन के लिए हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, रेवती, अनुराधा, मृगसिरा एवं मूल नक्षत्र एवं सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु व शुक्र ये वार शुभ हैं। इस प्रकार शुभनक्षत्रवारादि पंचांगशुद्ध दिन को ऐसा लग्न का चयन करना चाहिए जिससे 6,7,8 एवं 12 भावों में कोई ग्रह न हो तथा शुभग्रह बलवान हों। इसमें औषधक्रिया (निर्माणक्रिया एवं सेवनद्ध करना आयुर्वृद्धिकारक होता है। यथा -

हस्तत्रये पुष्यपुनर्वसौ च विष्णुत्रये चाश्विनपौष्णभेषु।
मित्रोन्दुमूलेषु च सूर्यवारे भैषज्यमुक्तं शुभवासरेऽपि।।

षट् सप्ताष्टान्त्यशुद्धौ च बलिनः शुभखेचराः।
आयुर्दायकरो योगः कर्त्तव्या ह्यौषधक्रिया।।

परन्तु जन्मनक्षत्र में चन्द्रमा के रहने पर औषधक्रिया नहीं करनी चाहिए।

* **रोगारम्भ नक्षत्रपूजन** - जिस नक्षत्र में रोगारम्भ हुआ है उस नक्षत्र की स्वर्णप्रतिमा बनाकर पूजन करके शान्ति करनी चाहिए।

* **ग्रह के प्रीत्यर्थ दानादि कर्म** - रोगकारक ग्रहों की दशा, अन्तर्दशादि में , अथवा उनकी गोचरीय अशुभप्रद स्थिति आने पर उनकी शान्ति के लिए दान, जप, होम, पूजनादि कर्म अवश्य करना चाहिए। यथा-

सूर्यादीनां मुनिभिरुदिता दक्षिणास्तु ग्रहाणां।
स्नानैर्दानैर्हवनबलिभिस्तत्र तुष्यन्ति यस्मात्।।

* **रत्नादि धारण**– अशुभग्रहों के दोष को दूर करने के लिए ज्योतिषीय परामर्श के उपरान्त रत्न धारण किया जा सकता है। कश्यपमुनि के अनुसार–

सूर्यादीनां च सन्तुष्ट्यै माणिक्यं मौक्तिकं तथा।
सुविद्रुमं मारकतं पुष्परागं च वज्रकम्।।
नीलगोमेदवैदूर्य धार्यं स्वस्वग्रहक्रमात्।।

–उद्धशत मु.चि. 4/10 पीयूषधारा टीका

* यदि उक्त रत्न धारण करने का सामर्थ्य न हो तो विकल्प में उपरत्न भी धारण किए जा सकते हैं। आर्थिक कष्ट होने पर औषधियों की जड भी धारण की जा सकती है। इसी प्रकार स्वर्णपत्र, रजतपत्र, ताम्रपत्र या भोजपत्र पर ग्रहयन्त्रनिर्माण कर धारण किया जा सकता है।

ज्योतिषशास्त्रदृष्ट्या वातजन्यव्याधीनां विमर्शः

डॉ. प्रभाकरपुरोहितः
शोधानुसन्धान अध्येता (भैषज्य ज्योतिष)
ज्योतिष विभागः
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ,
नव देहली- 110016

विषय- प्रवेशः

आयुर्वेदः ज्योतिषस्य यमलभ्राता अस्तीति। वस्तुतः व्याधेः वर्णनम् आयुर्वेदं विना न साध्यं न विचारणीयं च भवति। भारतवर्षे चिकित्साशास्त्रमधिकृत्य न केवलं मानवसमाजस्यैवोपकारिता प्रमाणीक्रियते अपितु गो-गजाश्वपशूनामपि चिकित्सा त्रिदोषसिद्धान्तानुकूलं मूलभीतिमाधारीकृत्य वर्णितचरः अस्ति।

आयुर्वेदे व्याधेः कारणद्वयं प्राप्यते। प्रथमं तु दोषप्रकोपेण अपरं कर्मप्रकोपेण च यथा चरकेन्-

कर्मजा व्याधयः केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे।[1]

आचार्य त्रिशठेन -

कर्मप्रकोपेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये।
तथापरे प्राणिषु कर्मदोषस्तत्कोपजाः कायमनोविकाराः।।[2]

शतातपीयततन्त्रे लिखितं यत् पूर्वजन्मकृतं पापम् एव अस्मिन् जन्मनि व्याधिरूपेण जायते। यथा-

पूर्वन्मकृतं पापं नरकास्यं परीक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छादिभिः शमः।।
कुष्ठञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतीसारभगन्दरौ।।

अष्टाङ्गसंग्रहे वाग्भट्टेन प्रोक्तं 'व्याधयः ग्रहादेव जायन्ते'। यथा -

ग्रहैरपि हि जायन्ते प्रच्छन्नैर्व्याधयः शिशोः।
कर्मशस्तमशस्तेषु दैवयुक्त्याभयं सदा।।[3]

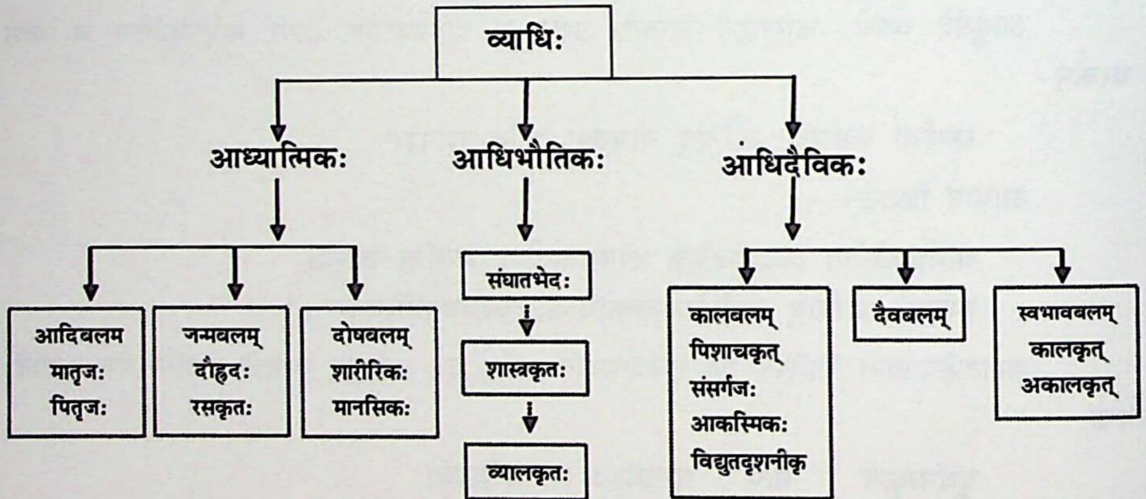
इत्थं ज्योतिषशास्त्रे बहुषु स्थलेषु रोगस्य चर्चा विस्तरेण प्राप्यते। यथा कल्याणवर्ममहाभागेन सारावल्याम् –

सप्ताष्टमष्ठस्थाः शशिनः सौम्यारिव्यरिष्ट फलम्।
पापैरमिश्रचारा कल्याणघृतं यथोन्मादम्।।[4]

अनेन प्रकारेण पञ्चमहाभूतानां प्रतिनिधित्वमपि पञ्चताराग्रहाः कुर्वन्ति। यथा – तेजोभूखम्बुवातेभ्यो क्रमशः पञ्च यञ्चिरो इत्थं एव सामञ्जस्य चरकेण अपि दोषविशेषाद् उपवर्णितम्। एवं तत्र दोषत्रयेषु वातः प्रमुखं इत्थं परिलक्ष्यते। यथा–

पित्तं पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्।।[5]

ज्योतिषशास्त्रे मुख्यरूपेण रोगः द्विविधः – आधिः, व्याधिः रूपेण परन्तु कुत्रचिद् आधिदैविकव्याधयः अपि दृश्यन्ते। एवमेव आचार्यसुश्रुतेन इत्थं विभक्तः –



एवं आयुर्वेदः व्याधिं कर्मजन्यं विचार्य असाध्यं कथयति। तस्य निदान विषये न किञ्चिदपि प्रकाशयति। तान् सर्वान् कर्मजन्यरोगान् ज्योतिषशास्त्रं विस्तरेणप्रस्फुटीकरोति। ज्योतिषशास्त्रे पूर्वाजित कर्मणा कः रोगः कश्च कालः, परिणामश्च सर्वः विचारितः।

आयुर्वेदे औषधिसंचयः स्वास्थ्यपरीक्षणम् औषधिनिर्माणं शल्यक्रियादिश्च कालाश्रितः इति। कालस्य अतियोग–अयोग मिथ्यायोगेः रोगाः उत्पद्यन्ते। इत्थं प्राचीन चिकित्साशास्त्रे ज्योतिषशास्त्र ज्ञानस्य परमोपयोगितां संगण्य **'ज्योतिर्विधौनिरन्तरौ'** सूक्तिः प्रचलिता। एवमेव पूर्वकाले यावत्

चिकित्सकस्य सम्बन्धः गृहस्थाश्रमेण एवं ज्योतिषशास्त्रेण सह आसीद् तावत् कालः समुचितः, यदा चिकित्सकस्य सम्बन्धः ज्योतिषशास्त्राद् पृथक् सञ्जातः तदैव आयुर्वेदशास्त्रेऽस्मिन् वैषम्यं समागतम्।

मानवाः ज्योतिषशास्त्रस्य सम्यक् ज्ञानेन् व्याधिविरहिताः भवितुं शक्नुवन्ति। यतो हि अत्यधिकाः रोगाः सूर्यचन्द्रमसोः प्रभावेण प्रभाविताः। येन प्रकारेण चन्द्रः स्वगति - कला - स्थितिवशाद् सागरे परिवर्तनम् आनयति तथैव शरीरस्य रुधिरप्रवाहे स्नायुमण्डल - मनोवुत्तिषु स्वकीय प्रभाववशाद् व्याधिः ददाति। अतः अमां पूर्णिमामष्टमीं वा ज्ञात्वा चन्द्रजनिततत्वादिपदार्थानां सेवनं रोगाद् रक्षा करोतीति। एवं पदे-पदे ज्योतिषस्य साहचर्य दृश्यते।

अनेन पर्यायलोचनेन प्राप्यते यत् मानवाः आयुर्वेद - ज्योतिषयोः गणनयोः पूर्वाजित - कर्मप्रभाववशात् व्याधिं प्राप्नुवन्ति। यथा प्रश्नमार्गे **'जन्मान्तरकृतपापं व्याधिरूपेण जायते'**।

केचन केवलोचितानुचिताहारविहारेण व्याधिः प्रजायते इति मन्यन्ते परन्तु ज्योतिषशास्त्रेण अस्य मतस्य खण्डनं क्रियते। यतो हि प्रत्यक्षतः अनुभूयते यत् केचन् अनियमितजीवनयापिनः स्वस्थाः एव नियमिताः रुग्णाः एवं कारणं तत्र ग्रहाणां विलक्षण प्रभावः एव लक्ष्यते।

ज्योतिषशास्त्रस्य गणना जन्मकालेन प्रश्नकालेन गोचरेण वा रोगस्य विषये ऋषिभिः प्रतिपादिताः। जन्माङ्गे बहुकाल पूर्वमेव गण्यते यत् कस्मिन् काले कः रोगः, कश्चोपायः भविष्यतीति। अस्माकं ज्योतिषहोरास्कन्धे रोगाणां विचारः ग्रहयोगादिभिः सम्यक् प्रतिपादितम्। यथा -

ग्रहाणां स्थितिभेदेन पुरुषान् योजयन्ति हि।

फलैः कर्मसमुद्भूतैरिति योगाः प्रकीर्तिताः।।[6]

इत्थमेव आत्रेयमहर्षिणा उक्तम् -

अथ नक्षत्रयोगेन व्याधिर्यस्य प्रजायते।

साध्यासाध्यं च याप्यं च वक्ष्यामि श्रृणु पुत्रक।।[7]

इत्थं विचार्यमाणे सति स्पष्टं भवति यत् ज्योतिषशास्त्रस्य सम्बन्धः चिकित्सा शास्त्रेण प्राचीनतमः यः अद्यापि प्रासङ्गिकः इति

वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम्।

वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः।।

प्राणिनां आयुः (जीवनं) वायुरस्ति। बलं वायुरभवति। देहधारणकर्ता वायुरस्ति। वायुरेव ईश्वरः। इदं सर्वं दृश्यमानं जगतः वायुरस्ति। अस्य तात्पर्यमिदं अस्ति सम्पूर्ण चराचरं जगतः वायुर्मेव आश्रित्य तिष्ठति।

इति ह स्माह भगवानात्रेयः।[8]

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतोऽस्थितः।
वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः सभाः शतम्॥[9]

यस्य प्राणे वायोः (वातस्य) गतिः अव्याहतोऽस्ति– वायोः गतिः अवरुद्धा न भवति, स्व स्थाने वायुः स्थितोऽस्ति, सः तदा दीर्घकालपर्यन्तं जीवति, आरोग्यं प्राप्नोति।

वायोः भेदाः-

प्राणोदानसमानाख्यव्यानपानैः स पञ्चधा।
देहं तन्त्रयते सम्यक् स्थानेष्वव्याहतश्चरन्॥[10]

प्राणोपानदानसमानव्यान भेदात् वायुः पञ्चविधः अस्ति। सः वायुः स्व स्थानमन्तराणि देहे सम्यक् प्रकारेण स्वकार्यं करोति।

स्थानं प्राणस्य शीर्षोरः कर्णजिह्वास्यनासिकाः।
ष्ठीवनक्षवथूद्गारश्वासाहारादि कर्म च॥[11]

प्राणस्य स्थानं शिरः हृदयं कर्णः जिह्वा मुखं नासिका इति एतानि प्राणस्य स्थानानि भवन्ति।

उदानस्य पुनः स्थानं नाभ्युरः कण्ठ एव च।
वाक्प्रवृत्तिः प्रयत्नौजोबिलवर्णादि कर्म च॥[12]

उदानस्य कर्म वाक्प्रवृत्तिः प्रयत्नः उत्साहः बलं वर्णः इत्यादीनि उदानस्य कर्माणि सन्ति।

स्वदेहदोषाम्बुवाहीनि स्रोतांसि समधिष्ठितः।
उत्तरग्निश्च पार्श्वस्थः समानोऽग्नि बलप्रदः॥[13]

समानस्य स्थानं कर्म च स्वदेहः दोषवहः अथ च अम्बुवहः स्रोतभ्यः आश्रितः अन्तराग्ने पार्श्वे स्थितः समानवायुः अग्नि बलं च प्रददाति।

देहं व्याप्नोति सर्वं तु व्यानः शीघ्रगतिर्नृणाम्।
गतिप्रसारणाक्षेपनिमेषादिक्रियः सदा॥[14]

व्यानस्य स्थानम्– शीघ्रगतियुक्तः व्यानः मानवानां सम्पूर्ण शरीरेषु आश्रितः भवति।

व्यानस्य स्थान कर्म च– गतिः अङ्गप्रसारणं आक्षेपः निमेषः नेत्रषटः इति।

वृषणौ वस्ति भेदं च नाभ्यरन् वंक्षणौ गुदम्।
अपानस्थान मन्त्रस्थः शुक्रमुत्रशकृन्ति सः॥[15]

अपानस्य स्थान कर्मणि– वस्ति (मूत्राशयः) वृषणौ, मेढ्रः, मूत्रेन्द्रियः, नाभिः,, उरुद्वयं, गुदा एताः अपानस्य प्रस्थानानि सन्ति। एषः वीर्यं मूत्रः, गर्भवर्हि निष्कासयति।

युक्ताःस्थानस्थिताश्चेत् स्वकर्म कुर्वते देहो धार्यते तौरनामयः॥[16]

एते वायोः पञ्च प्रकाराः युक्ता विकृताः न भवन्ति चेत् स्व स्थाने स्थिताः स्वप्राकृत् कर्मणिसततं कुर्वन्तः देहस्य आरोग्यं वर्धयन्तः धारयन्ति।

विमार्गस्था ह्युक्ता वा रोगैः स्वस्थानकर्मजैः।
शरीरं पीड्यन्त्यन्ते प्राणानाशु ह्यरन्ति वा॥[17]

यदा वायवः स्वमार्गं विहाय विलोममार्गे आश्रिताः भवन्ति वा सम्भवात्, न तिष्ठन्ति तदा ते स्व-स्व स्थानेषु स्व स्व कर्मणा रोगाणाम् उत्पाद्य देहस्य पीडां कुर्वन्ति। अपि च शीघ्रमेव प्राणहरणं कुर्वन्ति।

सङ्ख्यामप्यतिवृतानां तज्जानां हि प्रधानतः।
आशीतिर्नखभेदाद्या रोगाः सूत्रे निदर्शितः॥[18]

उक्ताः पञ्च प्रकाराः पञ्चविध वायुना रोगाः यद्यपि असङ्ख्यकाः सन्ति परञ्च प्रधानतः अशीति (80) विधाः नखभेदादि व्याधयः परिगण्यन्ते।

तनुच्यमानान् पर्यायैः सहेतूपक्रमान् श्रृणु।
केवलं वायुमुद्दिश्य स्थानभेदान्तथाऽऽवृतम्॥[19]

द्विविधः भवति प्रथमं वातप्रकोपः सः वातः यदा वातस्वतन्त्रतया कुपितः भवति। द्वितीयं स यदा किमपि कस्यापिदोषस्य आवरणं करोति, पित्तकफयोः आवरणवशात् मार्गं अवरुध्य कुप्यति भवति।

अशीति वातजन्य रोगाः

अशीतिवातजारोगाः कथ्यन्ते मुनिमाप्रिताः।
आक्षेपको हनुस्तम्भः उरुस्तम्भः शिरोग्रहः॥[20]

बाह्यामोन्तरायामः पाश्र्वशूलं कटिग्रहः।
दण्डापतानकः कोष्टुशीर्षो मन्यास्तम्भश्च पंगुता॥[21]

कलायरवञ्जता तूनी प्रतितूनी च सञ्जाता।
पादहर्षो गृध्रसी च विश्वाची चापव्याहुकः॥[22]

अपतानो प्राणायामो बालकण्टोपतंत्रकः।
अंगभेदोऽङ्ग शोषश्च मिमिनत्वं च गदगदः॥[23]

प्रत्यष्ठीलीलाऽष्ठीलिका च वामनत्वं च कुब्जता॥[24]
अङ्गपीडाङ्गशूलञ्च संकोचस्तम्भरुक्षता।

अंगभंगोऽङ्गविर्भंशो विग्रहोबद्धविट्कता।।[25]
मूकत्वमतिजृम्भास्या- दत्युद्गारंऽत्रकूजनम्।
वातप्रवृत्तिः स्फुरणं शिराणां पूरणं तथा।।[26]
कम्पः कार्श्याश्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता।
निद्रानाशः स्वेदनाशो दुबैलत्वं बलक्षयः।।[27]
अतिप्रवृत्तिः शुक्रस्य कार्श्य नाशश्च रेतसः।।
अनवस्थितचित्तत्वं काठिन्यं विरसास्यता।।[28]
कषायवक्त्रताध्मानं प्रत्याध्यमानं च शीतता।
रोमहर्षश्च भीरुत्वं तोदः कण्डू रसाज्ञता।।[29]
शब्दातज्ञा प्रसुप्तिश्च गंधाज्ञत्वं दृशः क्षयः।।

वात कुपित वशाद् आयुर्वेदशस्त्रे उक्त व्याधयः सन्ति।

1. नखभेदः
2. विपादिकः
3. पादशूलः
4. पादर्भंशः
5. पादसुप्तः
6. जानुभेदः
7. जानुविश्लेषः
8. उरुस्तम्भः
9. अरुसाद्
10. पांगुल्यः
11. गुदार्भंशः
12. गुदारतिः
13. वृषानकशोषः
14. श्रोणिभेदः
15. वामनत्वम्
16. कर्णशूलः
17. वाधिर्यः
18. अतिसारः
19. उदवर्त्तः (मिसपरिसिटालिसिस)
20. खंजता (पादविकलता)
21. कुब्जत्वम् (काइफोसिस)
22. ग्रीवास्तम्भः
23. हनुभेदः
24. ओष्ठभेदः
25. अक्षिभेदः
26. दन्तशैथिल्यम्
27. मूकत्वम्
28. वाकसंगः (वाणीदोषः)
29. कुक्षिशूलः
30. तमः (मूर्छा)
31. जृम्भा
32. अतिप्रलापः
33. अनवरतस्थितचिन्ताइत्यादयः वातदोषात् समुत्पन्ना व्याधयः भवन्ति।

ज्योतिषशास्त्राभिप्रायेण वातव्याधि योगम्

जातो भुक्तिविरोधरोगनिहतो रन्ध्रेश्वरो दुर्बले,
लग्न पापनिरीक्षिते परिभवस्थाने समन्देक्षिते।
वान्ति भ्रान्तिजापाण्डुमेति सकुजे चन्द्रे रिपुस्थानगे,
जातः शूलविसर्पमेति दिनकृश्चन्द्रारयुक्ते यदा।।[30]

यस्य जातकस्य जन्माङ्गे अष्टमाधिपतिः बलहीनः भवेत् पापग्रहाणां दृष्टिः लग्नोपरि भवेत्, तदा जातकः भोजनेन गलावरोधेन म्रियते अथवा पाण्डुरोगः भवति।

यथा प्रश्नमार्गः-

पापेग्रहेक्षितं लग्नं रन्ध्रं रविजवीक्षितम्।
रन्ध्रेशो विबले योगः एष भुक्ति विरोधकृत्।।[31]

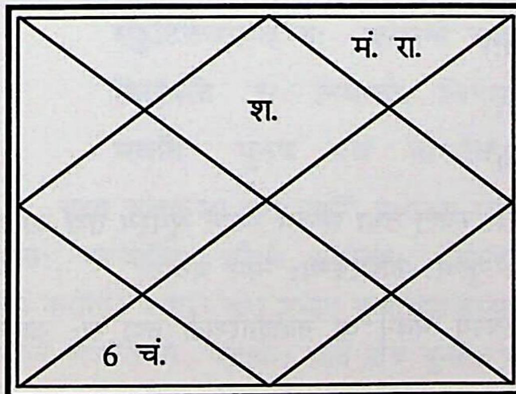
वातरोगाज्ञानमाह -

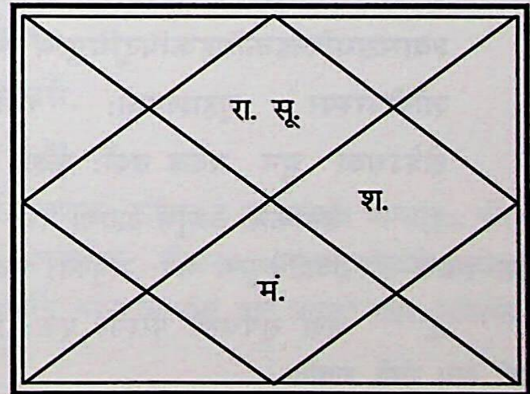
चन्द्रे पापनिरीक्षिते रिपगते पापान्विते वातजम्,
जातः शोणितपित्तमेति वसुधापात्रे तथास्ते सति।
सौम्ये वातकफामयं भृगुसुते मूलातिसारं तथा,
मन्दे गूल्ममुपैति राहुशिखिनो पैशाचरोगं वदेत्।।[32]

1. यदा जन्माङ्गे चन्द्रमा लग्नात् षष्ठभावस्थितः तस्योपरि च पापग्रहाणां दृष्टिः भवति तस्मिन् योगे उत्पन्नः जातकः वातरोगपीडितो भवति।

2. भौमः सप्तम भावे अस्तंगतः पापग्रहैः अवलोकितः शोणित पित्तरोगं करोति। बुधे अस्तं भवति पापग्रहेभ्यो निरीक्षितै वातकफ रोगं भवति, शुक्रतथोक्त स्थिते पापान्विते च अतिसार रोगः भवति, शनैश्चरः गुल्मः रोगं करोतिं राहुकेत्वोस्त्था स्थितयोः पैशाचरोगं जातकाय प्रददाति।

उदाहरणम्





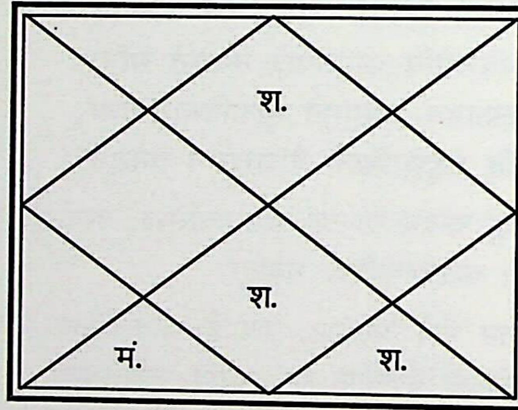
वातरोगादि अनिष्ट योगः

पापालोकितयोः सितावनिजयोरास्तस्थयोतरनुक,
चन्द्रे कर्कट वृश्चिकांशकगते पापैर्युतै गुह्यरुक्।
श्वित्रीरिः फधनरथयोरशुभ योश्चन्द्रोदयेस्तेरवौ,
चन्द्रे खेतवनिजेऽस्तगे च विकलो यर्धर्कसो बेसिगः।।[33]

1. जन्मकाले पापग्रहैः दृष्टे शुक्रभौमयोः लग्नात् सप्तमस्थितौ तयोः वातरोगयुक्तः भवति।

2. जन्मकाले चन्द्रो वृश्चिको वा कर्कट राशेः नवांशस्थितौ गतः पापग्रहैः युक्तः स्यात् तदा जातकः गुप्तरोगी भवति।

3. यदि जन्माङ्गे शनिभौमौः द्वादशे वा द्वितीये स्थाने चन्द्रमा लग्ने अन्यत्र सप्तमे भावे सूर्यः स्यात्, तदा श्वित्री अर्थात् श्वेतकुष्ठयुक्तः भवति एते रोगाः वातकोप वशात् भवन्ति।



वातकफयुक्तः श्वासः क्षयरोगज्ञानम्

अन्तश्चूशिन्यशुअयोर्मदगे पतङ्गे,
श्वासक्षयप्लिहकविहकपिदूधिगुल्म भाजः।
शोषीपरस्पर गृहांशगयोः रवीन्द्रोः,
क्षेत्रेऽथवा युग पदेव तयोः कृशो वा।।[34]

1. जन्मकाले अशुभ ग्रहाणां मध्ये चन्द्रः स्यात् तथा सप्तमे स्थाने सूर्यस्य तदा जातकः काश-श्वास-क्षय-विद्रधिगुल्म रोगः संयुक्तः भवति। गुल्मः रुधिरग्रन्थेः नाम भवति।

2. यदा सूर्यचन्द्रौ परस्परं एकः द्वितीयस्य भवने वा नवांशस्थितौ तदा सः जातकः शोषी क्षय रोगी भवति।

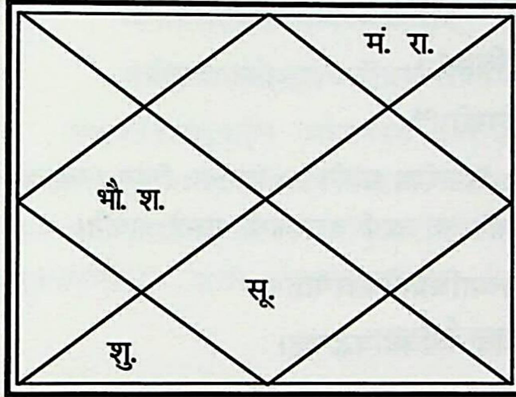
यस्मात् गार्गी वचनम् -

परस्पर गृहे यातौ यदि वापि तद्ररागौ भवेतामर्कशीतांशू तदा शोषी प्रजायते।

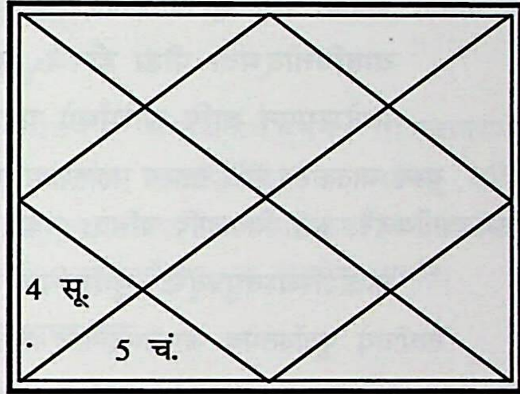
वातकफ अवरुद्धात् शोषीक्षयरोगौ भवतः।

उदाहरणः

गुल्मरोगः



शोषीरोगः



वातप्रधान जातकस्य लक्षणं तत्फलम्

शीतार्ति बहुभाषको द्रुतगतिर्नावस्थितः कुत्रचित्,
शूरो मत्सखान्रुजा कर रुचि दौर्भाग्य युक्तोऽनयः।
दन्तान्खादति नाति सौहृदमतिर्गान्धर्ववेत्ता कृशो,
मित्राणां समुपार्जनेऽति निपुणः स्वप्ने च खे गच्छति॥[35]

अपगतधृतिरुक्षश्मश्रुकेशः कृतघ्नः,
स्फुटितचरणहस्तः क्रोधनो नष्टकान्तिः।
विलपति च निबन्धो वितसंक्षारकारी,
भवति पुरुष एवं मारुतैकप्रधानः॥[36]

यस्य जातकस्य वात प्रकृति प्रधानता स्यात् सः जातकः शीतात् दुःखं लभते। वाचालः, वीरः, द्वेषयुक्तः, भाग्यहीनः, क्रोधी, संङ्गीतज्ञः, धैर्यरहितः, धननाशकः, निबन्धः (मलमूत्रअवरोधकरोगात् विलापं करोति) एतानि वात प्रधान युक्तजातकस्यलक्षणानि, यस्य जन्माङ्गे वात प्रधाना ग्रहाः बलिष्ठाः रोगस्थाने भवन्ति सः जातकः वात रोग युक्तः भवति।

अथेदानीं ज्योतिषशास्त्रभिप्रायेण वातव्याधि विषये

अतिमारुतरोगार्तः परस्वहारी विलोमतिचेष्ठः,

कर्कटस्थे शनौ स्वपुत्रदृष्टे पुमान्विपशुनः।।[37]

यदि कर्कराशिस्थः सूर्य जन्माङ्गे षष्ठ भावस्थः तदुपरि शनि ग्रहस्य दृष्टिः भवति तदा जातकः अतीव धूर्तः परसम्पत्ति हरणं चेष्टां करोति तथा स्वार्थे निम्नकोटिकानि कर्मणि करोति। इह योगे उत्पन्नः जातकः वात कुपित वशात् अस्थि सन्धि व्याधि युक्तः भवति।

वातपित्तोद्भवा पीडा हीनजैः सह विग्रहः।

विदेशगमनं वापि सौरेर्मध्यो यदा शिखी।।[38]

यस्य जातकस्य शनि ग्रहस्य महादशायां केतुः अन्तर्दशा भवति सः जातकः निम्न (म्लेच्छादि) वर्गस्य वर्गीयजनैः सह विवादादि ग्रसितः भवति। अपि च वातपित्तजव्याधी ग्रस्तो भवति।

कर्कऽस्थिस्वपुत्रदृष्ट सूर्यजनित वातव्याधिप्रतीकारमाह-

तत्प्रीतये पूर्वोक्तमेव जपहोमदानादि सकलमेव विविधविद्धयात्।

अपि च-

शनैश्चर मध्यवर्ती केतुजनितं वातोद्भवपीडोपशान्तये केतु प्रीतये जपहोमादिकं कुर्यात्। कुतुंकृण्वन्नकेतवो इति मन्त्रेण जपः तिलाज्यकुशसमिद्भिर्जुहुयात् सवेण छागं दद्यात्। असिततिलां जनित्यादिभिरौषधैः स्नायात् राजावर्त परिधानं विदध्यात्।

वातव्याधिगृहीतं लोके दुष्टं प्रवासशीलं वा।

क्षुर्दं निंदितशीलं जनयति भौमेक्षितः सौरः।।[39]

यस्य जातकस्य जन्माङ्गे शनिः यस्मिन कस्मिन वा स्थाने स्थितः परन्तु तस्योपरि भौमस्य दृष्टिर्भवति, तदा सः जातकः खलः, नीचकर्मरतः स्यात्। जनसमुदाये स निन्दापात्रो भवति। सः गृहं त्यक्त्वा बहिर्भ्रमणं करोति, तथा वातादि रोग ग्रसितः भवति।

भौमेक्षितशनिजनितवातव्याध्युपशमनाय शनिप्रीतये पूर्वोक्तं जपहोमादिकं कुर्यात्। शनेः भौमस्य च दृष्ट्या जायमानानां वात व्याधीनां उपशमनाय शनि ग्रहस्य जप होम दानादिकार्यं करणीयम्।

अथ वातव्याधेः कर्मविपाकमाह तत्प्रतीकारं च-

गुरुं प्रीत्यर्थी वातरोगी शन्नोदेवीरिति मन्त्रेण जपं कुर्वीत् इति उमामहेश्वरसंवादे अभिधानात्। अन्यच्च वातरोग कारणं प्रकृत्यंतरंचोच्यते देवब्राह्मणस्वपाहरणात्सवामिद्रोहाद्वातरोगी भवति। अस्य प्रायश्चित्तं कृच्छ्रातिकृच्छ्राचांद्रायणं कुर्यात्। अग्निस्मीत्यृचं जपेत् अनेन मन्त्रेण होमं च कुर्यात्।

वातव्याधिः कारणमाह

रुक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायाति प्रजागरैः।

विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रावणादति॥[40]

लंघनप्लवनाप्यर्थं व्ययामर्मतिचेष्टितैः।

धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगादिकर्षणात्॥[41]

वेगसंधारणायासादभिघाताद् भोजनात्।

मर्मवाधागजोष्ट्राश्वशीघ्रयानापतर्पणात्॥[42]

रुक्षशीतलघुपाचि भोजनस्य निरन्तरं सेवनेन, समधिकमैथुनेन, रात्रिजागरणेन, ऋतुकालबलार्युविषयकः विचारं विहाय, अनियमित भोजनेन, रक्तपित्तादिजनित व्याधिषु अधिक रक्तनिर्गमनने, समधिकोपवासेन, नदीषु समधिकतरणेन, बहुदूरपादयात्रया, सामर्थ्यमतिक्रम्य, व्यायामादिभिः, मलमूत्रवेगनिरोधेन, शरीरे आमातिसारादिभिः, विविधाभिः दुर्घटनादिभिः च वातरोगो भवति।

वातरोगस्य लक्षणमाह

संकोच पर्वणां स्तम्भो भंगोऽस्थ्नां पर्वणामपि।

लोमहर्षः प्रलापश्च पारिपृष्ठशिरोग्रहः॥[43]

वातजेषु व्याधिषुशरीरे उत्पद्यमानानां व्याधीनां पूर्वं भूमिका रूपेण लक्षणानि दृश्यन्ते, यथा प्रत्येकं लघुगुरुषु सन्धिषु संकोचः कर्षणं च भवति। अस्थि विकृतेः अपि यदा कदा स्थितिः अनुभूयते। रोमहर्षणं कदाचित भवति। यदा कदा पुरुषः प्रलपति, पंगुत्वं, कुब्जत्वं च भवति। अंगेषु शुष्कतया शैथिल्यश्च स्थितिः दृश्यते, अनिद्रा, गर्भपातः, शुक्रपातः, रजोनाशः, त्वक् शून्यता, ग्रीवास्तम्भः इत्यादीनि लक्षणानि कदाचित् उत्पद्यन्ते। कदाचित् मिलीयन्ते। एभिः लक्षणेः भविष्यकाले वात व्याधेः उत्पत्तेः सूचना लक्ष्यते।

एवं विधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः।

हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत्॥[44]

इत्थं प्रकुपितो वायुः अनेकानि लक्षणानि अस्थायित्वेन उत्पादयति। एवं सति स्थानविशेषस्य प्रभावेन अपि अनेके रोगाः उपजनयन्ते।

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः।

वर्घ्महृदोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलं च मारुतेः॥[45]

प्रकुपितो वायुः यथा आमाशये, पित्ताशये, मलाशये, वाताशये, इत्यादिषु कोष्ठेषु स्थित्वा मलमूत्रादीनामवरोधं जनयति। फलतः व्रहन ग्रन्थेः शोथः, हृदरोगः, गुल्मरोगः, अर्शः, पार्श्वरोगः इत्यादयो रोगाः उत्पद्यन्ते।

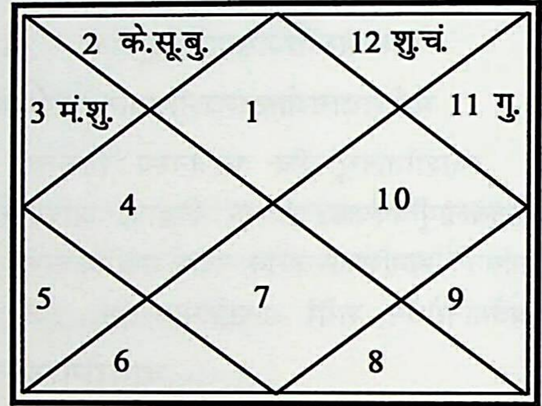
वातादिदोषात् समुत्पन्न उदररोगः-

जन्मदिनाङ्कः 18.05.1974

जन्मसमयः 05:05 पूर्वाह्न

जन्मस्थानम् सिकन्दराराऊ (हरियाणा)

जन्माङ्गचक्रम्



प्रस्तुत जन्माङ्गे जातकस्य पञ्चमेशः सूर्यः, षष्ठेशः बुधः द्वितीये भावे केतुना सह तिष्ठतः, सिंह राशिः कालपुरुषस्य उदरं उच्यते। लग्नेशः तृतीये भावे शशिना सह सम्बन्धं स्थापयति, अस्य जातकस्य प्रायः वातादि दोषाः भवन्ति।

अष्टमभावस्थः वृश्चिकराशिः, शशिन सह भौमः, अष्टमेशः तृतीये भावे स्यात्। एकादशे स्थितः गुरुः शनेः गृहे वातादि गुल्मशूलपित्तशूलादिरोगान् उत्पादयति। अभिप्रायं अयं यत् जातकस्य त्रिषडाय द्वितीय अष्टमस्थ ग्रहाणां स्थितिवशात् उदररोगाः भवन्ति।

वातादि अनिष्टयोगः

पापालोकितयोः सितावनिजयोस्त्स्थयोर्वारुक्,
चन्द्रे कर्कटवृश्चिकंशकगते पापैर्युतै गुह्यरुक्।
श्वित्रीरिः- फघनस्थयोरशुभयोश्चन्द्रोदयेऽस्ते रवौ,
चन्द्रे खेऽवनिजेऽस्तगे च विकलो यद्यर्कजो वेसिगः॥[46]

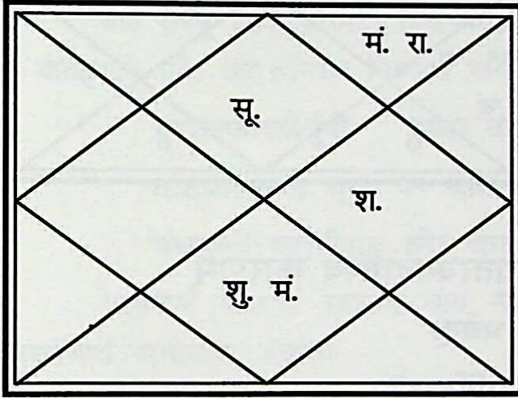
1. जन्मकाले पापग्रहैः दृष्टौ शुक्रभौमौ सप्तमे स्थितौ भवतः चेत् जातको वातरोगयुक्तो भवति।

2. जन्मकाले चन्द्रः वृश्चिकस्य कर्कस्य वा नवांशेस्थितः पापग्रहसंयुतः भवति चेत् जातकः गुप्तरोगी भवति।

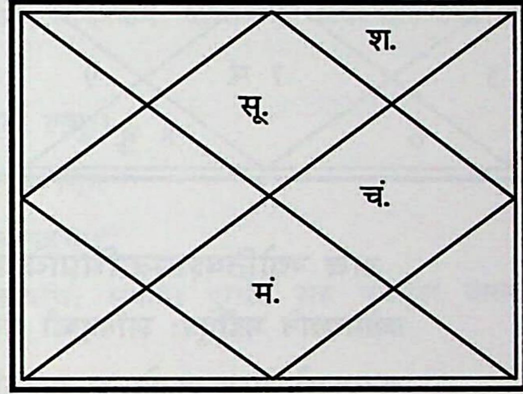
3. जन्मकाले शनैश्चरभौमयौ द्वितीय वा द्वादशे स्थाने स्थितौ लग्ने चन्द्रः, सप्तमे सूर्यः भवेयुः चेत् जातकः श्वेतकुष्ठ युक्तो भवति।

4. जन्मकाले चन्द्रमा दशमे, भौमः सप्तमे, शनिश्च सूर्यात् द्वितीयस्थाने भवति चेत् तदा जातकः अंगहीनो भवति।

वातरोगयोगः



अंगभंगयोगः



वातच्छूलं भ्रमः कम्पः पित्तादाहो मदस्तृषा।
कफाद् गुरुत्वं तन्द्रा च शिरोरोगे त्रिदोषजे।।[47]

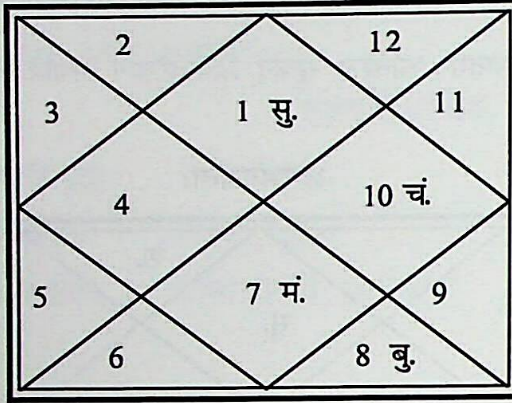
त्रिदोषजो शिरोरोगः– शिरोरोगे वायोः शूलः, भ्रमः, कम्पः, पित्तेदाहः, मदः तथैव च तृषा कफे गुरुता एवं तन्द्रा भवन्ति।

इदानीं वैकल्यं शरीरशोषणञ्च

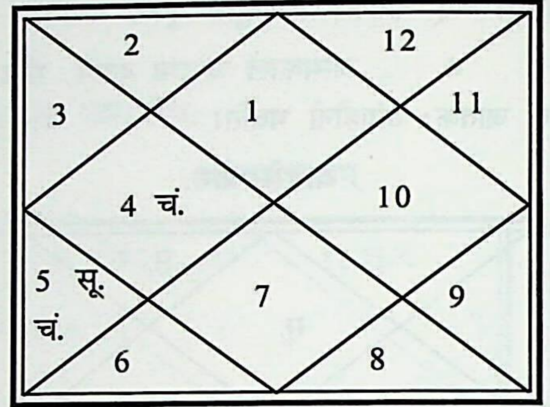
जीवे समन्दे दशमेऽर्धचन्द्रे वैकल्यमङ्गे क्षितिजे कलत्रे।
दिनश्चन्द्रौ रविशशियुक्तौ चन्द्रर्क्षगौ वा यदि शोषणं स्यात्।।[48]

गुरौ यत्र-तत्र शनियुक्ते भवति, सूर्यादुभयत्र त्रिराशिमितान्तरे विद्यमानचन्द्राऽर्धो सति तस्मिन्नर्धचन्द्रे दशमे भावे गतवति, भौमे सप्तमे भावे गते, जातकस्याङ्गे शरीरे कस्याङ्ग दौर्बल्यं वाच्यम्, सूर्यचन्दौ सिंह राशि गतौ कर्क राशि गतौ वा यदि भवेताम् तदा शोषणं जातकस्य शरीरे शोषणं अस्थिमात्रामेवाशेषं भवति।

वैकल्यं योगः



शोषणम् (रुक्षः) योगः



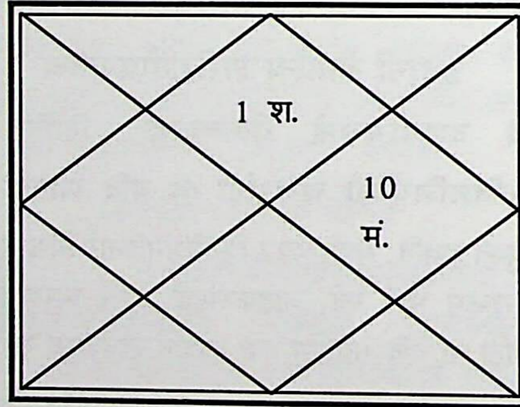
अथ ज्योतिषशास्त्राभिप्रायेण वातरक्तदोषस्य कारणम् –

व्योमस्थाने महीपुत्रः शनिदृष्टौ यदा भवेत्।

जन्मकाले यस्य जन्तोः स वातरुधिरार्दितः॥[49]

यदि जातकस्य जन्माङ्गे दशमस्थाने भौमः स्यात् तथैव भौमोपरि शनेः दृष्टिः स्यात् तदा वातरक्तनामको व्याधिः उत्पन्नो भवति।

अत्रैव वातरक्तव्याधि रोगः



इति वचनात् व्योमस्थानस्थित शनिदृष्टि भौमजनित वातरक्तदोशोपशान्तये मंगल प्रीतये पूर्वोक्तमेव जपहोमदानादिकं कुर्यात्।

अथ वातरक्त रोगे कर्मविपाक हेतुम् -

वातरक्तोद्रेके यथाह बोधायनः सवर्णागमने वातरक्तवान् भवति। अस्य प्रायश्चित्तं चन्द्रायणद्वयम्।

आयुर्वेदे वातरोगस्य चिकित्सा -

अभ्यंग स्वेदनं वस्ति नस्यं स्नेहं विरेचनम्।
स्निग्धाम्ललवणं स्वादु वृष्यं वातामयापहम्।।[50]

वात रोगेषु आदौ प्रथमतः तैलाभ्यंगः स्नानं, स्वेदनकर्मं, वस्तिकर्मं, नस्यस्नेहनं तथा विरेचनं च कर्तव्यानि एतैः वात रोगस्य निवारणं करोति।

पटोलफलकैर्यूषो वृष्यो वातहरो लघुः।
वाटयालकृतो यूषः परं वात विनाशनम्।।
पंचमूली बलासिद्धं क्षीरं वातामयापहम्।।[51]

परवरस्य फलानां रसपानं वात नाशकोषधिः भवति। दुग्धेन सह पंचमूलं वातरोगस्य निवारणार्थे परमोषधिः भवति।

तैलं घृतं चार्द्रकमातुलूगरसं सचुक्रं सगुडं पिवेधः।
कट्यूरूपृष्ठत्रिकगुल्मशूलगृध्रस्युदावर्त्तहरं प्रदिष्टः।[52]

तैलघृतं अद्रकस्य रसः विजौरानींबूकफलं एतेषां शर्करया सह वातरोगेण ग्रसितो जातकः पानं करोति चेत् तस्य कट्युपृष्ठ प्रदेशस्य वात रोगाः शान्तो भवति।

तत्रादौ वातविकारानुव्यास्यामः-

तद्यथा नख भेदश्च, विपादिका च, पादशूलं च, पादर्भंशश्च, पादसुप्ता च, वातखुड्डता च, गुल्मग्रहश्च, पिण्डिकोद्वेष्टेनं च, गृध्रस्रो च, जानुभेदश्च, जानुविश्लेषश्च, उरुस्तम्भश्च, उरुसादश्च, पाङ्गुल्यं च गुदभ्रंशश्च, गुदार्तिश्च, वृषणोत्क्षेपश्च, शेकः स्तम्भश्च, वङक्षणानाहश्च, श्रोणिभेदश्च, विभेदश्च, उदावर्तश्च, खञ्जनत्वं च, वामनत्वं च, त्रिक्ग्रहश्च, पृष्ठग्रहश्च, पार्श्वमर्दश्च, उदरावेशश्च, कण्ठोद्धवंसश्च, हनुस्तम्भश्च, ओष्ठभेदश्च, दन्तभेदश्च, दन्तशैथिल्यं च, मूकत्वं च, वातविकारामुपरिसंख्येयानामाविष्कृततमा व्याख्याताः।[53]

सर्वेष्वपि खल्वेतषु वातविकारेसूक्तेष्वन्येषु चानुक्तेषु वायोरिदमात्मरूप्परिणामि कर्मणश्च, स्वलक्षणं,यदुपपलभ्य,तदवयवयं वाप विमुक्तसंदेहा वातविकारमेवाध्यवस्यन्ति कुशलाः तद्यथा- रौक्ष्वं लाघवं वैशद्य शैत्यं गतिरमूर्तत्वं चेति वायोरात्मरूपाणिः एवं विधत्वाच्च कर्मणः स्वलक्षणमिदमस्य भवति तं तं शरीरावयमाविशतः तद्यथा-

'संम्रभ्रंशव्यासांगा- भेदहर्षतर्षवर्तमर्दकम्पचालतोदव्यथाचेष्टादीनि, तथा खरपरुषविषद-सुषिरतारुणकषायविरसमुखशोषशूलसुप्तिसंकुचनस्तम्भनखञ्जतादीनि च वायोः कर्माणि, तैरन्वितं वातविकारमेवाध्यवसेत्।' तत्रावर्जिते वातोऽपि शरीरान्तर्गता वातविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते यथा वनस्पतेर्मूले छिन्ने स्कन्धशाखावरोह कुसुम फलपलाशादीनां नियतो विनाशस्तद्वत्।[54]

वीर्येण बस्तिरादत्तेदोषानापदमस्तकात्।
पक्वाशयस्थोऽम्बरगो भूमेरर्कोरशानिव॥
स कटि पृष्टकोष्टस्थान् वीर्येणालोऽय सञ्चयान्।
उत्खातमूलान् हरति दोषाणं साधुयोजितः॥
दोषत्रयस्य यस्माच्च प्रकोपे वायुरीश्वरः।
तस्मात् तस्यातिवृद्धस्य शररीरमभिघ्नतः॥
वायोर्विषहते वेगं नान्यावस्तेऋते क्रिया।
पवनबिद्धयतोयस्य वेला बेगमिवोदधेः॥[55]

॥ इति वातरोगाधिकारः॥

1 चरकः
2 वीरसिंहावलोकः
3 अं. सं. 11.16
4 सारावली 11.7
5 कौमारभृत्य 5.9
6 प्रश्नमार्गे 9.48
7 हारीतसंहिता 2.6.11
8 चरक संहिता, चिकित्सास्थानम्- श्लोक 2, अ. 28, पृ. 444
9 चरक संहिता, चिकित्सास्थानम्- श्लोक 3, अ. 28, पृ. 444
10 चरक संहिता, चिकित्सास्थानम्- श्लोक 5, अ. 28, पृ. 444
11 चरक संहिता- 5 (आत्रेय संहिता स्थानम् अध्याय 1)
12 चरक संहिता- 6 (आत्रेय संहिता स्थानम् अध्याय 1)
13 चरक संहिता- 1 (आत्रेय संहिता स्थानम् अध्याय 1)
14 चरक संहिता- 8 (आत्रेय संहिता स्थानम् अध्याय 1)
15 चरक संहिता, चिकित्सा स्थानम्, अध्याय 28, श्लोक 9
16 चरक संहिता, चिकित्सा स्थानम्, अध्याय 28, श्लोक 10
17 चरक संहिता, चिकित्सा स्थानम्, अध्याय 28, श्लोक 11
18 चरक संहिता, चिकित्सा स्थानम्, अध्याय 25, श्लोक 12
19 चरक संहिता, चिकित्सा स्थानम्, अध्याय 28, श्लोक 10
20 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 1

21 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 2
22 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 3
23 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 4
24 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 5
25 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 6
26 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 7
27 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 8
28 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 9
29 वीरसिंहावलोक, वाताधिकारः, श्लोक. 10
30 जातक पारिजात, श्लो. 12
31 प्रश्नमार्गः
32 जातक पारिजात, अ. 6, श्लो. 95
33 बृहज्जातकम्, अ. 23, श्लोक 7
34 बृहज्जातकम्, अ. 23, श्लोक 8
35 सारावली, अ. 37, श्लोक 22
36 सारावली, अ. 37, श्लोक 23
37 वीरसिंहावलोक, वातरोगाधिकारः, पृ. 227
38 वीरसिंहावलोक, वातरोगाधिकारः, पृ. 227
39 वीरसिंहावलोक, वातरोगाधिकारः, पृ. 228
40 वीरसिंहावलोक, वातरोगाधिकारः, पृ. 231, श्लोक 14
41 वीरसिंहावलोक, वातरोगाधिकारः, पृ. 231, श्लोक 15
42 वीरसिंहावलोक, वातरोगाधिकारः, पृ. 231, श्लोक 16
43 चरक संहिता, वातरोग चिकित्सा, पृ. 237
44 वीरसिंहावलोक, वातरोगाधिकारः, पृ. 232, श्लोक 22
45 वीरसिंहावलोक, वातरोगाधिकारः, पृ. 231, श्लोक 23
46 बृहज्जातकम् अ. 23, श्लोक 29
47 चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, अ. 17, श्लोक 25
48 जातक पारिजात, जातकाभङ्गाध्यायः, अ. 16, श्लोक 78
49 वीर सिंहावलोक, वातरक्तरोगाधिकारः, श्लोक 1, पृ. 252
50 वीर सिंहावलोक, वातरोगाधिकारः, पृ. 235, श्लोक 29,30
51 चरक संहिता, वातरोगाधिनिदानम्, पृ. 456
52 वीर सिंहावलोक, पृ. 239, श्लोक 58
53 च. सं., सूत्रस्थानम्, पूर्वोभागः, अ. 20, पृ. 170
54 च. सं., सूत्रस्थानम्, पूर्वोभागः, अ. 20, पृ. 171
55 2-5 सु. सं. चिकित्सास्थानम्, अ. 36

वैदिक वाङ्मय में विज्ञान तत्त्व

डॉ. फणीन्द्र कुमार चौधरी
सह-आचार्य (ज्योतिषविभाग)
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली-16

वेद का उद्‌देश्य इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट का परिहार है। अतः आज का विज्ञान जहाँ अन्त होता है वहाँ से वेद विज्ञान का प्रारम्भ माना जाता है। वस्तुतः आज का भौतिकविज्ञान विनाश की ओर उन्मुख करता है जबकि वेदाङ्ग में निहित विज्ञान व्यक्ति को सृजनात्मक शक्ति की ओर प्रेरित करता है। इस बात को हम सब भली भाँति जानते हैं फिर भी माया की जाल में ग्रसित होकर नासमझ बने हुए हैं। इस बात को स्पष्ट रूप से इस प्रकार जान सकते हैं कि आज के युग में मनुष्य की लगभग 80 वर्ष की आयु होती है। जिसमें 65 से 70 वर्ष तक की आयु तक शारीरिक ऊर्जा के साथ कार्य करने की शक्ति रहती है उसी में अपना सम्पूर्ण जीवन का कार्य करना होता है, परन्तु हमारे ऋषि मुनियों ने हजारों वर्षों तक तप करके वेदाध्ययन के उपरान्त जो कुछ मानव जीवन को जीने के लिए दिया है वह अमूल्य है, जबकि आज का विज्ञान भौतिकता पर आधारित है ऋषियों के हजारों वर्षों के अनुभव का आज के 80 वर्षों से तुलना करना मेरी दृष्टि में अनुचित है। अर्थात् वेद विज्ञान को समझने के लिए तप करना होगा जो आज असाध्य प्रतीत होता है। तदुपरान्त हमारे ऋषियों ने वेद को अनन्त कहा। कितने ही तपस्वी मानव जीवन भर वेदाध्ययन करके भी वेद-रहस्य को एवं वेद के यथार्थ तत्त्व को नहीं समझ सके।

तैत्तिरीय एवं मैत्रायणीय संहिता में कहा गया है कि **'यद् वै किञ्च मनुरवदत् तद् भेषजम्'**[1] अर्थात् जो कुछ मनुजी ने कहा है वह मनुष्यों की भलाई के लिए औषधि है। वही मनुजी कहते हैं-

सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।[2]

तात्पर्य यह है कि वैदिक शब्दों के आधार पर ही जगत् के प्राणियों के नाम, कर्म और व्यवस्थाएँ अलग-अलग की गयीं।

मनुजी का एक स्थान पर वेद के प्रति वचन इस प्रकार है- **'भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति'**[3]। आशय यह है कि 'भूत, भविष्य, वर्तमान सब वेद से सिद्ध होते हैं। मानो वेद

त्रिकाल का बोधक है, गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।[4]

गीता के इस श्लोक का आशय यह है कि आदिपुरुष नारायण वासुदेवभगवान् ही नित्य और अनन्त तथा सबके आधार होने के कारण और सबसे ऊपर नित्यधाम में सगुण रूप से वास करने के कारण ऊर्ध्व नाम से कहे गये हैं और मायापति, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही इस संसाररूप वृक्ष के कारण हैं, इसलिये इस संसार वृक्ष को ऊर्ध्वमूल वाला कहते हैं।

उस आदिपुरुष परमेश्वर से उत्पन्न होने के कारण तथा नित्य धाम से नीचे ब्रह्मलोक में वास करने के कारण, हिरण्यगर्भ रूप ब्रह्मा को परमेश्वर की अपेक्षा अधः कहा है और इस संसार का विस्तार करने वाला होने से मुख्यशाखा है, इसलिये इस संसार वृक्ष को अधःशाखा वाला कहते हैं। इस वृक्ष का मूल कारण परमात्मा अविनाशी है तथा अनादिकाल से इसकी परम्परा चली आती है, इसलिये इस संसार वृक्ष को अविनाशी कहते हैं। इस वृक्ष की शाखा रूप ब्रह्मा से प्रकट होने वाले और यज्ञादिक कर्मों के द्वारा इस संसार वृक्ष की रक्षा और वृद्धि करने वाले एवं शोभा को बढ़ाने वाले होने से वेद-पत्ते कहे गये हैं।

भगवान् की योगमाया से उत्पन्न हुआ संसार क्षणभङ्गुर, नाशवान् और दुःखरूप है, इसके चिन्तन को त्यागकर केवल परमेश्वर का ही नित्य-निरन्तर अनन्य प्रेम से चिन्तन करना वेद के तात्पर्य को जानना है।

वेद-तथा परमेश्वर को जानना असाधारण है इसे योगी लोग ही जान सकते हैं। उत्तम योगी का लक्षण गीता के भक्तियोगाध्याय में इस प्रकार वर्णित है-

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।[5]

यहाँ पर इन पंक्तियों का उल्लेख इसलिये किया हूँ कि भौतिक विज्ञान भौतिक सुख सुविधाओं को दे सकता है परन्तु परमात्मा (परमेश्वर) को ढूँढ़ना उनके लिए असाध्य है। परन्तु वेद आदि का ज्ञाता योगीजन परमेश्वर के सूक्ष्म रूप को जानते हैं। अतः उसकी आज्ञा के अनुसार सदा चलने से निश्चित रूप से सफलता मिलती है।

वेदोत्पत्ति में विभिन्न मत

वेदोत्पत्ति में स्वयं ऋग्वेद का एक मन्त्र इस प्रकार है-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत्।।[6]

अर्थात् यज्ञ से ऋग्वेद सामवेद उत्पन्न हुए। आशय यह है कि सर्वात्मक पुरुष के सङ्कल्प रूप होम से मानस यज्ञ से ऋग्वेदादि उत्पन्न हुए। स्पष्टरूप से यह समझना चाहिए कि भगवान् ने इच्छा की और वेद उत्पन्न हुए। उत्पन्न होने का अर्थ अभिव्यक्ति मानकर बहुत लोग कहते हैं कि नित्य वेद सृष्टि के समय ईश्वरेच्छा से अभिव्यक्त हुए। दूसरा मत कहता है कि भगवान् (पुरुष) से वेद उत्पन्न हुए, इसलिए वे ही वेद कर्ता हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् वेदों को भगवान् का श्वास मानती है। शतपथब्राह्मण, निरुक्त और मनुजी का मत है कि ऋषियों ने सूर्य, अग्नि और वायु देवताओं से वेदों को ग्रहण किया अर्थात् इनके द्वारा वे संसार में प्रकट हुए। मनुजी ने लिखा है-

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम्।।[7]

अर्थात् ऋग्यजुःसाम रूप तीनों शाश्वत वेदों को यज्ञ सिद्धि के लिए अग्नि, वायु और सूर्य से दूहा अर्थात् प्राप्त किया गया।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है-

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।[8]

अर्थात् जो सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न करता और उसके लिए वेदों को भेजता है उस परमात्मा को मैं मोक्षेच्छु शरणरूप में ग्रहण करता हूँ। इस सन्दर्भ में अनेकों वचन प्राप्त होते हैं। यथा-

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा।।[9]

ब्रह्मा की अनुज्ञा से महर्षियों ने तपस्या के द्वारा प्रलयावस्था में छिपे हुए, इतिहास के साथ, वेदों को प्राप्त किया। श्रीमद्भागवत का प्रथमश्लोकांश है- **'तेने ब्रह्म हृदाय आदिकवये'** अर्थात् भगवान् ने ब्रह्मा के लिए वेद का विस्तार किया। वेदान्त भी ब्रह्मा के द्वारा ही वेद की प्राप्ति बताता है। महाभारत, सांख्यशास्त्र, न्यायशास्त्र, योगशास्त्र, पुराणादि में विभिन्न स्थलों पर वेद की उत्पत्ति वा आदि और अपौरुषेय आदि का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ विचार करने की बात है कि जिसको भगवान् ने बनाया इससे बड़ा विज्ञान नहीं हो सकता। एवं अग्नि, वायु, सूर्य जो प्रतिदिन क्षण-क्षण जीवन का आधार है क्या यह विज्ञान नहीं है? अस्तु।

अब मुख्य बिन्दु विज्ञान तत्त्व पर विचार करते हैं- सभी जीवों में मानव जीवन श्रेष्ठ है क्योंकि ज्ञान सभी जीवों में है परन्तु मानव का ज्ञान व्यावहारिक एवं सामाजिक के साथ-साथ सभी

जीवों के लिए उपयोगी तथा जीवनरक्षक का काम करता है, चूँकि मानव स्वभाव से अन्वेषक प्राणी है। वह सृष्टि के प्रत्येक वस्तु के साथ अपना जीवन का तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है उसकी इसी प्रवृत्ति ने ज्योतिष तथा अन्य शास्त्रों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बाध्य किया है।

वेदाङ्गों में विज्ञान सर्वप्रथम यज्ञ के माध्यम से, उपदेश से, क्रिया से, प्रयोग से, एवं गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक के संस्कारों के माध्यम से हम मानवों को प्रसङ्गानुसार लाभान्वित कराया है। यथा–

यत्र त्रातुमिदं जगज्जलजिनीबन्धौ समभ्युद्गते
ध्वान्तध्वंसविधौ विधौतविनिमन्निःशेषदोषोच्चये।
वर्तन्ते क्रतवः शतक्रतुमुखा दीव्यन्ति देवा दिवि
द्रङनः सूक्तिमुचं व्यनक्तु स गिरं गीर्वाणवन्द्यो रविः।।[10]

भास्कराचार्य अपने इस मङ्गल पद्य में कहते हैं कि जिस कमलिनी बन्धु (सूर्य) के उदय होने पर संसार के रक्षार्थ यज्ञारम्भ किये जाते हैं और यज्ञांश के अधिकारी इन्द्रादि देव आनन्द से स्वर्ग में क्रीड़ा करते हैं, जो विश्व के अन्धकार को दूर करता है इत्यादि प्रकार से सूर्य की वन्दना किये हैं। यहाँ सूर्य और यज्ञ दोनों अपने आप में वैज्ञानिकता लिए हुए हैं।

ऋग्वेद में कहा गया है कि सम्पूर्ण संसार की नाभि यज्ञ है। **'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः'**[11]। सिद्धान्ततत्त्वविवेक के बिम्बाधिकार में कमलाकरभट्ट कहते हैं कि–

तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलकाः।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिप्रदीपिताः।।[12]

इस पद्य में कितनी वैज्ञानिकता है? अर्थात् आकाश में सूर्य तेज का गोला है। अन्य ग्रह नक्षत्रों में जल की मात्रा है सूर्य की किरणें पड़ने से वे चमकते हैं। इतना ही नहीं लाखों वर्ष पहले मङ्गल ग्रह के लिए ऋषियों ने कहा कि मङ्गल रक्त वर्ण के हैं, उस चीज को आज के वैज्ञानिकों ने अब ढूँढ़ कर बताया कि मङ्गल पर लाल रंग की मिट्टी है।

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात्कालबोधो यतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्।।[13]

वेदाङ्गज्योतिष के इस पद्य में वेद को यज्ञकर्म का प्रवर्त्तक बताया है और काल के अधीन सम्पूर्ण यज्ञकर्म कथित हैं। ज्यौतिष शास्त्र से काल का ज्ञान होता है अतः कोई भी कार्य काल सम्प्राप्त है काल से कोई भी वस्तु बाहर नहीं है, फलतः काल स्वयं विज्ञानस्वरूप है। अतः ज्योतिषशास्त्र तीन स्कन्धों में है। सिद्धान्त– होरा– संहिता जहाँ काल को प्रमाण अथवा प्राण मानकर

मानव के जितने भी शुभ कर्म हैं उन सबका विवेचन किया गया है। ज्योतिष कल्पवृक्ष का मूल ग्रहगणित ज्योतिष है, जो खगोलविद्या से ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त अङ्कगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रैकोणमितिक गणित, ग्रहगोलीयरेखागणितादि अनेक उपकरण रूप गणितों से इस सौरमण्डल की गतिविधि को समझकर उनसे किसी भी अभीष्ट समय के क्षितिज क्रान्तिवृत्तसम्पातरूप लग्नबिन्दु के ज्ञान से विश्व का, विश्व के जीवों का और विशेषकर मानव सृष्टि में उत्पन्न जातकों के शुभाशुभ भविष्यज्ञान की भूमिका उत्पन्न होती है। इसी आधार पर ज्योतिषशास्त्र के अमृत फल, जिसका नाम आदेश या फलादेश शास्त्र है। इस फलादेश की अनेक पद्धतियाँ विविध रूपों में उत्तरोत्तर उपलब्ध होती जा रही है जैसे (1) जातक ज्योतिष (2) संहिता ज्योतिष (3) प्रश्न ज्योतिष (4) नष्ट जातक (5) पंचाङ्ग ज्योतिष (6) मुहूर्त (7) स्वप्न (8) स्वर (9) शकुन (10) अङ्गदर्शन (11) वास्तुविद्या (12) वृष्टिविचार (13) औषधियों के प्रभाव (14) मनोविज्ञान (15) सामुद्रिक (16) इष्ट सिद्धि से वाक्सिद्धि (17) मन्त्र-तन्त्र प्रयोग (18) भूतसाधन विद्या (19) समर्घ, महर्घ (20) दूरानुभूति (21) काकभाषा आदि सभी विद्याओं में विज्ञान भरा है। एक छोटा से उदाहरण से स्पष्ट हो रहा है कि प्राचीन कालीन हमारे कृषक वर्ग को कोई विज्ञान प्राप्त नहीं था, केवल ज्योतिष गणना के आधार पर सूर्य की स्थिति देखकर कब बीज बोना चाहिए जिससे उत्तम फसल होगी, इत्यादि ज्योतिष विज्ञान का ज्ञान भारतीय अशिक्षित लोग भी जानते थे।

इतना ही नहीं पवन परीक्षा से मौसम का भी ज्ञान सहज कर लेते थे। तदनुरूप फसल बोते थे। माङ्गलिक जितने भी कार्य हैं बिना मुहूर्त्त के नहीं होते हैं। अतः काल प्रभावी है।

व्याकरण के माहेश्वर सूत्र ने लोगों को बोलना सिखाया है, जिससे शब्द बोध होता है। शाब्दबोध अपने आप में एक बड़ा विज्ञान है। व्यवहार जगत् भी मेरी दृष्टि में विज्ञान है क्योंकि वेद एवं उपनिषद् के जितने वाक्य हैं उन सबमें शालीनता, सजगता, अहङ्कार शून्यादि वस्तुओं के प्रति प्रेरित किया है। यथा–

1. **हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे**[14] – अर्थात् सर्वप्रथम केवल परमात्मा थे।
2. **एको विश्वस्य भुवनस्य राजा**[15]– वह समस्त लोकों का एकमात्र स्वामी है।
3. **स नः पर्षदति द्विषः**[16] – अर्थात् हे देव! हमें शत्रुओं से बचावें।
4. **मह्यं वातः पवताम्**[17]– वायु देव! मुझे पवित्र करें।
5. **एनो मा नि गाम**[18]– हे देव! मैं पाप में न फँसू।
6. **शं नः कुरु प्रजाभ्यः**[19]– हे परमात्मा! हमारी संतानों का कल्याण करें।
7. **अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्याः**[20]– अर्थात् हे परमपिता! हमारी इच्छाएँ सच्ची हों।

इत्यादि वाक्यों में व्यवहार पर आधारित वस्तु है जो हमारी वाणी एवं कर्म को शुद्ध करने के लिए उन्मुख है।

आयुर्वेद के चरक, सुश्रत आदि जितने ग्रन्थ हैं वे सब विज्ञान पर आधारित हैं। आज के युग में जब अंग्रेजी दवाई से रोग शमन नहीं होता तब आयुर्वेद के शरण में जाते हैं। आयुर्वेद का नामकरण ही आयु को बढ़ाने वाला वेद है इसकी वैज्ञानिकता स्वतः सिद्ध है। इसके अतिरिक्त वेदों में विमान विद्या, रसायन विद्या, भूगोल विद्या, भौतिक विद्या, आध्यात्मिक विद्या, शस्त्रविद्या, आदि का वर्णन अनेकत्र विस्तारपूर्वक किया गया है।

मानव जीवन भोजन, वस्त्र और आवास पर अवलम्बित है। भोजन के लिए अन्न चाहिए। इस सन्दर्भ में गीता का यह वाक्य कितना मार्मिक प्रतीत होता है–

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।[21]

इस वाक्य से स्पष्ट है कि यज्ञ के अधीन पर्जन्य है, पर्जन्य के अधीन अन्न एवं वस्त्र आदि हैं। वैज्ञानिकता का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

वास्तुशास्त्र से प्रकृति में पाये जाने वाले ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार का घर होना चाहिए, कैसा नगर, देश आदि सबका विचार भली–भाँति किया गया है। अन्ततः यह कह सकते हैं कि हमें सत्य पर टिका रहना चाहिए, सत्य की विजय अन्त में होती है। कहा भी गया है–

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।

सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।[22]

इति शम्।

1. तै.सं. 2.2.10.2, मै. 2.1.5, कठ. 11.5
2. मनुस्मृति 1.21
3. मनुस्मृति 12.97
4. गीता 15.1
5. गीता. 12.1
6. ऋग्वेद 10.90.9
7. मनुस्मृति 1.23
8. श्वेताश्वतरोपनिषद् 6.18
9. ऐतरेय ब्र.सा.भाष्य उपोद्घात
10. सि.शि.अ. 1.1
11. ऋग्वेद 1.164.35
12. सिद्धान्ततत्त्वविवेक– बिम्बाधिकार, प्रथम अध्याय।
13. उद्धृत सि.शि. प्रथम अध्याय।
14. ऋग्वेद 10.121.1
15. ऋग्वेद 6.36.4
16. ऋग्वेद 10.187.1
17. ऋग्वेद 10.128.2
18. ऋग्वेद 10.128.4
19. यजुर्वेद 36.22
20. यजुर्वेद 2.10
21. गीता 3.14
22. चा. नी. दर्पण 5.19

युजर्वेदे आयुर्विज्ञानम्

महामहोपाध्यायः डॉ. देवेन्द्रप्रसादमिश्रः
वेदाचार्यः एम.ए. (हिन्दीसंस्कृविषययोः)
विद्यावारिधिः (पी-एच.डी.) विद्यावाचस्पतिः (डी.लिट्.)
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली-16

रोगेभ्यः स्वजीवनरक्षणं रोगनिवृत्तिः आयुर्दीर्घीकरणमेव आयुवेदविज्ञानं कथ्यते। सृष्टेरारम्भादेव रोगाणां निर्वृतिर्यथा एतदर्थमुपायाः प्रचलन्तः सन्ति। अन्येषां विद्यानामिव आयुर्वेदविज्ञानस्यापि प्रमुखं प्रथमं द्वारं वेद एवास्ति। यजुर्वेदे आयुःप्रकरणमादाय बहुषु स्थलेषु चर्चा दृश्यते। दीर्घायुः इत्यस्य प्राप्त्यर्थं मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः उपदिशन्ति प्रयत्नप्रार्थनाभ्यामायुर्दीर्घीकरणं भवतीत्युक्त्वा युजर्वेदे बहुषु स्थलेषु प्राप्यत एव। यथा-

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। शरदः शतञ्जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।[1]

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जीजीविषेञ्छतꣳ समाः।[2]

इत्यादिभिः। यजुर्वेदे प्रामुख्येन यक्ष्मादिरोगाणां चर्चा कृतास्ति। रोगाणां कारणत्रयं वेदेषु दृश्यते। यथा-

प्रथमम्- शरीरे शनैः शनैः संचितं भवति, विषयस्य मात्राधिक्ये शरीरे विकारं जनयति।

द्वितीयम्- द्वितीयं कारणं तु कृमिः एवं जीवाणुपुञ्जं स्वीकृतम्। एते जीवाणवोऽदृश्यरूपेण स्थिता भवन्ति। एतेषां स्थितिः शरीरस्य कृते कष्टकरा भवति।

तृतीयम्- तृतीयं कारणं तु त्रिदोषमङ्गीकृतवचान्। शरीरे रक्तसंचारस्य तथा च धमनि पदाभिधानां शिराणां शुद्धाशुद्धरक्तप्रवाहादिविषयाणां वर्णनमस्ति। अश्विनीकुमारद्वारा कृतशल्यादिचिकित्साद्वारा जातस्य चमत्कारस्यापि वर्णनमस्ति। अश्विनौ वै देवानां भिषजौ[3] अश्विनीकुमारौ देवतानां देवतानां वैद्यौ स्तः। केषाञ्चिद् ओषधीनामपि वर्णनं यत्र तत्र वेदे समुपलभ्यत एव। विषप्रकरणे स्थावरजङ्गमभेदेन विषस्य द्विविधत्वस्यापि वर्णनमुपलभ्यते। यथा सर्पे जङ्गमविषः तथैव जलचरस्थलचरवृश्चिकादिकीटेष्वपि। स्थावरविषस्तु कन्द एवं ओषधीषु प्राप्यते। तथैव पृथिवीभ्य एवं गोभ्यो अपि उत्पद्यते। वेदेषु रोगाणां निवारणं यथा स्यात् एतदर्थमग्निवायुजलसूर्यविद्यादीनामोषधरूपेण वर्णनं विहितम्। भिन्नभिन्नरोगाणां

कृते प्रभावकारिणां वनस्पतीनां प्रयोगः प्राप्यते। यथा- अजशृङ्गी, अपामार्गः, अरुन्धन्ती, कुष्ठकेशदृंहणी, क्लीकरणी, तलाशा, तौविलिका, पाटा, दशवृक्षम् पिप्पली, सहस्रचक्षुः पृश्निपर्णी, रोहिणी, लाक्षा सहस्रपर्णी, सोमलता इत्यादयः। शरीरे वनस्पतिसम्बन्धिमणिधारविधानस्यापि वर्णनं प्राप्यते। वनस्पतिजन्याः मणयः रोगनाशकाः, शत्रुनाशकाः, बलबुद्धिवर्धकाश्च भवन्तीति कृत्वा स्वीकृतमस्ति। वेदार्थस्य शैल्याचेतनमपि चेतनवत् सम्बोधयति।[4] मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः वनस्पतिषु जडत्वमस्तीति ज्ञात्वाऽपि चेतनाश्रयवद् व्याख्यान्ति।

यजुर्वेदे शरीस्य रोगाश्रयत्वं विषकृमिवातपित्तकफादिभिः स्वीकृतम्। अन्नजलदुग्धपदार्थेषु प्रवेशं कृत्वा यदा जीवाणवः शरीरमध्ये गच्छन्ति तदा ते शरीरं रोगयुक्तं कुर्वन्ति। यकृत्, क्लोमः तथा गवीनिकायाः वायव्यपदार्थेभ्यः चिकित्सां सम्पादयन् वरुणः पित्तं मिनापि, पित्तं सृजति इत्यर्थः[5] इति। अनेन मन्त्रेण एतदपि सिद्धं भवति यत् पित्तशान्त्यर्थं वेदः वायव्यद्रव्याणां प्रयोगकृते निर्दिशति। प्राणापानसमानव्यानोदान इत्यादिभेदेन पञ्चवातानां वर्णनमपि कृतास्ति। यथा- **देवान् प्राणाय त्वोदाय त्वा व्यानाय त्वा**[6]। वैद्यस्य व्यवसाये सदाचारः परमावश्वयकोऽस्ति। सदाचारेण भिषजः आत्मा उन्नता भवति। तथैव रोगी अपि सदाचारेण प्रसन्न एवं स्वस्थो भवति। सद्वृत्तपूर्वकं मन्त्राणां जपनेनापि रोगी सदा रोगान्मुक्तो भवति। यजुर्वेदस्य काश्चनसूक्तयः द्रष्टव्याः सन्ति यथा- **ॐ क्रतोस्मर**[7]**, अग्नेनय सूपथा**[8]**, जगदयक्ष्मं सुमना अस्त्**[9]**, युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो**[10]**, दुरितानि परासुवः**[11]**, आयुर्यज्ञेन कल्पताम्**[12]**, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**[13]**, मा गृधः कस्यस्विद्धनम्**[14]**, तेन त्यक्तेन भूञ्जीथाः**[15]**, भूत्यै जागरणं अभूत्यै स्वप्तम्**[16]**, मृत्योर्मा अमृतं गमय**[17]**, यस्यच्छायामृतम्**[18]**, व्रतेन दीक्षामाप्नोति**[19]**, श्रद्धया सत्यमाप्यते**[20]**, स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवा भव।**[21]

भिषक्- यजुर्वेदे वैद्यस्य कृते वैद्यस्थाने भिषक् इत्येतच्छब्दस्यैव प्रयोगः विहितोऽस्ति। भिषगिति चिकित्सिते इति भिषक्। अर्थात् यः रोगं प्रतिकारं करोति सः एव भिषक्। यजुर्वेदस्य श्रतिः कथयति प्रवित्रतायाः कृते वैद्यस्य नियुक्तिः कृतास्ति। यथा पवित्राय भिषजमित्यादिभिः[22] एतेनेदं स्पष्टरूपेण आयाति यत् भिषजः व्यवसायः परमपवित्रोऽस्तीति। यजुर्वेदे सर्वतो महान् वैद्यरूपेण परमात्मा स्वीकृतः। यथा- **अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्**[23] इत्यादिभिः। यजुर्वेदे दैवमानुषभेदेन द्विविधौ भिषजौ आयातः। दैवभिषजः यथा- **अग्निरुद्रवरुणेन्द्राश्विनीकुमारम-रुदित्यादयः**[24] मन्त्रेऽप्युक्तम्- **वरुणं भिषजां पतिम्**[25]**, वरुणो भिषक्।**[26]

अश्विनौ- अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्। व्याचेन्द्रो बले नेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्।।[27] अश्विनौ देवानां भिषजो।[28] इन्द्रः- अथ यः स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः।[29] इन्द्रं देवभिषजम्।[30] देवतानां होतृभिः तत्सदृशमृदुप्रयाजदेवतानां सत्यस्वरूपदेवतानां वैद्यअश्विनीकुमारसरस्वत्योः निमित्ताय यजनं चकार। अनेन याजेन बाल्यावस्थावती अश्वा वत्ससहिता गौश्च चिकित्सकस्य कार्यं कुरुते। इन्द्रस्य

निमित्तमश्वादिदक्षिणायमेते देवाः भिषजं पूर्णयन्ति। यजुर्वेदस्य एकविंशत्यध्यायस्य ऊनविंशन्मन्त्रादोरभ्य चत्वारिंशन्मन्त्रं यावत् द्वादशमन्त्राः ''प्रैष'' इति। अस्मिन् प्रैषे अनेकेषां तेजःप्रदातृणामोषधीनां प्रयोगाय कृते निर्देशो विद्यते। अश्विनीकुमारौ सरस्वती इन्द्रदेवताभ्यां पूजिता भूत्वा जलस्य सारभूतं महौषधिभ्यः निष्कासितं सोमरसं घृतं मधु च पिबन्ति। अग्निवरुणेन्द्ररुद्राश्विनीसरस्वत्यः सत्य दैवभिषजः सन्ति। एते च प्रकृतेरशुद्धतां नाशयित्वा संसारमखिलं पवित्रं स्वस्थ्यसम्पन्नमपि कारयन्ति। एतेषां दैवभिषजां वर्णनं यजुर्वेद बहुषु प्रसङ्गेषु प्रात्यते।

कृमिः- उच्छिष्टेषु स्थाल्यादिषु बहव एतादृशाः जीवाणवः तिष्ठन्ति ये शरीरस्यान्तर्मध्ये प्रविश्य शरीरे रोगमुत्पादयन्ति तेषां प्रक्षेपणमतिदूरे कर्तव्यम्। यथा - **येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।।**[31]

अन्यप्रकारकाः कृतयः ये जलौषधिपर्वतवनेषु तिष्ठन्ति। तथैव उदरवेष्टादिकृमयः मनुष्यपशुशरीरस्य अन्तर्मध्ये उत्पन्नाः भवन्ति। मलमूत्रादिजन्याः कृमयः ये स्वस्य विषस्थापनेन रोगानुत्पादयन्ति। ईदृशानां दृष्टादृष्टकृमीणां वर्णनं यजुर्वेदे प्राप्यते। तेषां गुणदोषकर्मद्वारा अनेकानि नामानि सन्ति। यजुर्वेदे राक्षसपिशाचयातुर्यातुधानकिमिदिगन्धर्वाप्सरा इत्यादिपदानां साधारणतयैव प्रयोगः कृतः।

कृमिचिकित्सा- यजुर्वेदे कृमिचिकित्सासम्बन्धिवर्णनमपि बहुषु स्थलेषु प्राप्यते। दृष्टादृष्टकृमयः येऽनेकप्रकारकानुपद्रवानुत्पदयन्ति। तान् सूर्याग्निजलमरुन्मेघविद्युदजशृङ्गी-अपामार्ग-आञ्जन-औक्षगन्धी-कार्ष्मर्यकुष्ठ-गुग्गुलुनलदीपीतपृश्निपर्णीप्रतिसरप्रमन्दिनीशता वरशंखसर्षपसहस्रचक्षुःसीसकादिपदार्थाः दूरयन्ति। यथा- आपो वै रक्षोघ्नीः[32] इन्द्रः तत् (रक्षः) सीसेनावजघान[33], यदपामार्गहोमो भवति रक्षसामपहत्यै[34] एतं रक्षोहणं इतिविषयकवर्णनमपि मिलति। एतानतिरिच्य शरीरस्यान्तरिकबाह्यगतिषु शिथिलता एवं शिरोवेदना इत्यादयः उपद्रवाः अपि वर्णिताः सन्ति।

ज्वरौषधम्- अशरीकविशरीककफपुष्टित्यादिरोगाणां शरदर्तौ प्रकुपितभविष्यविश्व-शारदमलेरियाज्वरस्य च ''जंगीड'' इति नामकं औषधं निवारणं करोति। कुष्ठनामाख्यौषधिविशेषस्य नामान्तरं तद्भवति, तक्मानाशनमस्ति। अञ्जननामकौषधविशेषस्य प्रयोगेण ज्वरकफदाहादीनां नाशो भवति। यजुर्वेदे उक्तमस्ति यत् हे ओषधयः! गन्धर्वेण तव अनुसन्धानं कृतम्। बृहस्पतीन्द्राभ्यां तथैव सोमराज्ञापि तव सामर्थ्यस्यानुसन्धानं कृतं, युष्माकं प्रयोणैव यक्ष्मारोगेभ्यः मुक्तो जातः। युष्माकं गुणवेत्तारः तव प्रयोगेणानेकेभ्यः रोगेभ्यः मुक्ताः जाता। यथोक्तम् - **त्वां गन्धर्वा अखनंस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत।।**[40]

राजयक्ष्मा - कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयशाखायां क्षय (T.B.) इत्यस्य कृते राजयक्ष्मा[41] पापयक्ष्मा इत्युभयोः शब्दयोः प्रयोगः विहितो विद्यते। एतदतिरिच्य ''जायेऽन्यः'' शब्दस्यापि प्रयोगः तत्रैव प्राप्यते। यजुर्वेदीयमाध्यन्दिनशाखायाः शतपथब्राह्मणे क्षयशब्दप्रयोगः। तैत्तिरीया श्रुतिः ''जायेऽन्य''

शब्दस्य व्याख्यां कुर्वन्ती कथ्यति। यः स्त्रीभ्यः उत्पन्नो भवति स एव जायेऽन्य अथवा जायान्याऽस्ति। "यञ्जायाभ्योऽविन्दत् तञ्जायेन्यस्य" अस्य निर्वचनस्य एतदेव तात्पर्यमस्ति अत्यधिकेन मैथुनेन शुक्रक्षयं कृत्वा रोगो जायते। अत्र च राजयक्ष्माण जायोऽन्यस्योत्पत्तौ द्वौ हेतू लिखितौ स्तः।

प्रथमम्– सः रोगः जीवाणुमाध्यमेन एस्मादन्ये प्रविशति। **द्वितीयम्**– कारणं शुक्रक्षयोऽस्ति। राजयक्ष्मा शरीरस्यास्थिमांसवीर्यादिषु स्वप्रभावं स्थापयित्वा रोगिणं शोषयति। जायोऽन्य एवं राजयक्ष्माणः ओषधरूपेण आञ्जनभक्षणं तथा सुगन्धितद्रव्याणां हवनं विहितमस्ति।

राजयक्ष्माणः चन्द्रेण सह सम्बन्धः। प्रजापतेः[42] अष्टाविंशति दुहितारः आसन्। सर्वासां पुत्रीणां प्रजापतिः चन्द्राय दानं कृतवान्। चन्द्र प्रजापतेः अन्यपुत्रीः प्रति उदासीनो भूत्वा रोहिण्यामन्यन्तासक्तिं कृत्वान्। अत एव चन्द्रशरीरे यक्ष्मारोगस्य प्रवेशो जातः[43]। सोमस्तु प्रतिनक्षत्रेषु निवसन् स्वर्माचक्रं पूरयति, एतदेव चन्द्रमसः प्रजापतिपुत्रीष्वभिगमनमस्ति। अन्यनक्षत्रापेक्षया रोहिणीनक्षत्रे अधिककालं यापयति, इदमेव चन्द्रस्य रोहिणीं प्रत्यासक्तिरस्ति। चन्द्रस्य कलानां क्रमेण क्षयमेव राजयक्ष्मा अस्ति।

1. यजुर्वेदसंहिता 36.24
2. यजुर्वेदसंहिता 40.2
3. यजुर्वेदः 40.2
4. निरुक्तम् दै.का. 7.7
5. यजुर्वेदः 40.2
6. यजुर्वेदः 1.20
7. यजुर्वेदः 40.15
8. यजुर्वेदः 40.16
9. यजुर्वेदः 16.4
10. यजुर्वेदः 40.16
11. यजुर्वेदः 30.3
12. यजुर्वेदः 9.21
13. यजुर्वेदः 3.1
14. यजुर्वेदः 40.1
15. यजुर्वेदः 40.1
16. यजुर्वेदः 30.17
17. श.ब्रा. 14.3.1.30
18. यजुर्वेदः 25.13
19. यजुर्वेदः 19.30
20. यजुर्वेदः 19.30
21. तै.आ. 7.9.11
22. यजुर्वेदः 30.10
23. यजुर्वेदः 16.5
24. यजुर्वेदः 34.28–30

25. यजुर्वेदः 21.40
26. यजुर्वेदः 21.58
27. यजुर्वेदः 20.80
28. ऐतरेयब्राह्मणम् 1.8
29. शतपथब्राह्मणम् 8.5.3.2
30. शुक्लयजुर्वेदः 28.9
31. शुक्लयजुर्वेदः 16.62
32. तैत्तिरीयसंहिता 3.2.3.12
33. शतपथब्राह्मणम् 5.4.1.10
34. तैत्तिरीयब्राह्मणम् 1.7.1.8
35. शतपथब्राह्मणम् 2.4.1.7
36. शुक्लयजुर्वेदः 1.7
37. सुश्रुत् 20.29.7
38. चरकसंहिता अ. 1
39. शतपथब्राह्मणम् 5.2.4.3
40. शुक्लयजुर्वेदः 12.98
41. कृष्णयजुर्वेदतैत्तिरीयसंहिता 2.3.5.2
42. यो ह्येव सविता स प्रजापतिः श.ब्रा. 12.3.5.1
43. चकचिकित्सास्थानम् 8

थैलोसिमिया रोगः ज्योतिषीय सन्दर्भ

डॉ. प्रवेश व्यास

सहायकाचार्य, वास्तुशास्त्र विभाग,
श्रीलानशारासंविद्यापीठ, नई दिल्ली-66

रोग के होने पर शारी की हीमोग्लोबिन निर्माण प्रक्रिया में गड़बड़ी हो जाती हैं जिसके कारण रक्तक्षीणता के लक्षण प्रकट होते हैं इसमें रोगी के शरीर के रक्त की भारी कमी होने लगती हैं जिसके कारण उसे बार-बार बाहरी खून चढ़ाने की आवश्यकताहोती है इसकी पहचान तीन माह की आयु के बाद ही होती हैं विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार देश में हर वर्ष सात से दस हजार थैलीसीमिया पीड़ित बच्चों का जन्म होता है केवल दिल्ली व राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में ही यह संख्या करीब 2500 हैं भारत की कुल जनसंख्या का 3.4 प्रतिशत भाग थैलोसीमिया ग्रस्त है।[1]

थैलोसीमिया दोप्रकार का होता है माइनर थैलोसीमिया व मेजर थैलोसीमिया। हीमोग्लोबीन दो प्रकार के प्रोटीन से बनता है। अल्फा ग्लोबिन व बीटा ग्लोबिन। प्रोटीन में ग्लोबिन निर्माण की प्रक्रिया में खराबी होने से थैलेसीमिया हो जाती है। जिससे लाला रक्त कोशिकाएं तेजी से नष्ट होती है रक्त की कमी से हीमोग्लोबिन नहीं बन पाता है रोगी को बार बार रक्त चढ़ाना पड़ता है। बार-बार रक्त चढ़ाने के कारण रोगी के शरीर में अतिरिक्त लौह तत्व जमा होने लगता हैं जो ह्रदय यकृत और फेफड़ों में पहुंचकर प्राणघातक हो जाता है। जैसे जैसे आयु बढ़ती जाती है, रक्त की आवश्यकता भी बढ़ जाती है।

थैलोसीमिया पर विश्व भर के शोध अनुसंधान निरन्तर नारी है इस रोग में अतिरिक्त लौंह तत्व को निकालना आवश्यक होता है। भारत में अतिरिक्त लौह निकालने के लिए दो तरीके प्रचलन में हैं पहले तरीके में इंजेक्शन के द्वार आठ से दस घण्टे तक लौह निकाला जाता है यह प्रक्रिया में हर साल पचास हजार से डेढ लाख रूपए तक खर्च आताहै दूसरी प्रक्रिया में कैलफर नामक दवा दी जाती है यह दवा सस्ती है परन्तु इसका प्रयोग करने वाले 30 प्रतिशत रोगियों को जोड़ों में दर्द की समस्या हो जाती है साथ ही इनमें से एक प्रतिशत बच्चे गंभीर बीमारियों कीचपेट में आ जाते हैं।

यदि पैदा होने वाले बच्चे के माता पिता दोनों के जींस में माइनर पेलेसीमिया होता है, तो बच्चे में मेजर थेलेसीमिया हो सकता है, जो काफी घातक हो सकता हैं किन्तु पालकों में से एक ही में माइनर थेलेसीमिया होने पर किसी बच्चे के खतरा नही होता, यदि माता-पिता दोनों को माइनर रोग है तब भी बच्चे को यह रोग होकने की 25 प्रतिशत संभवना रहती है। इस प्रकार से यह रोग जन्मजात व आनुवाशिक रोग कहा जा सकता हैं रोगों को मुख्य रूप से दो प्रकार का माना गया है सहज एवं. 2. आगन्तुक।[2] जन्मजात रोगों को सहज रोग भी कहा जाता हैं।

यदि ज्योतिष सन्दर्भ में देखा जाय तो एक का मुख्य कारक ग्रह चन्द्र व मंगल को माना गया है जैसा कि वर्णन हैं–

अस्थि रक्तस्तथा मज्जा त्वग् वसा वीर्यमेव च।

स्नायुरेषामधीशाश्च क्रमात् सूर्यादियों द्विज ।।[3]

अर्थात् अस्थि का सर्यू रक्त का चन्द्रमा,मज्जा का मंगल, त्वचा, का बुध, वसा का गुरु, वीर्य का शुक्र व स्नायु का कारक ग्रह शनि हैं थेलेसीमिया रोग से लाल रक्त कोशिकाएं तेजी से नष्ट होती है। लाल रक्त कोशिका का निर्माण अस्थिमज्जा में होता है, जिसका मुख्य कारक मंगल को मानाग या है अतः रक्तकारक चन्द्रमा व मज्जाकारक मंगल की स्थिति इस रोग के प्रति कारक मानी जा सकती है। अतः चन्द्रमा से संबंधितरोगों में रक्तविकार का समावेश किया गया।

विधुर्विधते रूचिमग्निभन्दताम्नुदोषशीतज्वपाण्डुकामलाः।

प्रमेहवाताधिकताकलानिलातिसारभसृग्विकृतिं च पीनसम्।।[4]

अर्थात् मन्दग्नि, अम्बुदोष, शीतज्वर, पाण्डु, कामला, प्रमेह, वाताधिक्य, अतिसार, रक्तविकार व वीनस रोग चन्द्रमा की विकृति से घोषित होते हैं।

इसी प्रकार मंगल से संबंधित रोगों में भी रक्त विकारों का समावेश किया गया है आधुनिक वैज्ञानिकों का भी मत है कि मंगल का लाल रंग होना लौह तत्व की अधिकता का धोतक है। रक्त का भी लाल वर्ण हीमोग्लोबिन के कारण माना गया है, जिसमें लौह तत्व मिश्रित होता है थैलेसीमीया में भी लौह तत्व की अधिकता होना कालान्तर में हृदय, यकृत, आदि से संबंधित विकार उत्पन्न करता है फलदीपिका ग्रन्थ में मंगल संबंधित विकार उत्पन्न करीता है फलदीपिका ग्रन्थ में मंगल संबंधित विकार निम्न प्रकार से प्रतिपादित किये है–

तृष्णासृक्कोपपित्तत्वरमनलविषास्त्रार्तिकुक्षाक्षिरोगान्।

गुल्मापस्मारमज्जाहिवहतिपरूषतापामिकादेह गान्।।[6]

अर्थात तृष्णा, रक्तविकार (रक्ताभाव, रक्तपात या रक्तचाप), पित्तज्वर, जलन, विषमय, रक्तकुष्ठ, नेत्र रोग, गुल्य (एपिन्डिसाइटीज), अपस्मार, मज्जारोग, चमड़ी में खुर्दरापन, शरीर का अंग या हड्डी टूटना इत्यादि रोग मंगल के कारणहोते हैं। आचार्यों के वचनों से स्पष्ट है कि

रक्तचाप, रक्तपात एवं रक्ताल्पता आदि अनेक प्रकार के रक्त विकारों का प्रतिनिधि ग्रह मंगल होता है। अतः यदि मंगल पापग्रहों से दृष्ट-युक्त होनिर्बल हो या अनिष्ट स्थान में स्थित हो तो रक्त विकार अथवा थैलोसीमिया रोग की भी संभावना हो जाती है पूजनीय आचार्य डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी जी ने ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले निम्न नौ प्रकार के हेतु प्रतिपादित किये है।[7]

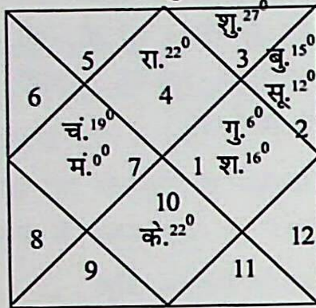
1. रोग भाव का प्रतिनिधित्व
2. अष्टम व व्यय भाव का प्रतिनिधित्व
3. रोग भाव में स्थिति
4. लग्न में स्थिति या लग्नेश होना,
5. नीचराशि शत्रुराशि में स्थिति या निर्बला
6. अवरोहीपन
7. क्रूरषष्ठयंश में स्थिति
8. पाप ग्रहों से प्रभावित होना
9. अरिष्टकारकत्व या मारकत्व

इस प्रकार मंगल ग्रह की उपरोक्त नौ प्रकार की स्थितियाँ होने से थैलोसीमिया रोग की संभावना हो सकती है। साथ ही रक्तविकार उत्पन्न करने वाले ग्रहयोगों का भी ग्रन्थों में वर्णन किया गया है, जिनसे सभी में मंगल ग्रह की स्थिति का अवश्य समावेश किया गया हैं-[8]

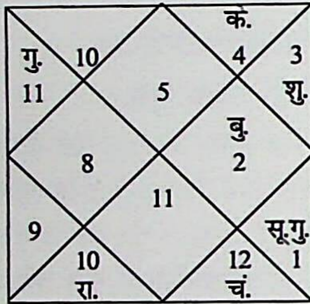
1. लग्न षष्ठ, सप्तम, या व्यय भाव में शनि के साथ मंगल हो और उस पर सूर्य की दृष्टि हो।
2. मंगल नीचराशिगत, अस्तगंत या शत्रुराशि गत हो
3. द्वितीय या अष्टम स्थान में गुलिक के साथ मंगल हो
4. द्वितीयेश मंगल से दृष्ट या युत हो।
5. द्वितीय स्थान में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो
6. लग्ऩ मेंशनि हो तथा षष्ठ या दराम स्थान में स्थित चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो।

उपरोक्त योगों का प्रायोगिक अध्ययन करने हेतु उदाहरण कुण्डलियों का अध्ययन आवश्यक है, अतः थैलोसिमीया रोग से पीड़ित एक जातर्का की कुण्डली यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

लग्न कुण्डली



नवांश



जन्मतिथि–28/05/1999 (शुक्रवार)

जन्मसमय–9:15 सथान–नई दिल्ली

ग्रहस्थिति

	रा. अं. क. वि.	नक्षत्र
सू.	1 / 12⁰ / 33' / 18"	रोहिणी–2
चं.	6 / 19⁰ / 23' / 37"	स्वाति–4
मं. (वक्री)	6 / 00⁰ / 56' / 16"	चित्रा–2
बु. (अस्त)	1 / 15⁰ / 30' / 44"	रोहिणी–2
गु.	0 / 00⁰ / 21' / 17"	अश्विनी–2
शु.	2 / 27⁰ / 14' / 28"	पुर्नवसु–3
श.	0 / 16⁰ / 44' / 50"	भरणी–2
रा.	3 / 22⁰ / 45' / 50"	आश्लेषा–2
के.	9 / 22⁰ / 45' / 50"	श्रवण–4

विशेष–मंगल की षष्ठयंश में कुण्डली–में राक्षस षष्ठयंश में स्थिति है।

जातक का जन्म लग्न कर्क है। लग्न का स्वामी रक्तकारक चन्द्रमा मंगल से युति व शनि दृष्टि से पीड़ित है मज्जा कारक रक्तविकार का कारक ग्रह मंगल समराशिस्थशून्य अंश पर स्थिति से निर्बल अवस्था में स्थित है। शनि की सप्तम पूर्ण दृष्टि से पीड़ित है। अतः रोगकारक हो रहा है रोगेश गुरु की भी दृष्टि हैं शनि सप्तमेश व अष्टमेश होने से पूर्ण मारकत्व प्रभाव से युक्त है अतः नीचस्थ शनि की दृष्टि से मंगल अधिक पीड़ित हुआ माना जा सकता है। षष्ठयंश कुण्डली में मंगल की स्थिति राक्षस षष्ठयंश में हैं अतः उपरोक्त कारणों से यह जातक थैलोसीमिया रोग से पीड़ित है। यदि दशाओं पर दृष्टिपात किया जाय तो पता चलता है कि दीघर्ककालवधि के लिए रोग से जातक पीड़ीत रहेगा।

ग्रहदशा	से	तक
राहु	28/05/1999	22/03/2000
गुरु	22/03/200	22/03/2016
शनि	22/03/2016	23/03/2035

जातक 22/03/2016 से शनि महादशा के प्रभाव में रहेगा जो कि अधिक कष्टदायक हो सकती है। इस रोग का अभी तक स्थाइ उपाय खोजा जा सका हो सकती है इस रोग का अभी

तक स्थायी उपाय नहीं खोजा जा सका है परनतु आयुर्वेद में इस रोग के निदरन हेतु अनेक उपाय दिये गये है। जैसे काक मुखीर (कौवा ठूठी), आवाँ हल्दी, जावित्री, लाजवन्ती, गूगल की मिश्रित औषधि के धुंए का पान किया जाय तो कुछ स्वास्थ्य लाभ हो सकता है इत्यादि अनेक प्रकार के उपाय उपलब्ध होते है, जिनके प्रायोगिक प्रयोगों पर अनुसन्धान कार्य अनवरत चल रहे हैं।

1. नवभारत टाइम्स, 8 जुलाई 2016

2. प्रश्नमार्गः भाग, अध्याय 12, श्लोक 18

3. बृहत्याराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहगुणस्वरूपाध्याय, श्लोक 32

4. गदावली 1/6

5. Marss surface material contains tots of iron oride the same comhound that gives flood and must theer hue. -Why is mass red? Natalie Wouhover (shace.com)

6.फलदीपिका 14/4

7. ज्योतिषशास्त्र में रोगविकार पृष्ठ-27

8. सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-3, श्लोक 147-48

(ख) गदावली, अध्याय-3, श्लोक 14-22

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जातक पारिजात, वैद्यनाथ विरचित, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 2012

2. बृहत्याराशर-होराशास्त्रम्, म. खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद, वाराणसी, सन् 1968

3. गदावली, आचार्य चक्रधर जोशी, श्री लक्ष्मीधर विद्यामन्दिर, देवप्रयाग, सन् 1958

4. ज्योतिषशास्त्र में रोगविचार, डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 2016

5. सर्वार्थचिन्तामणि, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्वई, सम्वत् 2012

6. प्रश्नभार्गः भाग-1, डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1978

7. फलदीपिका मन्त्रेश्वर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् 1975

8. www.space.com

चक्षुरोगविमर्शः

डॉ. देशबन्धुः

सहायकाचार्यः, वास्तुशास्त्रविभागः
श्री ला. बा. शा रा.स. विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

चक्षुरक्षायां सर्वकालं मनुष्यैर्यत्नः कर्तब्यो जीविते यावदिच्छा।
व्यर्थो लोकोअयं तुल्यारात्रिन्दिवानां पुंसामन्धानां विद्यमानेऽपि वित्ते।।[1]

अर्थात मानव को जीवन भर सदा सर्वदा दृष्टि की रक्षा का प्रयत्न करते रहना चाहिये क्योंकि सब प्रकार की सुख सम्पत्ति रहने पर भी अन्धा हो जाने पर यह सब संसार व्यर्थ हो जाता है उस समय उसे दिन-रात्रि में भी कुछ भेद की प्रतीति नही होती।

आचार्य वग्गभट्ट ने अष्टाङ्गहृदय के दृष्टिरोगविज्ञानीय अध्याय में मानव शरीर के विविधाङ्गोमें से नेत्र का महत्व प्रतिपादित किया है नेत्र ज्योति से हीन व्यक्ति इस संसार के अनन्त ऐश्वर्यो से युक्त होने पर भी उन उन ऐश्वर्यो के सुख का सम्यक्भोग करने में असमर्थ हो जाता है अतः ईश्वर द्वारा प्रदत्त नेत्रों का मनुष्य को सर्वप्रकार से रक्षण करना चाहिये नेत्र, चक्षु, लोचनम्, नयनमादि, इस शरीरङ्ग के विविध नाम है। इनकी वयुत्पत्ति इस प्रकार है-

नेत्रम्-(नीयते नयति वानेनेति नेत्रम्)[2]

चक्षुः-(चष्टे पश्यत्नयनेनेति चक्षुः)[3]

लोचनम्-(लोचते प्रकाशतेडनेनेति लोचनम्[4]

नयनम्-(नीयते दृष्टिर्विषयोऽनेनेति नयनम्[5]

इस प्रकार से संसार के सब तत्वों का प्रकाशक नेत्र ही है और संसार के समस्त पदार्थो का प्रकाशक यह नेत्र बहुत महत्वपूर्ण तथाअत्यन्त कोमल भी है। वीरसिंहावलोकः के नेत्ररोगधिकार में नेत्र क आकार और नेत्र के विविध भागों की चर्चा करते हुए कहा है कि नेत्र में 5 मण्डल (cisclis) 6 सन्धि (juctions) और 6 पटल (layess) होते है यथोक्तम्-

''मण्डलानि च सन्धीश्च पटलानि च लोचने।
यथाक्रर्म विजानीयात पञ्च षट् च षडेव च।।[6]

मण्डल 5 होते है पदमण्डल, वर्त्ममण्ड, श्वेतमण्डल कृष्णमण्डल, दृष्टिमण्डल। इसी प्रकार पक्ष्म और वर्त्म के मिलने के स्थान को सन्धि कहते है इसके अतिरिक्त सन्धि के 5 (पांच) अन्य भेद भी है। यथोक्तम्

''पक्ष्मवर्त्मगतः सन्धिवर्त्मशुक्लगतोऽपरः।

शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपरः।।

ततः कनीनकगतः षष्ठश्चापाङ्गगः स्मृता ।।[7]

नेत्र का एक अन्य भाग 'पटल' है जो 6 प्रकार का होता है इसमें दो वर्त्म पटल और 4 (चार) नेत्र पटल है। इन्हीं पटलों में तिमिर नामक व्याधियां होती है। यथोक्तम्–

''द्वै वर्त्मपटल विद्यात् चत्वार्यन्यानि चाक्षिणि।

जायते तिमिरं येषु व्याप्तिः परमदारूणः।।[8]

नेत्र के इन मण्डलों, सन्धियों और पटलों में विकार उत्पन्न होने पर नेत्र के विविध राग हो जाते है। इन रोगों का मुख्य कारण वात पित्त कफ, अत्यधिक गर्मी तथा अत्यधिक ठण्ड है। इन कारणों से मनुष्य धीरे–धीरे अन्धत्व को प्राप्त करता है।

पूर्वोक्त कारणों से मनुष्य की सिराओं (नाड़ियों) में विकार उत्पन्न होता है। तथा प्रथम स्तर पर उसको अक्षर आदि तथा अन्य पदार्थ कभी–कभी स्पष्ट तथा कभी–कभी

अस्पष्ट दिखाई देने लगते है यथोक्तम्–

''सिरानुसारिणि मले प्रथमं पटलंश्रिते।

अव्यक्तमीक्षते रूपं व्यक्तमप्यनिमित्ततः।।[9]

अन्धत्व के दूसरे स्तर पर मनुष्य को अविद्यमान पदार्थ जैसे केश, जाल, मक्खी, वर्षा, मेघ, अन्धकार, आदि विद्यमान प्रतीत होते हं। विद्यमान पदार्थ या तो दिखाई नही दत या बहुत यत्न करन पर दिखाई देत है दूर क पदार्थ समीप तथा समीप के पदार्थ दूर प्रतीत होते है। यथोक्तम्–

प्राप्ते द्वितीयं पटलमभूतमपि पश्यति।

भूतं तु यत्नादासन्नं दूर सूक्ष्मं च नेक्षते।।

दूरान्तिकस्थं रूपं च विपर्यासन मन्यते ।।[10]

'तिमिर रोग' के तृतीय स्तर की संज्ञा 'कांच' हैं इस स्तर पर एक ही पदार्थ दो भागों में या अनेक भागों में विभक्त दिखाई दता है छोटे पदार्थ बड़े तथा बड़े पदार्थ छोटे दिखाई देते है। अत्यन्त समीपस्थ तथा अत्यन्त दूरस्थ पदार्थ भी दिखाई नही देते है।[11] इस तृतीय स्तर पर भी यदि नेत्र रोग की उपेक्षा की जाती है तथा उचित उपचार नही किया जाता यह रोग चौथे स्तर पर पहुंच जाता है और लिंङ् अर्थात् दृष्टि का ही नाश कर देता है और व्यक्ति पूर्णतया अन्धा हो जाता है। यथोक्तम्–

''तथाप्युपेक्षमाणस्य चतुर्थ पटलं गतः।

लिङ्गनाशं मलः कुर्वन छादयेद दृष्टिमण्डल्।।[12]

इस प्रकार से आचार्य वागभट्ट ने तिमिर रोग के चार स्तरों की चर्चा की हैं इसके अतिरिक्त वात, पित्त तथा कफ के असन्तुलन के कारण नेत्र रोग के विविध लक्षणों का वर्णन भी 'अष्टाङ्गहृदय' में प्राप्त होता है। दृष्टि रोग से वात का अधिक्य होने पर पदार्थ चञ्चल-चलायमान, मलिन तथालाल-काले दिखाई पड़ते हैं दूर के पदार्थ टेढे दिखते है तथा दृष्टि धूलि एवं धूप से ढकी हुई प्रतीत होती है वात के कारण दृष्टि दोष होने पर नेत्र का रूप विकृत हो जाता है और वहभीतर की ओर धंस जाता है तथा गहरी वेदना का कारण बनता है। यथोक्तम्-

''तत्रवातेन तिमिरे व्यविद्धमिव पश्यति।।

चलबिलारूणाभासं प्रसन्नं चेक्षते मुहुः।

जालानि केशान्मशकान् रश्मीश्चापेक्षितेडत्र च।।

काचीभूते दृगरूणा पश्यत्यास्यमनासिकम्।

चन्द्रदीपाद्यनेकत्वं वक्रमृज्चपि मन्यते।।[13]

दृष्टिरोग में जब पित्त का असन्तुलन कारण होता है तो बिजली, जुगनू, सूर्य चन्द्र, अग्नि, इन्द्रधनुष आदि चमकीले पदार्थ अविद्यमान होने पर भी दिखाई देते है पदार्थो का आकार छोटा प्रतीत होता है दृष्टिमण्डल अर्थात् नेत्र का भीतरी भाग पीले रंग का हो जाता है। और पदार्थ भी पीले प्रतीत होते है। यथोक्तम्-

''पित्तजे तिमिरे विद्युत्खद्योतदीपितम्।

शिखितित्तिरपिच्छाभं प्रायो नीले च पश्यति।।

काचे दृक काचनीलाभा तादृगेव च पश्यति।

अर्केन्दुपरिवेषाग्निमरीचीन्द्र धनूषि च।।

भर्वोत्पत्तविदग्धाख्या पीता पीता भदगर्शना।[14]

कफ के असन्तुलन के कारण होने वाले दृष्टिरोग में प्रायः सब पदार्थ स्निगध एवं श्वेत तथा शंख चन्द्र तथा श्वेतकमलों से व्याप्त हुए दिखाई दते है दृष्टिमण्डल अर्थात् नेत्र का भीतरी भाग भी पूर्णतया श्वेत हो जाता है। यथोक्तम्-

''कफेन तिमिरे प्रायः स्निगध, श्वेतं च पश्यति।।

शंखेन्दुकुन्दकुसुमैः कुमुदैखि चाचितम्।।[15]

रक्त की विकृत से होने वाले दृष्टि रोग की स्थिति में नेत्र का भीतरी भाग रक्त वर्ण का हो जाता है। और अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है। यथोक्तम्-

''रक्तेन तिमिर रक्तं तमोभूतं च पश्यति।।[16]

इसके अतिरिक्त आचार्य वागभट्ट ने 'अष्टाङ्गहृदय'' नामक ग्रन्थ में 'अन्धत्व'' के लगभग 27 प्रकारों का वर्णन किया हैं। नेत्र रोग के इन सब प्रकारों के विविध कारणों और उपचारों की चर्चा भी आचार्य वाणभट्ट ने विस्तारपूर्वक की है।

आयुर्वेद के लगभग सभी गन्थों में मानव को होने वाले रोगों के लिन कारणों की चर्चा की गई है उन कारणों में से एक कारण काल सम्पाप्ति भी है और काल सम्प्राप्ति का ज्ञान कालबोधक शास्त्र ''ज्योतिषशास्त्र' के बिना सम्भव नही है। ज्योतिषशास्त्रशास्त्र के होरा स्कन्धान्तर्गत मानव को उसकी ग्रहस्थिति के अनुसार प्राप्त होने वाले रोगों का विचार किया जाता है जन्म-जन्मान्तरों में किए गए पाप कर्म मानव को रोग के रूप में पीड़ित करते है यथोक्तम्-

''जन्मान्तरकृतं कर्म व्याधिरूपेण जायते।।[17]

पूर्व जन्म में किये गये पाप व्यक्ति को रोग के रूप मे प्राप्त होते है। उस रोग की प्रकृति रोग के होने का समय और निवारण के समय का ज्ञान चिकित्साशास्त्र में निष्णात कोई भी चिकित्सक करन में समर्थ नही है परन्तु ज्योतिष विज्ञान में दक्ष आचार्य ऐसा करने में समर्थ है। यही ज्योतिषषास्त्र की विशिष्टता है।

छः वेदाङ्गों में वेद पुरुष के नेत्र स्थानीय ज्योतिष वेदाङ्ग में दृष्टि रोग का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में जन्मान्धयोग, राज्यन्धयोग,दिवान्धयोग एकाक्षयोग पुष्पिताक्षयोग, नेत्रपीड़ायोग, विकलनयनयोग, नेत्रज्योतिहीनयोग, अश्रुपात के कारण नेत्र रोग, कफ बात के कारण नेत्र रोग के विवधि योग, पित्तदोष के कारण नेत्र रोग के विविध योगों की चर्चा प्राप्त होती है। इन विविध योगों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि दृष्टि रोग में सूर्य-चन्द्र और शुक्र ग्रहों का सर्वाधिक प्रभाव है इस सम्पूर्ण संसार का प्रकाशक भुवन भास्कर भगवान सूर्य हैं सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्र भी प्रकाशित होता है इन दरोनों के बाद भोर का तारा नाम से प्रसिद्ध ग्रह शुक्र है जो कि सूर्योदय से पूर्व प्रकाशित दिखाई देता है।[18] ग्रह मण्डल में सर्वाधिक प्रकाशित सूर्य, चन्द्र और शुक्र ग्रह ही मानव के नेत्र के प्रकाश को भी प्रभावित करते है नेत्र रोगों में इन तीन ग्रहों का ही ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में प्रमुखता से विचार किया गया है।

इन्हीं ग्रहों के बलहीन होने पर नेत्रों में विकार और बलवान होने पर नेत्रों में सुन्दरता आरोग्यता तथा दृष्टि में स्पष्टता होती हैं, इन ग्रहों की जन्माङ्ग में शुभाशुभ स्थिति ही मानव को नेत्र विषयक शुभाशुभफल प्राप्ति की बोधक होती है।

सूर्य से दक्षिण नेत्र तथा चन्द्र से वामनेत्र का विचार किया जाता हैं उसी प्रकार से जन्माङ्ग में द्वितीय भाव से दक्षिण तथा द्वादश भाव से वाम नेत्र का विचार किया जाता है सूय्र चन्द्र, द्वितीय तथा द्वादश भाव पर पाप ग्रहों का प्रभाव होने मनुष्य को दृष्टि से सम्बन्धित रोगों से पीड़ित होना

पड़ता है आचार्य वराहमिहिर ने बृहज्जातक के निषेकाध्याय में दृष्टिहीनता के योग का वर्णन करते हुए कहा है कि सिंह लग्न में सूर्य-चन्द्र लग्नस्थ हो और उन पर भौन-शनि की दृष्टि होने पर जातक दृष्टिहीन होता है यथोक्तम्-

''रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षते ।।[19]

इसी प्रकार से एक अन्य योग में कहा गया हे कि सूर्य, चन्द्र, मगल, क्रमशः, आठवें छठे और दूसरे भाव में होने पर सर्वाधिक बली गह के कारण जातक को दृष्टिदोष होता है।[20] एक अन्य योग के अनुसार द्वितीय भाव में सूर्य तथा छठे भाव में चन्द्र होने पर दम्पत्ति एकाक्ष होता है।[21] लग्न में राहु ग्रस्त सूर्य और नवम में पाप ग्रह होने पर जातक अन्धा होता हैं।[22] सारावलीकार ने भी अपने ग्रन्थ में दृष्टिरोग के विविध योगों का वर्णन किया है। उनके अनुसार मंगल तथा शनि की द्वादश भाव में स्थिति के कारण क्रमशः जातक को वाम और दक्षिण नेत्र की हानि होती है। यथोक्तम्-

''वक्रो वासौरो वा द्वादशसंस्थो नयनहन्ता।

दक्षिणनयनं सौरिः वाममथाङ्गरको हन्यात्।।[23]

इसी ग्रन्थ के अरिष्टाध्याय में आचार्य कत्याणवर्मा ने कहा है कि चन्द्रमा यदि मंगल व शनि से युत होकर छठे अथवा आठवे भाव में हो तो पित्त और कफ रोग के कारण दृष्टि रोग होता है, अष्टम भाव में स्थित होने पर दक्षिण नेत्र तथा षष्ठ भाव में स्थित होने पर वाम नेत्र की हानि होती है। शुभ ग्रहों की दृष्टि यदि इन ग्रहों पर न हो, तो जनम से ही तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि होने पर जन्म के कुछ वर्षों बाद नेत्र हानि होती है।[24]

इसी प्रकार एक अन्य योग के अनुसार, शनि से युत चन्द्रमा यदि अष्टम या द्वादश भाव में स्थित हो तो वायु विकार यां कफ विकार के कारण दृष्टि रोग होता है यह योग अष्टम भाव में बनने पर दक्षिण नेत्र और द्वादश भाव में बनने पर वाम नेत्र को नष्ट करता है।[25]

एक अन्य योग के अनुसार चन्द्रमा यदि सूर्य और शनि से युक्त हो, तो सम्भावना होती है।[26] आचार्य वैद्यनाथ ने अपने ग्रन्थ जातक-पारिजात में सूर्य की विभिन्न लग्नों में स्थिति के कारण नेत्र रोग के सम्बन्ध में फल कथन करते हुए कहा है कि सूर्य मेष लग्न में हो, तो नेत्र रोग, सिंह लग्न में हो तो रात्र्यन्ध और सूर्य यदि कर्क लग्नस्थ हो तो जातक बुदबुदलोचन होता है।[27] एक अन्य योग के अनुसार, सूर्य और चन्द्रमा दोनों द्वादश भाव में हो, तो जातक के दोनों नेत्र को नष्ट करते है। पापग्रह यदि षष्ठ भाव और अष्टम भाव में हो, तो भी जातक नेत्ररोगी होता है।[28]

एक अन्य योग के अनुसार लग्नस्थ या सप्तमस्थ सूर्य पर यदि शनि की दृष्टि की हो, तो दक्षिणनेत्र की हानि होती है तथा लग्नावस्थ या सप्तमस्थ सूर्य परयदि शनि की दृष्टि हो तो, दक्षिण नेत्र की हानि होती है तथा लग्नस्थ या सप्तमस्थ सूर्य यदि राहु और मङल से युक्त हो तो वाम नेत्र को नष्ट करता है।[29] इसी प्रकार मङ्गल द्वितीयेश होकर सूर्य चन्द्रमा से अष्टम भाव में स्थित हो, शनि अथवा षष्ठ भाव में हो अथवा द्वादश भाव में हो, तो जातक नेत्र-हीन होता है।

चन्द्रमा यदि षष्ठ, अष्टम यां द्वादश भाव में शनि-मङ्ल के साथ हो, तो नेत्रों को नष्ट करता है।[30]

एक अन्य योग के अनुसार चन्द्रमा षष्ठ भाव में सूर्य अष्टम भाव में शनि द्वादश भाव में और मङ्ल यदि द्वितीय भाव में स्थित हो, तो जातक दृष्टिहीन होता है यथोक्तम्-

''षष्ठे चन्द्रऽष्टमे भावौ लग्नादन्द्यत्यगतेऽर्क्कजे।

वित्तस्थानगते भौगे शक्रोऽप्यन्धो भवेद ध्रुवम् ।।[31]

नेत्र रोग के एक अन्य योग में वर्णन प्राप्त होता है कि द्वितीयेश यदि लग्नेश से युक्त होकर षष्ठ, अष्टम और द्वादश भाव में हो जातक अन्धा होता है तथा द्वितीयेश यदि शुक्र और चन्द्र से युक्त होकर लग्नस्थ हो तो जातक रात्र्यन्ध होता हैं परन्तु द्वितीयेश यदि उच्चगत और शुभग्रह से दृष्ट होने पर यह योग भङ्ग हो जाता है।[32]

दृष्टि-हीनता के अन्य योग में, चन्द्रमा तथा राहु की द्वादश भाव में स्थिति शनि त्रिकोण भावों में हो, और सूर्य की सप्तम भाव में अथवा अष्टम भाव में स्थिति के कारण जातक को दांत और नेत्र से सम्बन्धित रोग होते है।[33] इसी प्रकार से चतुर्थ और पञ्चम भाव में पापग्रह और चन्द्रमा के अष्टम अथवा द्वादश भाव में स्थित होने पर भी जातक अन्धा होता है। यथोक्तम्-

''सुताम्बुगौ पापखगौ विशेषच्चेदष्टरिःफरिगतेऽन्धतास्यात्

शुभग्रहाणामवलोकहीने चान्धो भवत्येव शुभैर्नदोषः।।[34]

दृष्टि-हीनता के अन्य योग के अनुसार षष्ठ अथवा द्वादश भाव में सूर्य और चन्द्रमा स्थित होने पर जातक और उसकी पत्नी दोनों एक-एकनेत्र वाले होते है।[35] शुक्र चन्द्रमा और द्वितीयेश यदि एक ही भाव में हो तो जातक रात्र्यन्ध होता है तथा शुक्र और लग्नेश के अस्त होने पर जातक मध्यम दृष्टि वाला होता है।[36]

दृष्टि-हीनता के एक अन्य योग के अनुसार-लग्नेश द्वितीयेश, सप्तेश, नवमेश औरपञ्चमेश यदि षष्ठ, अष्टम और द्वादश में से किसी भाव में हो और शुक्र का लग्नेश से सम्बन्ध हो तो जातक नेत्रहीन होता है।[37]

एक अन्य योग के अनुसार-द्वितीयेश यदि शनि मंगल और गुलिक से युक्त हो तो जातक नेत्ररोगी, होता है धनभाव में यदि पाप ग्रह स्थित हो तथा उन पर यदि शनि की दृष्टि हो तो भी जातक नेत्ररोगी होता है यथोक्तम्-

शन्यारयोगे गुलिकेन युक्ते नेत्रेश्वरे तत्र तु नेत्ररोगः।

नेत्रे यदा पापबहुत्वयोगे यमेन दृष्टे सति रूग्णनेत्रः।।[38]

आचार्य गणेश दैवज्ञ ने ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ जातकाललकार में दृष्टि-रोग का वण्रन करते हुए कहा है कि यदि सूर्य और चन्द्र से सप्तमस्थ मंगल और बुध पृष्ठोदय राशि में स्थित हो तो जातक अन्धतव को प्राप्त करता है।[39] एक अन्य योग के अनुसार, द्वितीयेश तथा

द्वादशेश यदि शुक्र और लग्नेश के साथ षशठ, अष्टम और द्वादश भाव में हो तो जातक नेत्रहीन होता है। यथोक्तम्–

''स्वान्त्याधीशौ त्रिकस्थौ कवितनुपयुतौ स्यात्तदा नेत्रहीनः[40]

एक अन्य महत्वपूर्ण श्लोक में वर्णन प्राप्त होता है कि जन्माङग में शुक्र और चन्द्र यदि षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश भाव में हो तो जातक को रतौंधी का रोग होता है। शुक्र यदि सूर्य से युक्त होकर तथा लग्नेश सहित त्रिक भावों मे हो तो भी जातक जन्मान्ध होता है इसी प्रकार पिता, माता, भ्राता, पुत्र, पत्नी के बोधक भावों के स्वामी यदि सूर्य तथा शुक्र सहित षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश भावों में हो तो तत्तत् सम्बन्धियों को दृष्टिहीनता का रोग होता है।[41]

एक अन्य महत्वपूर्ण योग के अनुसार लग्नस्थ मंगल यां चन्द्र पर यदि शुक्र अथवा बृहस्पति की दृष्टि हो तो जातक काना होता है मंगल यदि अस्त हो अथवा सूर्य से पूर्व कालांश तुल्य अन्तर पर हो, तो नेत्र कान्तिहीन होते है। इसी प्रकार सूर्य युत बुध के अस्ताभिलाषी होने पर नेत्रों पर चिह्न होता है। यदि लगन अथवा अष्टम में शुक्रपापदृष्ट हो तो मनुष्य की आंखों से पानी आता रहता है। यथोक्तम्–

'स्यान्नूनं चातपनेत्रस्तदनु तनुगतं भूमिजं वा क्षेपशं
पश्येद्वात्तस्पतिश्त्तेदसुरकुलगुरुः पाकाणदृड् मानवः स्यात्।
विच्छाया तितमभानोः क्षितिभुवि च पुरोभागगे दृङनराणां
सौम्ये चिह्नं दृशि स्यादथ वपुषि लये भार्गवे क्रुरदृष्टे।।[42]

एक अन्य महत्वपूर्ण योग के अनुसार चन्द्र और मंगल यदि एक ही भाव में हो तथा ही एक नवांश में हो तो जातक के नेत्रों पर चिह्न होता हैं सूर्य यदि द्वादश नवम अथवा पञ्चम भाव में हो तो जातक के नेत्र चिपचिपे होते है।[43] पञ्चम भाव में स्थित मंगल और शुक्र यदि सूर्य के साथ अस्त हो, तो मनुष्य काणा होता है।[44] सिंह लग्न में शुक्र हो अथवा सिंह लग्न में जन्म होने पर द्वादश भाव में शनि हो तो मनुश्य को नेत्र–पीड़ा होती है और मंगल की दृष्टि होने पर अन्धत्व होता है।[45]

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में दृष्टिहीनता के वर्णित विविध योगों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नेत्ररोग में द्वितीय–द्वितीयेश, द्वादश–द्वादशेरा, षष्ठ–षष्ठेश, अष्टम–अष्टमेश आदि भावों का और सूर्य चन्द्र तथा शुक्र आदि ग्रहों का प्रमुखता से विचार किया गया है। इन भावों और ग्रहों पर पाप प्रभाव होने पर गुलिकादि से सम्बन्ध होने पर अथवा पापकर्तरी योग में होने पर जातक को नेत्रविकार होते है इसी प्रकार इन भावों भावेशों और ग्रहों परशुभ भाव के कारण नेत्र ज्योति में वृद्धि आती है और नेत्रों में भी सुन्दरता होती है। ज्योतिषशास्त्रों के विविध आचार्यों द्वारा वर्णित इन योगों का कुछ जन्माङगों में अध्ययन किया गया है जिसका वर्णन इस प्रकार है–दृष्टिरोग से पीड़ित जातकों के जन्माङ्ग–

जन्माङ्ग

1. नाम–डॉ. कुलदीप कुमार
जन्मतिथि–24/11/1980
जन्मसमय–5/00 प्रात:
जन्मस्थान–भरतपुर (राजस्थान)

नवमांश

इस जन्माङ्ग में द्वितीय भाव में है तथा शनि द्वादश भाव में है। द्वितीय भाव पर शनि की दृष्टि है। चन्द्रमा पर मंगल तथा शनि की पूर्ण दृष्टि है। सूर्य जो कि द्वितीय भाव में स्थित है शनि से दृष्ट है। इस प्रकार सूर्य–चन्द्र ग्रह पर तथा द्वितीय–द्वादश भाव पर पूर्ण पाप प्रभाव होने के कारण यह जातक पूर्णतया दृष्टिहीन है।

2. नाम धीरज कुमार
जन्मतिथि–24/11/2006
जन्मसमय–9/39 प्रात:
जन्मस्थान–फगवाड़ा (पञ्जाब)

जन्माङ्ग

प्रस्तुत जन्माङ्ग में बृहस्पति, सूर्य, शुक्र, द्वादश, भाव में स्थित है। चन्द्रमा पक्षबल में भी हीन है। षष्ठेश और लग्नेश की द्वादश में स्थिति है। द्वितीयेश शत्रुराशि में है। द्वितीय भाव पर मंगल की चतुर्थ दृष्टि हैं इन सब योगों के कारण यह जातक एक नेत्र से दृष्टिहीन है।

3. नाम–राजेन्द्र कुमार
जन्मतिथि–14/01/1978
स्थान–हरियाणा (झज्जर)
जन्मसमय–4/00 प्रात:

जन्माङ्ग

प्रस्तुत जन्माङ्ग वृश्चिक लग्न का है। लग्नेश मंगल कर्क राशि में है, जो कि मंगल की नीव राशि है। शुक्र, सूर्य और बुध द्वितीय भाव में है। बुध अष्टमेश और शुक्र द्वादशेश होने के कारण द्वितीय भाव में नइनकी स्थिति शुभ नहीं है द्वितीयेश गुरु अष्टम भाव में स्थित है। द्वादश भाव पर शनि और मंगल की क्रूर दृष्टि हैं इस प्रकार से नेत्र की धोतक द्वितीय तथा द्वादश भाव पर पाप ग्रहों का प्रभाव होने के कारण यह जातक दृष्टिहीन है।

4. नाम–दीपक

जन्मतिथि–24/07/2007

जन्मसमय–8/29 प्रातः

जन्मस्थान–फगवाड़ा (पञ्जाब)

जन्माङ्ग

चं.. 6 शु. श.के. सू. 4 3 7 बु. गु. 5 8 2 11 9 रा. मं. 10 12 1

प्रस्तुत जन्माङ् सिंह लग्न का हैं लग्नेश सूर्य वाम नेत्र के द्योतक द्वादश भाव में स्थित है। शुक्र, शनि और केतु लग्न में स्थित हैं शुक्र और शनि मघा नक्षत्र में स्थित हैं द्वादशेश चन्द्रमा पर शनि की दृष्टि है।

द्वादश भाव पर और द्वादशभावस्थ सूर्य पर मंगल की दृष्टि है तथा चन्द्रमा पर भी मंगल की पूर्ण दृष्टि होने पर इस जातक के दोनों नेत्रों में दोष हैं।

जन्माङ्ग

शु. 5 गु.सू.बु.रा. 3 2 6 4 श. मं. 7 1 10 8 चं. 9 के. 11 12

5. नाम–विमला देवी

जन्मतिथि–23/07/1943

जन्मसमय–8/21प्रातः

जन्मस्थान–रोपड़ (पज्जाब)

प्रस्तुत जन्माङ्ग कर्क लग्न का है। सूर्य गुरु, राहु और बुध कर्क लग्न में स्थित हैं शुक्र द्वितीय भाव में स्थित शनि की द्वितीयेश और द्वितीयेश और द्वादशेश पर हैं षष्ठेश गुरु भी मंगल और शनि से पूर्ण रूप से दृष्ट है। द्वितीयेश और द्वादशेश के साथ उच्चराशिस्थ बृहस्पति है। अतः बृहस्पति की शुभस्थिति के कारण द्वितीयेश और द्वादशेश पर पाप प्रभाव समाप्त हो जाताहै। ग्रहों की पूर्वोक्त स्थिति के कारण इनके एक नेत्र में पूर्णतया दृष्टिहीनता है।

6. नाम–लक्ष्मण शर्मा

जन्मतिथि–25/4/1945

जन्मसमय–5/45 प्रातः

जन्मस्थान–नालागढ़ (हिमाचल)

जन्माङ्ग

सू. 1 | मं.बु.शु. 12 | 11 | 10
2 | श.रा. 3 | के. 9
4 | 6 चं. | 8
5 गु. | 7

प्रस्तुत जन्माङ् मीन लग्न का है। लग्नेश बृहस्पति षष्ठ भाव में स्थित है। लग्न में मंगल, बुध और शुक्र स्थित है, षष्ठेश सूर्य द्वितीय भाव में स्थित है। सूर्य उच्चस्थ होते हुए भी सन्धिस्थान में है। अष्टमेश शुक्र लग्न में स्थित है शुक्र उच्च का होते हुए भी सन्धि स्थान रेवती नक्षत्र में है। चन्द्रमा पर मंगल की पूर्णदृष्टि हैं द्वितीयेश शुक्र और लग्नेश पर शनि की दृष्टि हैं लग्नेश रोग भाव में स्थित है और रोगेश द्वितीय भाव में स्थित है। इन योगों के कारण इस जातक को नेत्रों में भयंकर पीड़ा के कारण मन्ददृष्टि का रोग है। ग्रहों की उच्चतम स्थिति के कारण यह रोग जन्म से काफी वर्षों बाद हुआ।

जन्माङ्ग

8 | 7 | रा. 8 | 5 श.
11 | 10 | 4
1
सू. 11 | 12 बु.के.शु. | चं. | 2 | गु.मं. 3

7. नाम–ललिता

जन्मतिथि–12/03/1978

जन्मसमय–9/00 रात्रि

जन्मस्थान–भरतपुर (राजस्थान)

प्रस्तुत जन्माङ्ग तुला लग्न का है। लग्नेश शुक्र षष्ठ भाव में स्थित हैं द्वादश भाव में राहु की स्थिति है। द्वादशेश बुध भी रोग भाव में केतु युक्त है। द्वितीयेश मंगल रोगेश बृहस्पति के साथ नवम भाव में स्थित है। मंगल की पूर्ण दृष्टि द्वितीय भाव पर है। ग्रहों की इस स्थिति के कारण यह जातिका पूर्णतया नेत्रहीन है।

जन्माङ्ग

बु. 7 | सू. 6 | 5 | 4
शु. 8 | रा. 9 | श.के.च. 3
गु. 10 | 12
11 | 1 मं. | 2

8. नाम–सोमदत्त

जन्मतिथि–17/10/73

जन्मसमय–5/45 प्रातः

जन्मस्थान–पलवल (हरियाणा)

प्रसतुत जन्माङ्ग कन्या लग्न का हैं लग्नेश बुध द्वितीय भाव में स्थित है जिस पर मंगल की पूर्ण-दृष्टि है। नीच राशि में स्थित बृहस्पति भी द्वितीय भाव को पूर्ण-दृष्टि से देख रहा है। द्वादशेश सूर्य भी लग्न में स्थित है। द्वादश भाव पर भी शनि की पूर्ण दृष्टि हैं सूर्य कन्या राशि में है जोकि 29/59/21'' पर है जो कि नीचाभिलाषी हैं इस पुर्वोक्त ग्रह स्थिति के कारण यह जातक पूर्णतया नेत्रहीन है।

9 नाम-रूचि

जन्मतिथि-22/11/1987

जन्मसमय-7/50 प्रातः

जन्मस्थान-नकोदर (पञ्जाब)

जन्माङ्ग

बु.मं.
9 शु.सू.चं. 7 6
10 8 के.
11 5
12 2
श.गु. 4
1 3

प्रस्तुत जन्माङ्ग वृश्चिक लग्न का है। लग्नेश मंगल द्वादश भाव में स्थित हैं द्वादश भाव में अष्टमेश बुध स्थित है। जन्माङ्ग में शुक्र, सूर्य नवमांश में बली हैं और सूर्य-चन्द्र-शुक्र पर गुरुदृष्टि होने के कारण नेत्रहीनता न होकर के नेत्रदोष है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अष्टाङ्ग हृदयम्-13/97, मोती लाला बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1990
2. संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश-पृश्ठ-558, कमल प्रकाशन नई दिल्ली।
3. शब्दकतपदुम, द्वितीयभाग, पृष्ठ-415, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1961
4. चतुर्थ भाग, पृष्ठ-232,
5. तत्रैव, द्वितीय भाग, पृष्ठ 828
6. वीरसिंह वलोकः नेत्ररोगाधिकारः पृष्ठ 600), चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी
7. तत्रैव, पृष्ठ 601
8. तत्रैव
9. अष्टाङहृदयम्-92/मोती लाला बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1990
10. तत्रैव-12/2-3
11. तत्रैव-12/4-6
12. तत्रैव-12/7-8
13. अष्टाङ्गहृदयम्-92/8-10 मोती लाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1990
14. तत्रैव-92/13-16
15. अष्टङगहृदयम्-12/16-17,मोती लाल बनारसीदास पब्लिशर्स दिल्ली, 1990
16. तत्रैव-12/20
17. प्रश्नमार्ग-भूमिका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2007 ई. में उद्घृत
18. ब्रह्माण्ड और सौर-परिवार, पृष्ठ सं.-55 परिक्रमा-प्रकाशन शाहदरा, दिल्ली 2004

19. बृहज्जातकम्-4/20, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2005
20. तत्रैव–23/10
21.तत्रैव–23/3
22. तत्रैव–23/12
23. सारावली–10/58 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986
24. सारावली-10/63-64, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986
25. तत्रैव–10/65-66
26. तत्रैव–10/67
27. जातक-पारिजात-6/53, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 197,
28. तत्रैव–6/54
29. जातक-पारिजात–6/55, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971
30. तत्रैव–6/57
31. तत्रैव–6/58
32. तत्रैव–6/59
33. जातक-पारिजात–6/84 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971
34. तत्रैव–6/85
35. तत्रैव–6/99
36. तत्रैव–6/65
37. तत्रैव–11/66
38. जातकपारिजात–11/64, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971
39. जातकालङ्कार–2/4, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008
40. तत्रैव–2/5
41. तत्रैव–2/6
42.जातकालङ्कार–3/22 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2008
43. वही–3/23
44. फलितमार्तण्ड–10/6, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, 1995
45. तत्रैव–10/7

ज्योतिषशास्त्र में मानसिक रोग चिक्तिसा

प्रो. विनोद कुमार शर्मा
ज्योतिष विभागाध्यक्ष
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

मानसिक स्वास्थ्य हमारे शारीरिक स्वास्थ की आधारशिला है। स्वस्थ मन के विना स्वस्थ शरीर की कल्पना नहीं की जा सक्ती है। वस्तुतः शरीर की प्रमुख संचालिका गति-शक्ति म नही तो है। मन ही मस्तिष्क है, शरीर उसका आवरण मात्र है। भीतर के तत्त्व का सीधा और प्रत्यक्ष प्रभाव आवरण पर पड़ता है। मन की स्थिति का प्रतिबिम्ब शरीर पर निश्चित रूप से दिखलाई देता है। मन के महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए महर्षि वसिष्ठ का अभिमत- मन सर्वस्व है, अपने भीतर मन की चिक्तिसा करने से सम्पूर्ण संसार ठीक हो जाता है -

मनः सर्वमिदं राम तस्मिन्नन्तश्चिक्तिसते।
चिकित्सितो वै सकलो जगज्जालमयो भवेत्॥[1]

चित्त के शुद्ध हो जाने पर शरीर में आनन्द का संचार होता है-

आनन्दं वर्धते देहे शुद्धे चेतसि राघव।[2]

सामान्यतया मन और शरीर को सभी प्रकार के रोगों जरा, व्याधियों एवं दुःखों से मुक्त रखने के लिए भारतीय वैदिक चिक्तिसा पद्धति तीन प्रकार की है[3]-

1. **आसुरी चिक्तिसा** : शल्यक्रिया - चीर-फाड़, ऑपरेशन आदि।
2. **मानुषी चिक्तिसा** : भस्म, वन्स्पति या काष्ठ आदि औषधियाँ।
3. **दैवी चिक्तिसा पद्धति** : यज्ञनुष्ठान, जप, हवन, प्राणायाम, योग, मणि, दान-स्नान आदि।

आयुर्वेदशास्त्र में दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय और सत्त्वावजय नामक त्रिविधा चिक्तिसा का वर्णन मिलता है।[4]

दैवव्यपाश्रय - मन्त्र, औषधी धारण, मणि धारण, मंगल कर्म, होम, बल्युपहार(भूतज), नियम, प्रायश्चित, उपवास, स्वस्त्ययन, अपने से बड़ों एवं पूज्यों को नमस्कार, तीर्थ गमन आदि दैवव्यपाश्रय चिकित्सा है। दैवव्यपाश्रय चिकित्सा प्रायशः कर्मज व्याधियों की होती है।

युक्तिव्यपाश्रय – आहार, विहार, औषध द्रव्यों के यथावत् प्रयोग आदि के द्वारा रोगों को समूल नष्ट करना युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा है। यह चिकित्सा प्रायशः दोषज व्यधियों की होती है।

सत्वावजय (मनो विजय) – अहित कर विषयों से मन को रोकना सत्वावजय नामक चिकित्सा है या मानस रोगों की चिकित्सा है।

'सर्वं वेदे प्रतिष्ठितम्'[5] अखिल विश्व में जो भी ज्ञेय, ज्ञान, श्रेय, प्रेय, लौकिक, पारलौकिक है वह सब वेद में निहित है। अथर्ववेद अपने आप में एक सम्पूर्ण चिकित्सा विज्ञान है। इसमें आधयात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सभी प्रकार की आधि–व्याधियों का कारण एवं निवारण सम्यक् रूप से सन्निहित है। यही कारण है कि अथर्ववेद को 'भेषजा' भी कहा है – **'चः सामानि भेषजा''।**[6]

गोपथ ब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मण आदि शास्त्रें के द्वारा प्रमाणित हो जाता है कि अथर्ववेद सभी प्रकार के शारीरिक, मानसिक, आत्मिक आधि–व्याधियों की निवृत्ति के उपायों का सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्र है। भेषज प्रधान होने से अथर्ववेद आयुर्वेद का उद्गम स्थल माना जाता है –

'इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्ववेदस्य।'[7]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम निस्संदेह एवं प्रामाणिक रूप से कह सकते हैं कि भारतीय ज्योतिष द्वारा प्रचलित समस्त कर्मजभव आदि आधि एवं व्याधियों के निवारण हेतु मंत्र, मणि, दान, स्नान एवं औषधि नामक पाँच प्रकार के उपाय[8] बतलाये गये हैं।

मानसिक निरोगता की प्राप्ति का सर्वापरि उपाय यही हे कि इच्छाओं में अधिक आसक्ति न रखकर जीवन की आवश्यक्ताओं को सीमित करें और साधन–बहुलता एवं अतिसंग्रह की प्रवृत्ति से दूर रहें। निश्चय ही सन्तोष और संयम मानसिक प्रसन्नता के आवश्यक अंग हैं अतः कहा गया है–

स तु भवति दारिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च सन्तुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥[9]

मन के संतोष से करोड़पति और दरिद्र का भेद नहीं रहता। तृष्णायुक्त धनवान् दरिद्र से अधिक दुःखी और तृष्णारहित गरीब धनवान् से अधिक सुखी और स्वस्थ रहता है। संतोष का सम्बल बहुत बड़ी शक्ति है। मन संतोषी होगा तो उसमें विकार उत्पन्न होने का कारण ही नहीं है। मनुष्य की बुद्धि राग–द्वेष सं विमुक्त हो कर विषयों का सेवन करे तो अन्तरात्मा में सन्तोष होता है, मनुष्य को स्वाभाविक शान्ति प्राप्त होती है। मनशान्ति और बुद्धि–नियमन आहार–विहार में नियमित और संयमित होने से प्राप्त होते हैं।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥ [10]

आचार्य चरक के अनुसार काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या, लोभ इत्यादि कारणें से उत्पन्न मनोविघातों (उन्माद आदि मानसिक रोगों) को परस्पर विरुद्ध इन्हीं भावों से शान्त करना चाहिए। अर्थात् यदि मनोविघात कामज हों तो क्रोध का भय उत्पन्न करके, यदि शोक से उत्पन्न हों तो हर्ष उत्पन्न करके, क्रोधज हों तो काम उत्पन्न करके, हर्षज हों तो शोक उत्पन्न करके शान्त करने चाहिए। अन्य भावों से उत्पन्न मनोविघातों को भी उनके यथा योग्य प्रतिद्वन्दी भावों को उत्पन्न करके शान्त करना चाहिए। यथा –

कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान्।
परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत्।[11]

आयुर्वेदाचार्यों के अनुसार जिस व्यक्ति के मन पर किसी इष्ट वस्तु के विनाश के कारण आघात पहुँचा हो और वह उससे उन्मादी हो गया हो तो उसके पागलपन को उसी वस्तु की या उसी के सदृश वस्तु की प्राप्ति, सान्त्वनापूर्ण वचनों या आश्वासन से शान्त करना चाहिए। यथा–

इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते।
तस्य तत्सदृशप्राप्त्या शान्त्याश्वासैः समं नयेत्।[12]

महर्षि चरक के अनुसार धर्म, अर्थ तथा काम का विचार पूर्वक अनुष्ठान, मानसिक दोषों की चि कित्सा करने वाले वैद्यों की सेवा तथा आत्मा, देश, काल, बल एवं शक्ति का सम्पूर्ण तथा अच्छी प्रकार से ज्ञान ये मानस रोगों की औषध है। यथा–

मानसं प्रति भैषज्यं त्रिवर्गस्थानवदेक्षणम्।
तद्विद्यसेवा विज्ञानमात्मादीनां च सर्वशः॥[13]

भगवान् शिव के अनुसार बिन्दुपात मृत्यु है और बिन्दुधारण जीवन है–

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणत्।[14]

अतः महाभारत में ब्रह्मचर्य को अमृत के समान माना गया है –

अमृतं ब्रह्मचर्यम्।[15]

चिकित्सिकों के अनुसार हितकर भोजन, यथोचित मात्रा में समय पर करने वाले तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले व्यक्ति रोगी नहीं होते हैं –

हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।[16]

श्रीमद्भगवद्गीता में वासुदेव श्रीकृष्ण ने मन को नियन्त्रित करने का उपदेश देते हुए कहा

है -

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

अतः तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

श्रीमद्भागवत्-महापुराण के अनुसार जिन पदार्थों के सेवन से रोग उत्पन्न होता है, उन्हीं पदार्थों का चिकित्साशास्त्र में प्रदत्त विधि के अनुसार प्रयोग करने से रोग निश्चित रूप से दूर होते हैं। यथा-

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत।

तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम्।।[17]

आयुर्वेद के अनुसार बायीं करवट सोने वाला, दिन में दो वार भोजन करने वाला, छः वार मूत्रत्याग करने वाला, दो वार मलत्याग करने वाला तथा आवश्यक होने पर अल्पमात्रा में विषयों का सेवन करने वाला व्यक्ति स्वस्थ रह कर सौ वर्षों तक जीता है। यथा-

वामशायी द्विभुञ्जानः षण्मूत्री द्विपूरीषकः।

स्वल्पमैथुनकारी च शतवर्षाणि जीवति।।[18]

आयुर्वेद एवं ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रत्नजटित आभूषणों के धारण से अथवा रत्न तथा सुवर्ण आदि से निर्मित आभूषणों के धारण से सौभाग्य अथवा धन, मंगल, आयु तथा शोभा की वृद्धि होती है, दुर्व्यसन नष्ट होते है, मन प्रसन्न रहता है और सौन्दर्य तथा ओज(तेज) की वृद्धि होती है। अतः रोगों का प्रतिकार कर स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने हेतु रत्नों को धारण करना चाहिए। यथा-

धान्यं मंगल्यमायुष्यं श्रीमद्व्यसनसूदनम्।
हर्षणं कास्यमोजस्यं रत्नाभरण धारणम्।।[19]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यक्ति को समस्त प्रकार के सुखदुःखों एवं शारीरिक और मानसिक विविध प्रकार के रोगों की प्राप्ति पूर्वजन्मों एवं वर्तमान जन्म में स्वयं के द्वारा किए गये शुभाशुभ कर्मों का फल है। अतः व्यक्ति को रोग मुक्त रहने अर्थात् स्वास्थ्य लाभ हेतु श्रेयस्कर मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। यथा -

आत्मनमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्।।[20]

आचार्यों के अनुसार जिस मनुष्य ने स्वयं अशुभ कर्म न किए हों उसे न देवता, न गन्धर्व, न पिशाच और न अन्य कोई क्लेश देते हैं अर्थात् समस्त आगन्तुक उन्माद आदि मानसिक रोगों

के हेतु अपने द्वारा किए गये अशुभ कर्म ही हैं। यथा-

न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
न चान्ये स्वयमक्लिष्टमुपक्लिश्यन्ति मानवम्।।[21]

मानसी चिकित्सा के अन्तर्गत सम्पादित एवं समायोजित धार्मिक अनुष्ठानों, सिद्धान्तों के अनुशीलन के धर्म से मनोबल दृढ़ होता है। मनोबल मनुष्य का मुख्यरूप से आत्मबल होता है। जो व्यक्ति मनोबली, आत्मबली होता है वह कभी भी हारता नहीं है।

अतः कहा गया है-

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

।। इत्यलम् ।।

---

1 योगवसिष्ठ, स्थितिप्रकरण 4/5
2 योगवसिष्ठ, स्थितिप्रकरण 4/5
3 कर्मजभवव्याधि दैवीचिकित्सा-प्राणविद्या पृ० (ड.)
4 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 11/62
5 कर्मजभवव्याधि दैवीचिकित्सा-आमुख पृ० 1
6 अथर्ववेद 11/6/14
7 सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान 1/3
8 मन्त्रसाधाना और सि)ान्त-प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी पृ० 21
9 आरोग्यप्रकाश, पृ० 9
10 आरोग्यप्रकाश पृ० 9
11 चरकसंहिता, चिकित्सास्थान 9/92
12 चरकसंहिता, चिकित्सास्थान 9/91
13 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 11/50
14 हठयोगप्रदीपिका 3/88
15 आरोग्याङ्क, कल्याण पृ० 346
16 आरोग्याङ्क, कल्याण पृ० 183
17 श्रीमद्भागवद्-महापुराण प्र०स्कन्ध 5/33
18 आरोग्याङ्क, कल्याण पृ० 187
19 चरकसंहिता, सूत्रस्थान 5/94
20 चरकसंहिता, निदानस्थान 7/23
21 चरकसंहिता, निदानस्थान 7/20

भैषज्य ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार

राजेष चन्द्र सती
शोध छात्र-ज्योतिष विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
नई दिल्ली

''यद् पिण्डे तद् ब्रह्मण्डे'' के इस मूल सिद्धांत के अनुसार जो मानव शरीर में विद्यमान है वह सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड में भी विद्यमान है। या हम कह सकते हैं कि जो ब्रह्माण्ड में है वह अण्ड (पिण्ड) में है। ज्योतिष शास्त्र ब्रह्माण्ड में स्थित ग्रह नक्षत्र राशि समूहों के गति स्थिति प्रभावादि के आधार पर मानव जीवन पर उनके प्रभावों का अध्ययन करता है[1]।

ज्योतिष शास्त्र सम्पूर्ण पृथ्वी पर ग्रह स्थिति द्वारा घटनाओं के सम्भावनाओं को प्रकाषित करता है। जिसमें मानव जीवन के सभी पक्षों पर विचार किया जाता है यथा- षिक्षा, कार्यक्षेत्र, सन्तान, आयु, स्वास्थ्य, रोग इत्यादि। मनुष्य के जीवन में स्वास्थ्य, रोग इत्यादि का विचार भैषज्य ज्योतिष के अन्तर्गत किया जाता है।

भैषज्य ज्योतिष (MEDICAL ASTROLOGY)

भैषज्य ज्योतिष **''ज्योतिर्वेदौ निरन्तरौ''** की अवधारणा का सार्थक रूप है। ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से मानव शरीर में रोगों का ज्ञान करना, रोग उत्पन्न होने के समय का ज्ञान करना, तथा रोगों के उत्पन्न होने के कारणों को ग्रह स्थिति के माध्यम से जानने के लिए ज्योतिष शास्त्र की जिस प्रविधि का प्रयोग किया जाता है, उसे भैषज्य ज्योतिष कहा जाता है।

भैषज्य ज्योतिष में रोग ज्ञान के साधन

1. आयुर्वेद 2. ज्योतिष

आयुर्वेद -

आयुर्वेद स्वास्थ्य के संरक्षण का विज्ञान है यह स्वस्थ मनुष्य को अस्वस्थ होने से बचाने एवं अस्वस्थ मनुष्य के रोग रोग को षमन करने का उपाय बताने वाला शास्त्र है। आयुर्वेद रोगी की चिकित्सा से पूर्व उसकी आयु विचार का परामर्ष देता है एवं उसके रोग के साध्यता असाध्यता का विचार करता है।

आयुर्वेद में रोगोत्पति के कारण. –

आयुर्वेद में कर्मप्रकोप एवं दोष प्रकोप दो प्रकार से रोगोत्पति का निरूपण किया गया है–

कर्मजा व्याधयः केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे [2]।

1. कर्मजन्य 2. दोषजन्य

1. कर्मजन्य रोग–

कर्म जनित रोगों से अभिप्राय है जब मनुष्य सदवृत्ति सदाचार षुद्ध आहार विहार ;तु का पालन करता है और रोग के उत्पन्न होने का मौसम भी न हो और फिर भी अचानक रोग हो जाय तो वह कर्मजन्य रोग मानना चाहिए[3]।

2. दोषजन्य रोग–

मनुष्य के शरीर में वात, पित और कफ के कारण मिथ्या आहार विहार के कारण जो रोग उत्पन्न होते हैं उन्हें दोष जन्य रोग कहा जाता है तथा इन रोगों का सम्बन्ध क्रियमाण क्रर्म से होता है।

ज्योतिष शास्त्र द्वारा रोगोत्पत्ति के कारणं–

ज्योतिष शास्त्र में भी घटनाओं के होने का कारण कर्मो को ही माना गया है। इसका निरूपण आचार्य वराहमिहिर करते हैं।–

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत तमसि द्रव्याणि दीप इव[4]।।

कर्म के तीन भेद हैं–

1. संचित 2. प्रारब्ध 3. क्रियमाण

आयुर्वेद में रोगों के उत्पन्न होने का कारण संचित कर्म में विकृति माना गया है। संचित कर्म के ही एक भाग जो हम भोगते हैं प्रारब्ध कहा जाता है। इस प्रकार संचित एवं प्रारब्ध कर्म के कारण कर्मजन्य रोग उत्पन्न होते हैं।

षतातापीय तन्त्र में इस विषय में कहा गया–

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्यकृच्छादिभिः शमः ।।

अर्थात पूर्वजन्मों में अर्जित जो शुभाशुभ कर्म है उन कर्मों को ज्योतिष शास्त्र प्रकट (प्रकाषित) करता है जैसे अन्धकार में रखे हुए पदार्थों का दीपक प्रकट (प्रकाषित) करता है।

इसी प्रकार रोगों की उत्पत्ति का कारण भी ज्योतिष शास्त्र पाप कर्मों को मानता है।

जन्मान्तर कृतं पापं व्याधि रूपेण जायते [5]।

ज्योतिष शास्त्र और आयुर्वेद -

रोग के निर्णय एवं उसके उपचार के विषय में ज्योतिष और आयुर्वेद एक दूसरे के पूरक शास्त्र हैं। इसीलिए कि ज्योतिष ग्रह, भाव, राशि के आधार पर गुण धर्मों का निरूपण करता है तथा आयुर्वेद मनुष्य की चर्या, त्रिदोष (वात-पित-कफ) आहार विहार के आधार पर रोग के गुण धर्मों का निर्णय कर उपचार करता है। इसलिए श्रुति वाक्य के रूप में आचार्यों ने कहा है। ''ज्योतिर्वेद्यौ निरन्तरौ'' अर्थात एक ज्योतिषी को वैद्य तथा एक वैद्य को ज्योतिषी होना चाहिए। भैषज्य ज्योतिष इसी प्रकार कार्य करता है जिसमें आयुर्वेद चिकित्सा समय ज्योतिष का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

भैषज्य ज्योतिष में रोग विचारः -

भैषज्य ज्योतिष में ग्रहों, राशियों भावों के द्वारा रोग का निर्धारण किया जाता है। इस विषय में मंत्रेष्वर कहते हैं।

रोगस्य चिन्तामपि रोगभावस्थितैर्ग्रहैर्वा व्ययमृत्युसंस्थैः।
रोगेष्वरेणापि तदन्वितैर्वा द्विन्नयादिसम्वादवशाद्वदन्तु[6]॥

किसी भी जन्मकुण्डली में रोग के विषय में जानने के लिए -

i. षष्ठ भाव
ii. अष्टम भाव
iii. द्वादश भाव
iv. षष्ठ में स्थित ग्रह
v. अष्टम भाव में स्थित ग्रह
vi. द्वादश भाव में स्थित ग्रह
vii. षष्ठ, अष्टम, द्वादश भावों के स्वामी

इन सभी का विचार करके यदि एक ही अशुभ ग्रह स्थिति निर्दिष्ट हो तो उस ग्रह जन्य रोग होता है।

ग्रहों द्वारा भैषज्य में रोग विचारः-

भैषज्य ज्योतिष की अवधारणा जातक ग्रंथों में ग्रहों के शरीर में स्थित धातु आदि के कारकत्व से स्पष्ट होती है। शरीर में मज्जा का कारक मंगल है। स्नायु का कारक शनि है। वसा

का कारक बृहस्पति है। अस्थि का कारक सूर्य है। वीर्य का कारक शुक्र है। रक्त का कारक चंद्र है। चर्म का कारक बुध है। जो ग्रह प्रभावित होता है उसकी धातु से जुड़ा हुआ है विकार शरीर में होता है।

मज्जास्नायुवसाष्भस्थि शुक्ररूधिरत्वग्धातुनाथाः क्रमाद।
आरार्कीज्यदिनेशशुक्रशशभृत्तारासुताः कीर्तिता।।[7]

ज्योतिष शास्त्र में समस्त चर, अचर, धातु, मूल, जीव इत्यादि का कारकत्व ग्रहों के द्वारा निर्धारित है[8]।

रोग विचार के प्रसंग में ग्रहों का परिचय[9] -

सूर्य ग्रह -

सूर्य मनुष्यों के (पुरूषों के दायें और स्त्रियों के बायें) नेत्र, आयु, अस्थि, सिर, हृदय, प्राण, षक्ति, मेदा, रक्त तथा पित्त को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर हड्डियां मजबूत होती हैं तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है। और इसके निर्बल, अषुभ या रोग कारक होने पर क्षय, पित्त प्रकोप, नेत्र रोग, अस्थि रोग, षिरोरोग, हृदय रोग, उष्णवात, ज्वर, मूर्च्छा, रक्तस्राव, चर्मरोग, मृगी एवं षूल होता है।

चन्द्र ग्रह -

चन्द्र व्यक्ति के (पुरूष के वाम तथा स्त्री के दक्षिण) नेत्र, स्तन, वक्ष, फेफड़ा, मन, मस्तिष्क, उदर, मूत्राषय, रक्त, रस-धातु; शारीरिक पुष्टि एवं कफ को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर में रक्त संचार ठीक बना रहता है, आरोग्य वृद्धि होती है तथा मनोबल उन्नत रहता है। इसके निर्बल अषुभ या रोग कारक होने पर कफ रोग, मूत्र विकार, जलोदर, मुख रोग, नासिका रोग, पाण्डु, क्षय, मन्दाग्नि, अतिसार, स्त्रीसंसर्ग जन्य रोग, प्रदर, अपसार, वात ष्लेष्मा एवं मानसिक रोग होते हैं।

मंगल ग्रह -

मंगल शरीर में कपाल, कान, स्नायु, जननेन्द्रिय, मज्जा, पुट्ठों की पुष्टता, शारीरिक षक्ति, दाहु, शोध, धैर्य एवं पित्त को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर व्यक्ति के शरीर में हढियां मजबूत होती हैं, प्रतिरोध षक्ति बढ़ती है तथा साहस एवं धैर्य की वृद्धि होती है। यह निर्बल, अषुभ या रोग कारक ही तो रक्त विकार, रक्तचाप, फोड़ा-फुंसी, खाज, सूजन, चोट, रक्तस्राव, कुष्ठ, ज्वर, वात्त पित्त विकार, महामारीजन्य रोग, गुप्तरोग, अग्निदाह, मुष्कवृद्धि तथा वे रोग जिनमें षल्य क्रिया आवष्यक हो, होते हैं।

बुध ग्रह -

बुध शरीर में जिह्वा, वाणी, स्वरचक्र, ष्वासनली, अगला मस्तिष्क, फुफ्फुस, मज्जातन्तु, केष, मुख, हाथ एवं त्रिधातु को प्रभावित करता है। इसके बलवान होने पर बालक का मस्तिष्क पूर्ण विकसित होता है, उसका व्यक्तित्व आकर्षक, तथा प्रतिपादन षैली मोहक होती है। इसके निर्बल या रोगकारक होने पर मूर्च्छा, हिस्टीरिया, मानसिक रोग, चक्कर आना, न्यूमोनिया, विषमज्वर, त्रिदोषज्वर, टाइफाइड, पाण्डु, संग्रहणी, षूल, मन्दाग्नि, गण्ड विकार, वाणी विकार, उदर विकार, कण्ठरोग, नासिकारोग एवं स्नायु रोग होते हैं।

बृहस्पति ग्रहः-

गुरू शरीर में चर्बी, वीर्य, उदर, यकृत, रक्त धमनी, त्रिदोष तथा कफ को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर पुष्ट होता है, विचार षक्ति अच्छी होती है तथा मन में शान्ति एवं मनोयोग बना रहता है। इसके निर्बल, अषुभ या रोगकारक होने पर उदर विकार, मज्जादोष, यकृतरोग, प्लीहा, स्थूलता, दन्तरोग, वायु विकार, मूर्च्छा, मस्तिष्क विकार, ज्वर, कर्ण रोग, ऊँचाई से गिरना एवं मानसिक तनाव उत्पन्न होता है।

षुक्र ग्रहः-

षुक्र शरीर में जननेंद्रिय, षुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक, स्वर, रस, गर्भाषय एवं संवेग षक्ति को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर सुडौल होता है; मनुष्य की काम षक्ति बलवान होती है तथा वीर्य पुष्ट होता है। इसके निर्बल, अषुभ या रोग कारक होने पर मूत्र विकार, वीर्य, विकार, गुप्त रोग, स्त्रीसंसर्गजन्य रोग, मादक द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न होने वाले विकार, विषजन्य रोग, उपदंष, प्रमेह, मधुमेह, प्रदर, कफवायु, विकार एवं पाण्डु रोग होता है।

षनि ग्रहः-

षनि शरीर में हड्डियों की जोड़, पैर, घुटने, वात संस्थान, मज्जा तथा वात को प्रभावित करता है। इसक बलवान होने पर स्नायुमण्डल पुष्ट तथा शरीर सुदृढ़ होता है। इसक निर्बल, अषुभ या रोगकारक होने पर वायु विकार, स्नायु विकार, जोड़ों में दर्द, गठिया, सन्धिवात, पक्षाघात, पागलपन, दाढ़ में दर्द, अपचन, खांसी, दमा, अंग-भंग तथा असन्तोष या निराशाजन्य मानसिक रोग होते हैं। यह अपराध वृत्ति से लेकर आत्महत्या तक करवाने में समर्थ माना गया है।

राहु ग्रहः-

राहु शरीर में मस्तिष्क, रक्त, त्वचा एवं वात को प्रभावित करता है। इसके बलवान् होने पर शरीर में फुर्ती, ताजगी एवं चैतन्य बनी रहती है। तथा इसके निर्बल, अषुभ या रोग कारक होने पर चेचक, कृमि, मृगी, सर्पदंष, पषुओं से चोट, कुष्ठ एवं कैंसर जैंसे असाध्य रोग हो जाते हैं।

केतु ग्रहः-

केतु शरीर में वात, रक्त तथा चर्म को विषेष रूप से प्रभावित करता है। इसके बलवान् होने पर शरीर में श्रम षक्ति, संघर्ष षक्ति, प्रतिरोध शक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है। तथा इसके निर्बल होने पर शरीर में सुस्ती, अकर्मण्यता, शरीर में चोट, घाव, चर्म रोग, जटिल रोग एवं अलर्जी हो जाती है।

रोग विचार में राशियाँ-

ज्योतिषशास्त्र के जातक ग्रन्थों[10] में काल रूपी पुरूष की कल्पना कर उसके शरीर के विविध अंगों में मेष आदि द्वादश राशियों की स्थापना की गई है। जिसके आधार पर उसके अंग रोगग्रस्त या स्वस्थ है- यह माना जा सकता है। ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों को इस मान्यता के अनुसार मेष राशि शिर का, वृष मुख का, मिथुन भुजाओं का, कर्क हृदय का, सिंह उदर का, कन्या कमर का, तुला बस्ति का, वृश्चिक गुप्तांग का, धन उरू का, मकर जानु कां, कुम्भ जघाओं का, तथा मीन राशि पैरों का प्रतिनिधित्व करती है।

1. मेष राशि- मस्तिष्क, माथा (ललाट), शरीर एवं सिर के बाल।
2. वृष राशि- आँख, कान, नाक, गाल, होठ (ओष्ठ), दाँत, मुख, जिह्वा एवं गला।
3. मिथुन राशि- कण्ठ, ग्रीवा, कन्धा, भुजा, कोहनी, मणिबन्ध, हथेली, वृक्ष एवं स्तन।
4. कर्क राशि- फेफड़े, श्वासनली एवं हृदय।
5. सिंह राशि- पेट, आँते, जिगर, तिल्ली, गुर्दा एवं नाभि।
6. कन्या राशि- कमर एवं चूतड़ (नितम्ब)।
7. तुला राशि- बस्ति, मूत्राशय एवं गर्भाशय का ऊपरी भाग।
8. वृष्चिक राशि- गर्भाशय, जननेन्द्रिय एवं गुदा।
9. धनु राशि- ऊरू।
10. मकर राशि- जानु एवं घुटना।
11. कुम्भ राशि- जंघा, पिंडली।
12. मीन राशि- टखना, पैर, पादतल एवं पैर की उंगलियाँ।

मेशादि राशियाँ एवं उनके रोगः-

मेष आदि द्वादश राशियाँ स्वभावतः जिन-जिन रोगों को उत्पन्न करती है[11] वे रोग इस प्रकार हैः-

1. मेष राशि रोग	–	नेत्ररोग, मुखरोग, सिरदर्द, मानसिक तनाव, उन्माद एवं अनिद्रा।
2. वृष राशि रोग	–	गले एवं श्वासनली के रोग, घटसर्प तथा आँख, नाक एवं गले के रोग।
3. मिथुन राशि रोग	–	रक्तविकार, श्वास, फुफ्फुस रोग, एवं मज्जारोग।
4. कर्क राशि रोग	–	हृदयरोग एवं रक्तविकार।
5. सिंह राशि रोग	–	उदरविकार, मेदवृद्धि एवं वायुविकार।
6. कन्या राशि रोग	–	जिगर, तिल्ली, अमाषय के विकार, अपचन, मन्दाग्नि एवं कमर में दर्द।
7. तुला राशि रोग	–	मूत्राशय के रोग, मधुमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ एवं बहुमूत्र।
8. वृश्चिक राशि रोग	–	गुप्तरोग, अर्ष, भगंदर, उपदंष, षूक एवं संसर्ग-जन्य रोग।
9. धनु राशि रोग	–	यकृत दोष, ;तु विकार, अस्थिभंग, मज्जारोग एवं रक्त दोष।
10. मकर राशि रोग	–	वातरोग, शीतरोग, चर्मरोग एवं रक्तचाप।
11. कुम्भ राशि रोग	–	जलोदर, मानसिक रोग, ऐंठन एवं गर्मी।
12. मीनराशि रोग	–	असहिष्णुता (एलर्जी), चर्मरोग, रक्तविकार, आमवात, आंव, ग्रन्थि, गठिया।

शारीरिक अंगों के प्रतिनिधि भाव-

मनुष्य की कुण्डली भी राशि चक्र की भाँति उसके सम्पूर्ण शरीर की प्रतीक है। जिस प्रकार काल पुरूष के शरीर में मेष आदि द्वादश राशियों को स्थापित कर मेष आदि राशियों के प्रतिनिधत्व में आनेवाले अंगों का विचार किया जाता है, ठीक उसी प्रकार कालपुरूष के शरीर में लग्न आदि 12 भावों को स्थापित कर प्रत्येक भाव से शरीर के विविध अंगों का विचार होता है।[12]

शिरोष्र्काॅदेर्मुखं कण्ठं श्रोत्रनासा च गुह्यकम्।
पाणी पार्श्वौ दृशौ पादौ प्रपदौ कुक्षिमादिषेत्[13]॥

प्रथम भाव	–	मस्तिष्क, ललाट एवं सिर।
द्वितीय भाव	–	आँख, कान, नाक, गाल, होंठ, दाँत, मुख, जिह्वा एवं गला।

तृतीय भाव	-	कण्ठ, ग्रीवा, कन्धा, भुजा, कोहनी, हथेली, वक्षस्थल एवं स्तन।
चतुर्थ भाव	-	फेफड़े, श्वासनली एवं हृदय।
पंचम भाव	-	पेट, आँते, जिगर, तिल्ली, गुर्दा एवं नाभि।
षष्ठ भाव	-	कमर, कूल्हा, नितम्ब।
सप्तम भाव	-	बस्ति, मूत्राशय एवं गर्भाशय का ऊपरी भाग।
अष्टम भाव	-	गर्भाशय, जननेन्द्रिय, गुदा एवं अण्डकोष।
नवम भाव	-	ऊरू।
दषम भाव	-	जानु एवं घुटना।
एकादष भाव	-	जंघा एवं पिण्डली।
द्वादष भाव	-	टखना, पैर, तलवा (पादतल) एवं पैर की उँगलियाँ।

शोध पत्र सारांश -

इस प्रकार भैषज्य ज्योतिष में ग्रह, राशि, भावों के शुभाशुभ कारकत्व शारीरिक धातु, कालपुरूष के शरीर में राशियों के विभाजन, कालपुरूष के अंगों का भावों के आधार पर विभाजन द्वारा भैषज्य ज्योतिष में रोगों का विचार किया जाता है। प्रधान रूप से रोग विचार में जन्म कुण्डली का छठा घर जिसे रोग भाव या शत्रु भाव कहा जाता है यह रोग के प्रारम्भ का प्राथमिक द्योतक भाव होता है। तथा इसका स्वामी रोगेश कहलाता है। इनकी अशुभ स्थिति जिस राशि, भाव ग्रह से बनती है उसके कारकत्व स्थान के अनुसार रोग उत्पन्न होता है। तथा षष्ठ भाव से उत्पन्न होन वाला रोग अल्पकालिक एवं चिकित्सा उपचार द्वारा साध्य होता है।

भैषज्य ज्योतिष में रोग विचार के लिए कुण्डली में दूसरा महत्वपूर्ण भाव अष्टम भाव होता है जिसे आयु भाव या मृत्यु भाव कहते हैं। इस भाव का सम्बन्ध जब षष्ठ भाव (रोग भाव), रोगेश से होता है तो यह भाव भी रोग को उत्पन्न करता है। इसके द्वारा उत्पन्न रोग दीर्घकालिक तथा कई परिस्थितियों में असाध्य होता है। इसके द्वारा जन्मजात रोग भी प्राप्त होते हैं।

भैषज्य ज्योतिष में रोग विचार के लिए कुण्डली में तीसरा महत्वपूर्ण भाव द्वादश भाव होता है जिसे व्यय भाव भी कहा जाता है। इस भाव का सम्बन्ध जब षष्ठ भाव, षष्ठेश, अष्टम भाव, अष्टमेश से अशुभ स्थितियों में होता है तो यह भाव भी रोग उत्पन्न कारक हो जाता है।

इसके सम्बन्ध से उत्पन्न रोग चिकित्सालयों में बहुत समय रहने तथा अत्यधिक व्यय करने के उपरान्त ठीक होता है। इस प्रकार भैषज्य ज्योतिष के माध्यम से आयुर्वेद, ज्योतिष शास्त्र के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध से रोग का विचार कर उसका ज्ञान किया जाता है। तथा रोग उत्पन्न करने

वाले ग्रह,भावेष, राषीष, कारक की दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर दशा, गोचर के अनुसार रोग के समय का निर्धारण किया जाता है। तथा कर्मजन्य, दोषजन्य, साध्य, असाध्य कारणों को जानकर तदनुसार चिकित्सा, मंत्र, मणि, औषधि, दान, स्नान आदि प्रविधियों द्वारा रोग का उपचार किया करना चाहिए।।

---

1. भारतीय ज्योतिषशास्त्रेतिहासः पृ.स. 03
2. चरक संहिता - निदान स्थान 5/29
3. सुश्रुत संहिता - 34
4. लघुजातक अ -1 श्लोक 3
5. प्रश्न मार्ग - अ. 13 श्लोक 29
6. फलदीपिका - अ. 14, श्लोक 1
7. जातक पारिजात - अ. 2 श्लोक 28
8. फलदीपिका - अ. 14, श्लोक-2-9
9. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी पृ. सं. 6, 7
10. जातक परिजात - अ. 1 श्लोक 8।
11. सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च। लघुजातक अध्याय 1 श्लोक 5
12. दैवज्ञाभरणः प्रकाश 3 श्लोक 70।
13. सर्वार्थ चिन्तामणि अ. 5 श्लोक 71

मानसिक रोग कारण एवं निवारण

—मदन मोहन

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' इस सिद्धान्त के आधारभूत तथ्यों के फलस्वरूप विभिन्न ज्योतिष शास्त्रीय सिद्धान्तों का सूत्रपात दृष्टिगोचर होता है। भारतीय ज्योतिष की अविरल धारा वैदिक काल से ही प्रवाहित हो रही है। ज्योतिष शास्त्र वेद के अंगों में चक्षु रूप में अवस्थित है जिस सम्बन्ध में यह तथ्य पुष्टिदायक है। "ज्योतिषामयनं चक्षुः" ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख तीन स्कन्ध हैं सिद्धान्त, संहिता, होरा।

होरा स्कन्ध के अन्तर्गत व्यष्टिगत फलादेश सम्बन्धि विचारों का समोपस्थापन उपलब्ध होता है। होरा शास्त्र की व्युत्पत्ति अहोरात्र शब्द से उत्पन्न होती है जिसकी पुष्टि आचार्य वराहमिहिर करते हैं।

होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पंक्ति समभिव्यनक्तिः॥[१]

होरा स्कन्ध के अन्तर्गत द्वादश भावों से विभिन्न विषयों का पृथक-पृथक भावों से विचार किया जाता है। इस शोध पत्र में रोग सम्बन्धि विचार प्रस्तुत किया जा रहा है। रोग विचार करने से पूर्व यह मालूम होना आवश्यक है कि किस ग्रह से, किस भाव से किस राशि से मानसिक रोगों का विचार किया जाता है? हमारे ऋषि मुनियों ने पूर्व जन्म में कृत पापों को ही व्याधि रूप में इंगित किया है। इस सन्दर्भ में यह पंक्ति उद्धृत है–

. जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते[२]

रोग सम्बन्धि विविध योगों का विश्लेषण एवं रोगों का उपचार अग्रलिखित विवरण में निहित है।

मानसिक रोग के लक्षण :

१. जो व्यक्ति अर्थहीन बातें करता हो, अजीब सा व्यवहार करता हो तथा जिसे लोग असामान्य मानते हों।

२. जो व्यक्ति बहुत ही शान्त रहता हो तथा दूसरों से कोई भी बातचीत नहीं करता तथा उनसे मिलता-जुलता भी नहीं है।

३. जो व्यक्ति बहुत ज्यादा शक करने वाला हो और कहता हो कि लोग उसे नुकसान पहुँचाना चाहते हैं।

४. बहुत असामान्य रूप से प्रसन्न जो व्यक्ति रहता हो और हंसी मजाक करता हो तथा यह कहता हो कि वह बहुत ही धनवान एवं दूसरों से अच्छा है जो कि सत्य नहीं है।

५. बहुत समय से जो उदास रहता हो और बिना कारण ही रोता रहता हो।

६. ऐसा व्यक्ति जो आत्महत्या की बातें करता हो या जिसने आत्महत्या करने का कोई प्रयास किया हो।

७. जिसे अकारण ही घबराहट, परेशानी, चिन्ता, अजीब प्रकार का भय रहता हो, कम्पन या अधिक पसीना आता हो, एवं एकाग्रता की कमी हो।

८. अकारण ही जिसे काफी समय से सिर दर्द या शरीर के कई भागों में दर्द या अकड़न रहती हो।

९. जिसकी स्मृति कमजोर हो, परिचित व्यक्तियों एवं स्थानों को भी नहीं पहचानता हो, तथा अपने शरीर का ख्याल नहीं रख पाता हो।

१०. ऐसा व्यक्ति जो अनुशासनहीनता, उदण्डता, समाज विरोधी क्रियाकलापों में संलग्न रहता हो।

मानसिक रोगों के प्रकार :

१. मनोविक्षिप्तता– ये गम्भीर प्रकार के मानसिक रोग हैं तथा मुख्य तौर पर चार तरह के हो सकते हैं।

अ. कम समय की या तीव्र मनोविक्षिप्तता।

ब. बार-बार होने वाली मनोविक्षिप्तता जैसे द्विध्रुवीय असन्तुलन।

स. आंगिक मनोविक्षिप्तता जो कि शारीरिक रोगों या मस्तिष्क की क्षति के कारण होती है।

द. दीर्घकालीन मनोविक्षिप्तता जैसे विखण्डित मानसिकता जिसे आम भाषा में पागलपन या उन्माद कहते हैं।

२. मनस्ताप–

मेषेऽर्कसूनूर्जनयत्यनार्यं कुवेषमाधि-व्यसनं श्रमार्तम्।
गतश्रियं निष्ठुरदुष्टवाक्यं विगर्हितं निर्धनमिष्टवैरम्॥[3]

यह साधारण तीव्रता के मानसिक रोग हैं। ऐसे रोग अक्सर दबावपूर्ण परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक या दीर्घकालीन प्रतिक्रियाओं के कारण होते हैं। उदाहरणतः चिन्ता, मनस्ताप, हिस्टीरिया,

फोबिया रोग इत्यादि।

३. मंदबुद्धि–

> **मेषे विलग्ने तु भवेत्प्रसूतश्चण्डो धनी सर्वकलासु दक्षः।**
> **स्वपक्षहन्ता बहुमन्युक्तो मन्दमतिस्तीक्ष्णकरः सदैव।।**[४]

इस तरह के व्यक्तियों का मानसिक विकास जन्म से ही धीमा होता है और उनमें बुद्धि की कमी के साथ-साथ सामाजिक समायोजन की क्षमता सीमित होती है।

४. मद्यपान एवं मादक पदार्थों का दुष्प्रयोग– दवाइयों, शराब एवं अन्य नशीले पदार्थों के दुष्प्रयोग से व्यक्ति उन पर निर्भर हो जाता है, यदि वह नशा कम कर दे या छोड़ दे तो उसमें विशिष्ट लक्षण पाये जाते हैं जिसे विदड्रावल या प्रतिगमनात्मक लक्षण कहते हैं।

योगों के आधार पर उन्माद के कारणों का निर्णय

> **विरूद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधषणं देवगुरुद्विजानाम्।**
> **उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोभिघातोविषमाश्च चेष्टाः।।**[५]

प्रायः मानसिक रोगों का वास्तविक कारण अव्यक्त होता है। उसी कारण ही भली-भाँती जानकारी के बिना इस रोग की चिकित्सा असम्भव होती है। ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने मानसिक रोगों के कारणों को जानने के लिए विविध योगों को बताया है। जैसे–

१. चन्द्र, शुक्र तथा अष्टमेश अनिष्ट स्थानों में ही तब विषय भोजन या उपवास के कारण उन्माद होती है।

२. चन्द्र, शुक्र एवं अष्टमेश गुलिक राहु या केतु के साथ हो तो अपवित्र भोजन से उन्माद होता है।

३. पञ्चम स्थान में पापग्रह हो तो भय या शोक से उन्माद होता है।

४. पञ्चमस्थ भौम के कारण निराशा वैराग्य या अकारण क्रोध से उन्माद होता है।

५. पापग्रह षष्ठस्थ होने के कारण शत्रुकृत अभिचार से उन्माद करता है।

उन्मादयोग–

१. लग्न में गुरु तथा सप्तमस्थ शनि हो।

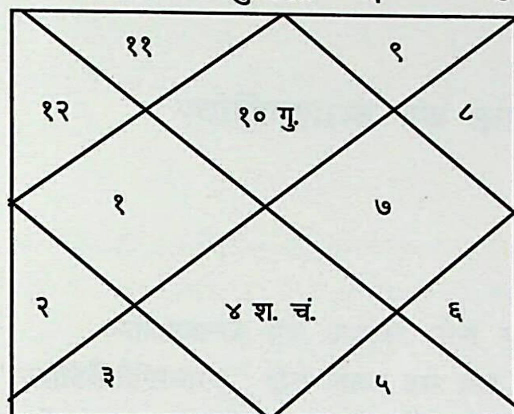
२. लग्नस्थ गुरु और सप्तम में मंगल हो।

३. क्षीण चन्द्र एवं शनि व्ययभाव में हो।

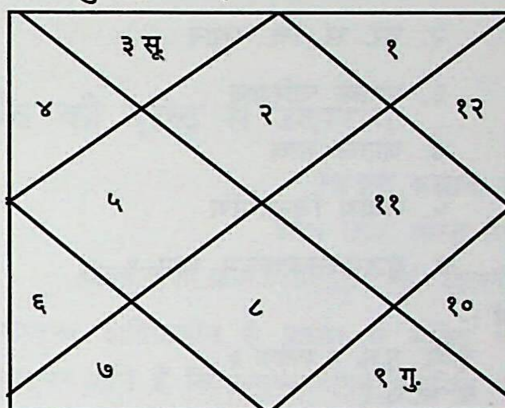
४. मिथुन कन्या में स्थित सूर्य पर गुरु की दृष्टि हो।

५. त्रिकोणस्थ शनि हो

उदाहरणार्थ कुण्डली – १



उदाहरणार्थ कुण्डली – २



मानसिक रोगों का उपचार–

पूर्वोक्त विवेचनानुसार हम यह जान सकते हैं कि कुण्डली में क्या योग बन रहा है? योग का क्या फल रहेगा। उस ग्रह की दशा में किस रोग के होने की सम्भावना होती है। अतः इन रोगों के उपचार ज्योतिष शास्त्र में पाँच प्रकार के बताए गए हैं।

१. मन्त्र २. औषधि ३. स्नान ४. मणि ५. दान

फलित ज्योतिष में इस प्रकार भी उपचार का वर्णन किया गया है–

यथा–

वातोन्मादे स्नेहपानं पित्तोन्मादे विरेचनम्।
शलेष्मिके नरस्यवमन मागन्तुष्वखिलाः क्रियाः।।[६]

सारांश –

निष्कर्ष रूप में ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जीवन के विभिन्न पहलुओं का पुर्वानुमान कर घटित होने वाले शुभाशुभ योगों के आधार पर कुयोगों के अशुभ फल निराकरण विविध उपायों द्वारा किया जा सकता है। परन्तु उपायों से पूर्व मानसिक रोगों के योगों का ज्योतिष शास्त्रीय विधि से विश्लेषण करना परमावश्यक है। रोगपरक योगों का विश्लेषण एवं संश्लेषण कर तत्तद रोगों का उपचार विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों मन्त्र, मणि, औषधी, दान स्नान आदि द्वारा चिकित्सक किए जा सकते हैं। अतः हमें चिकित्सा के साथ-साथ एवं चिकित्सा से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि किस ग्रह द्वारा इसका प्रभाव हो रहा है। ऐसा विचार कुण्डलियों के माध्यम से श्रेयस्कर रहता है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची–

१. प्रश्नमार्ग अध्याय - १२

२. चर. सं. चि. स्थान

३. जातक पारिजात

४. जातक तत्व

५. सर्वार्थ चिन्तामणि

६. वृद्धयवनजातकम् भाग–१

संदर्भ :-

१. बृ.जा., पृ.सं. २ श्लोक ३

२. प्र. भा. ३/२

३. वृद्धयवनजातकम् भाग–१, अध्याय–२३, श्लोक–०१

४. वृद्धयवनजातकम् भाग–१, अध्याय–२५, श्लोक–०१

५. वीरसिंहावलोक पानात्ययोन्मादाधिकार श्लो. ४

६. फ.ज्यो.ग्र.प्र.मा.अ. १२ श्लोक ४१

ज्योतिषशास्त्र एवं आयुर्वेद की दृष्टि से उदररोग

विजय प्रसाद रतूड़ी
शोध छात्र, वास्तु विभाग,
श्रीला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ, नई दिल्ली-16

ज्योतिषशास्त्र एवं आयुर्वेद दोनों का सम्बन्ध अतिप्राचीन है शास्त्र में सूक्ति भी है "ज्योतिर्वैद्यौनिरन्तरम्" दोनों शास्त्र इस बात पर सहमत रहते हैं कि मनुष्य अपने पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाववश रोगी बन जाता है। ज्यौतिषशास्त्र में जन्मकुण्डली के माध्यम से पूर्व में ही रोगों का ज्ञान किया जा सकता है। कि कब और कौन सी व्याधि होगी इस सम्बन्ध में कुछ बुद्धिमान लोगों की यह धारणा है कि मानव आहार विहार के कारण सुनिश्चित समय पर आहार-विहार का न होना जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते रहते हैं। यदि मानव इन पर समुचित नियन्त्रण रखें तो वह स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बना रहता है। परन्तु ज्यौतिषशास्त्र की मान्यता इससे कुछ भिन्न है। ज्योतिषशास्त्र अनियमित आहार-विहार को ही रोगोत्पत्ति का कारण नहीं मानता है। क्योंकि अधिकतम यह बात प्रत्यक्षरूप से देखने में आती है। परन्तु कुछ लोग नितान्त एवं अनियमित जीवन व्यतीत करते हुए भी उनका स्वास्थ्य सही रहता है। कुछ लोग निरन्तर जीवन के अभ्यासी होते हैं। वे समय के द्वारा अपने आहार-विहार का ध्यान रखते हैं। उसके बाद भी उनका स्वास्थ्य अस्वस्थ रहता है। और वे रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। यदि आहार विहार को ही रोगोत्पत्ति का कारण माना जाय तो आनुवांशिक रोग महामारी रोग एक अन्य रोगों की उत्पत्ति के कारण सही प्रकार से रोगोत्पत्ति का व्याख्या नहीं किया जा सकता है। यही एक कारण है कि आयुर्वेदशास्त्र ने रोगोत्पत्ति के कारणों का विचार करने के बाद कभी पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाव से कभी कभी दोषों के प्रकोप से और कभी-कभी इन दोनों के प्रभाव से शारीरिकरोग (वात, कफ, पित्त) एक मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं।

ज्योतिषशास्त्र की यह मान्यता रही है कि प्रत्येक छोटा और बड़ा रोग, पूर्वार्जित कर्मफल के रूप में रोग उत्पन्न होता है। ज्योतिषशास्त्र में जन्मसमय प्रश्नकाल एवं गोचरकाल में जो प्रतिकूल ग्रह है। उनके प्रभाववश रोगों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसी मान्यता के अनुसार वह किसी भी जातक की जन्मकुण्डली के आधार पर वर्षों पूर्व ही यह घोषित कि इस जातक को कब और कौन सा रोग होगा। कर्मों के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोगों का विचार ज्योतिष ग्रन्थों में

प्रतिपादित ग्रहयोगों के आधार पर किया जाता है। सूर्यादिग्रह मनुष्य के शरीर के अंग धातु, एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ग्रह अनिष्ट स्थान में स्थित होने के कारण अनिष्टप्रभावकारी हो जाता है। तब वह शरीर के अंग धातु एवं दोष आदि में विकार या रोग के बारे में सूचना देता है। परन्तु जब वही ग्रह इष्ट स्थान आदि में स्थित होने के कारण इष्ट प्रभावयुक्त होता है। तब वह शरीर के अंग-धातु दोष आदि में आरोग्यता की सूचना देता है।

आयुर्वेद में उदहररोग के कारण एवं लक्षण-

उद्दृणातीति उदिदृणातेरजलौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च उत्+दृ+अच् अन्त्यलोपश्च नाभिस्तनयोर्मध्यभाग:, पिचण्ड:, कुक्षि:, जठरम्, तुन्दरम् इति। नाभिस्तनयोर्मध्ये ये रोगविशेषास्ते 'उदररोग:'।

अर्थात् नाभि और स्तनों के बीच में रहने वाले प्रत्यंगों में रहनेवाले रोगों को उदररोग कहा जाता है।[1]

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने आठ प्रकार के रोगों की गणना की है। उनमें से 1. वातोदर, 2. पित्तोदर, 3. कफोदर, 4. सन्निपातोदर, 5. प्लीहोदर, 6. बुद्धगुदोदर, 7. क्षतोदर, 8. जलोदर। प्लीहोदर के अन्तर्गत ही गणना यकृदाल्युदर को भी लिया जाता है। इस प्रकार सभी उदररोगों की संख्या 10 हो जाती है। यदि अगन्तुज 'ईर्ष्योदर' का भी समावेश किया जाय तो उदररोगों को संख्या 11 हो जाती है।[2]

उदररोग के प्रकार-

वातोदर-(इशितस्का खुश्क) इस तरह के रोग से समस्त उदरप्रान्त पर काली सिराएँ उभर आती है। शूल और आध्यमान रहता है। और उदर ऊँची आवाज में गुड़-गुड़ करने लगता है।[3]

पित्तोदर-(इशितस्का सफरावी वातोल्बणं सपित्तेन पित्तोदर:) उदर में उत्सेश तो होता ही है। परन्तु उदर में दाह एवं ज्वर भी पाया जाता है। उदर के ऊपर को जो शिराएँ है वो ताम्रवर्ण की होती है। उसमें पसीने होने पर प्राय: ज्वर उतर जाता है। और पित्तकाल में पुन: पित्तोदर होने लगता है।

कफोदर-आधुनिक वैज्ञानिकों के कथनानुसार इसके दो भेद होते है। 1. इशितस्काऽकसूरी 2. इशितस्काकायेली। इस प्राकारों में वातोदर की अपेक्षा औदारिक प्रान्त पर अशिक उत्सेश होता है। एवं काठिन्य भी ज्यादा प्राप्त होता है। नाभिगत बहुत अशिक उभर आता है।

सन्निपातोदर-वात, कफ, पित्त इन तीनों प्रकार के लक्षण सम्मिलित रूप से पाये जाते हैं।

प्लीहोदर-(इजयतिहाल) प्लीहा का धीरे-धीरे अपने स्वभाविक आकार से बढता जाना ही प्लीहाजठर रोग होता है।

बुद्धगुदोदर-आंत परिवर्तनजरा शूल-इलियस-अंतड़ियों में बल पड़ जाने पर यह रोग होता है। आचार्य चरक ने कहा है "उदावर्तेस्तथाऽशोभिरन्त्रसम्भूदनेन वा अपानो मार्गसंराधाद्धात्वग्निकुपितोऽनिल: वर्च: पित्तकफान् रुद्ध्वा जनयत्युदरं तथा" उदावर्त अर्श अथवा आंत सम्यूर्च्छन आंत परिवर्तन होने के कारण अपानवायु का मार्ग रुक जाता है। धात्वग्नि एवं वायु प्रकुपित हो जाती है। पूर्व संचित मल कफ और पित रुक जाते हैं। और बद्धगुदोदर उत्पन्न होता है। इस रोग में यदि वमन होती है। आचार्य सुश्रुत के मतानुसार-"मुच्छर्दयन् विट समगन्धिकं बद्धगुदं विभाव्य:"[4]।

यकृदाल्युदर-यकृत और प्लीहा की एक साथ अभिवृद्धि का होना यकृदाल्युदर दलनं दाली फेल जाता है। चोड़ा हो जाता बड़ा हो जाना उसके परिणाम स्वरूप उदर प्रान्त का उत्सेहायुक्त दिखाइ देना 'यकृदाल्युदर' कहलाता है।

जलोदर-(उदकोदर इश्तिस्काउल् वारीतून) जलोदर पांच प्रकार को होता है।

1. प्रतिहारिणी 2. वृद्विकारजन्य जलोदर 3. वृक्कविकारजन्य जलोदर 4. उदरावरण शोथजन्य जलोदर 5. रक्तदोषजन्य जलोदर।

वात, कफ, पित्त और सन्निपातोदर इन दोष परक प्रभेदों में जलोदर के आरम्भिक लक्षण विद्यमान रहते हैं। धीरे-धीरे जल संचय होते होते औदरिक प्रान्त बृहतकाय यानी उत्सेधायुक्त होने लगता है। इसी स्थिति का नाम जलोदर है।

ज्योतिषशास्त्र में उदररोग

उदर में होनेवाले रोगों को उदर रोग कहते हैं। जैसे अरुचि का होना, मन्दाग्नि, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कृमि, जलोदर एवं उदरशूल का होना ही उदररोग कहलाता है। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों के अनुसार रोगों का विचार किया जाता है। जैसे उदहरविकार का प्रतिनिधि ग्रह चन्द्रमा होता है। यदि चन्द्रमा सिंह राशि में हो या लग्न या षष्ठभाव में हो तो जातक का उदर रोग ग्रसित रहता है।

1. यदि सिंह राशि में चन्द्रमा हो तो उदर रोग की स्थिति बनती है।[5]
2. यदि जन्मांग कुण्डली में चन्द्रमा षष्ठभाव में हो तो उदररोग होता है।[6]
3. सप्तम स्थान में राहु केतु ग्रह हो तो उदररोग से ग्रसित होता है।[7]
4. तृतीय भाव में गुरु हो तो अरुचि होती है।[8]
5. यदि लग्न में मंगल हो तथा षष्ठेश निर्बल हो तो उदर में अजीर्ण होता है।[9]

यदि जातक के जन्मांग कुण्डली में सिंह राशि के साथ क्षीण चन्द्रमा बैठा हो और चन्द्रमा की महादशा या अन्तर्दशा चल रही हो तो वह जातक दांत और पेट से संबन्धित रोगों से परेशान

रहता है। उदर रोगों से ग्रसित रहता है।

सिंहस्थो द्विजनाथः करोति जातं रदनजठररोगार्त्तम्।
स्त्रीद्वेषिणं च पुरुषं तथा पिपासाक्षुधाविष्टम्।।[10]

उदररोग में होने वाले रोग को उदररोग कहते अरुचि का होना, मन्दाग्नि, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कृमि, जलोदर एवं उदरशूल का होना ये सब उदररोग कहलाते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार-

यदि जातक की कुण्डली में चन्द्रमा जन्मांग से षष्ठ भाव में हो तो वह जातक शत्रुओं से आक्रान्त तथा मन्दाग्नि तथा उदरोग से पीडित तथा आलसी होता है।

प्रचुरामित्रस्तीक्ष्णो मृदुकायाग्निर्मदालसश्चन्द्रे।
षष्ठे चोदररोगैः प्रपीडितः मुमान्भवति।।[11]

तथा जातक के जन्मांग से षष्ठ स्थान में यदि गुरु हो। तथा षष्ठेश पापग्रहों से दृष्ट हो तो उदरशूल होता है।[12]

यदि सिंह राशि में स्थित चन्द्रमा पापग्रहों से दृष्ट हो तो उदरशूल होता हैं।[13]

यदि शत्रु राशि या नीच राशि में लग्नेश हो, चतुर्थस्थान में भौम हो तथा शनि ग्रह पर पापग्रहों की दृष्टि पड़ती हो तो उदररोग से पीडित होता है।[14]

उदर रोग के कारण-

सभी रोगों की उत्पत्ति उदर से ही होती है। विशेषतः उदर रोग अतिमन्दाग्नि से ही होते हैं। मंदाग्नि से उदर में अजीर्ण से दूषित आन्नाहार एवं मल के द्वारा ही उदररोग होते हैं।

रोगाः सर्वेऽति मन्दाग्नौ सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात्।।[15]

मलों के संचय से स्वेवाही एवं जलवाही स्रोतों में अवरोधक उत्पन्न होता है। इससे प्राणवायु, अपानवायु एवं जठराग्नि संदूषित होती है। शरीर के स्वेदवार्हा, जलवार्हा स्रातों एवं प्राणवायु अपानवायु तथा जठराग्नि का संदूषित होना ही उदररोगों का कारण बनता है।

रुध्वा स्वेदाम्बुवाहीनिदोषाः स्रोतांसि सचिताः।
प्राणाग्न्यपानासन्दूष्य जनरान्त्युदरनृणाम्।।[16]

इसी प्रकार उदररोग उत्पन्न होने से पूर्व रोगी को, भूख की इच्छा तथा औदारिक बलियों का धीरे-धीरे क्षति या कमी होती है। किये गये भोजन का देरी से पाचन होता है। तथा भोजन और भोजनरस का विवेक होने लगता है। भोजन पचा या नहीं इसका ज्ञान रोगी नहीं कर पाता है। रोगी

के पैरों में शोश आने लगता है। एवं शरीर की अस्थियों में मूत्राशय में पीडा होने लगती है।

उदररोग का सामान्य लक्षण–जब उदररोग उत्पन्न होता है सभी प्रकार के उदर रोगों में सर्वप्रथम प्रमुखलक्षण अध्यमान का होना आवश्यक होता है। रोगी जब इधर-उधर चलता है तो असुविधा तथा असमर्थता का अनुभव करता है। तथा मानसिक दौर्बल्य, शारीरिक दौर्बल्य, जठराग्नि की दुर्बलता तथा मंदाग्नि शरीर के अग्रभागों में शोश का होना शिथिलता का होना, वायु एवं मल का अवरोध दाह तथा तन्द्रा आदि लक्षण सामान्य रूप से पाये जाते है।

आध्यामनगमनेऽशक्तिदौर्बल्यं दुर्बलाग्निता
शोफः सदनमंगानां तंगो वातपुरीषयोः
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि।।[17]

उदररोग के प्रकार–मुख्य रूप से उदर रोग के आठ भेद कहे गये है। वात, कफ, पित्त, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, बद्धोदर, बद्धगुदोदर, क्षतोदर, नलोदर ये आठ प्रकार उदररोग के बताये गये हैं।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः।
सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक् पृथक्।।

इन्हीं रोगों से उदर में दर्द की स्थिति बनती है शूनाक्षता आंखों की पलकों पर सूजन का आना शरीरकी त्वचा पतली और आर्द्र, बल, रक्त मांस तथा जठराग्नि में क्षीणता ये उदररोग के लक्षण है। असाध्य के निदर्शक है।

उदररोग के उपचार–उदररोग को दूर करने के लिए रक्तशालि यव, मुदग जांगल देशीय मृग के मांस का रस तथा आस्थापन वस्ति उन द्रव्यों की वस्ति देना चाहिए जो कि शरीरस्थ दोषों का संशोधन करके शरीर में यदि स्थ्रिरता लाता हो तो जो भी उदररोग से ग्रसित है। उनको, लालचावल, जौ, मूंग, मृगमांसरस विरेचन तथा आस्थपन वस्ति का प्रयोग करना चाहिए ये उपाय श्रेयस्कर है।

रक्तशालियवा मुदगा जांगलाश्च रसा हिताः।
विरेकास्थापनं शस्तं सर्वेषु जठरेषु च।।[18]

जिस व्यक्ति को वातरोग होता है। तो वातरोग से पीडित व्यक्ति को मटठे के साथ पिप्पली का 4 रत्ती-चूर्ण और 8 रत्ती लवण मिलाकर अनुमानरूप में रोगी को पीना चाहिए।

सर्वेभ्योऽप्युदरेभ्यस्तु द्रुतं मुच्येतमानवः।
वातोदरी पिबेतक्रं पिप्पलीलवणान्वितम्।।[19]

वातरोग से आमवात, शूल, सन्धिशूल एवं पक्षाघात जैसे रोग होते हैं। वायुकोप से उत्पन्न

रोग शरीर में आलस्य अनिद्रा हल्का सा दर्द, कम्पन एवं अंगसुप्तता उत्पन्न करते है। ज्योतिष शास्त्रानुसार वातरोग के योग-

1. यदि कर्क राशि में स्थित सूर्य पर शनि की दृष्टि हो।[20]
2. पापग्रह के साथ चन्द्रमा षष्ठभाव में हो तथा पापग्रह की दृष्टि हो।[21]
3. यदि धनेश एवं गुरु दुर्बल हो।[22]
4. नीचराशि में शनि के साथ पष्ठेश हो।
5. लग्न में गुरु तथा सप्तम स्थान में शनि हो।
6. क्षीण चन्द्रमा एवं शनि व्ययभाव में हो तो।

उस व्यक्ति के उदर में वातरक्त दोष होता है।

पित्त के कुपित होने के कारण उत्पन्न रोग को पित्तरोग कहते हैं पित्तोदर से ग्रसित रोगी को शर्करा के साथ कालीमिर्च 5-6 नग पीसकर पानी में मिलाकर शर्बतरूप में पीना चाहिए इस उपाय को करने से पित्तरोग शान्त होता है।

''शर्करामरिचोपेतं स्वादु पितोदरी पिबेत्।''[23]

कफरोग से ग्रसित रोगी को यवानी का चूर्ण 1 माशा, सैंधव 1 माशा और अजाजी भुना हुआ चूर्ण 1 माशा व्योष (त्रिकुट) शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, सम्पूर्ण त्रिकुट, 1 ग्राम चूर्ण तथा सम्पूर्ण द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर प्रतिदिन दो या तीन बार एक-एक ग्राम की माजा में गरम पानी के साथ पीना चाहिए-

''यवानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी''[24]

उदररोग को दूर करने के लिए त्रिफल-हरीतकी, विभीतक, आमलक इन तीन द्रव्यों को समान मत्रा में लेकर क्वाथ बनाकर क्वाथ को छानकर 50 ग्राम की मात्रा में लेकर इसमें गोमूत्र 20 ग्राम, भैंस कादूध 250 ग्राम मिलाकर या गौ का दूध मिलाकर अथवा दुग्धपान करते हुए तथा नींबू का शर्बत आदि का सेवन रोगी को करना चाहिए। यदि गोमूत्र का कुछ दिनों तक निरन्तर सेवन करना चाहिए। इससे उदर रोग दूर होता है।

गोमूत्रयुक्तं महिषीपयश्च क्षीरं गवां वा त्रिफला विमिश्रम्।
क्षीराम्लभुक्केवलमेव गव्यं मूत्रपिबेद्वाश्वयथूदरेषु।।[25]

उपसंहार-

ज्योतिषशास्त्र में उदररोग के अनिष्ट प्रभाव से बचने के लिए ग्रहों की शान्ति करनी चाहिए। जिससे की उदररोग का निवारण किया जाता है। अनुष्ठान के द्वारा ग्रहों के मन्त्रों

के द्वारा कर्मकाण्ड पद्धति से उदररोग ग्रहों को शान्ति करनी चाहिए, जो ग्रह कुण्डली में रोग कारक हो उसके प्रशमन हेतु ग्रह चिकित्सा शास्त्र में बताई गई है, जो कि मणि-मन्त्र-औषधि के द्वारा निर्दिष्ट है।

1. वीरसिंहावलोकन- उदररोगाधिकार: पृ. 342
2. वीरसिंहावलोकन- उदररोगाधिकार: पृ. 342
3. वीरसिंहावलोकन- उदररोगाधिकार: पृ. 342
4. वीरसिंहावलोकन- उदररोगाधिकार:
5. बृ.जातक 17.5
6. सारावली 30.19
7. जातकतत्त्व 6.60
8. सारावली 30.52-55
9. जातकपा. 6.90
10. वीरसिंहावलोक- उदररोगाध्याय श्लो. 1 पृ. 344
11. वीरसिंहावलोक- उदररोगाध्याय श्लो. 3 पृ. 344
12. दैवज्ञभूषण 14.27
13. जातकतत्त्व 6.134
14. जातकपा. 6.91
15. वीरसिंहावलोक, उदररोगाध्याय 13.348
16. वीरसिंहावलोक, उदररोगाध्याय 14.348
17. वीरसिंहावलोक, उदररोगाध्याय 16.349
18. वीरसिंहावलोक, उदररोगाध्याय 19.350
19. वीरसिंहावलोक, उदररोगाध्याय 22.350
20. सारावली 3.37-38
21. सारावली 3.42-43
22. सारावली 6.33
23. वीरसिंहावलोक, उदररोगाध्याय पृ. 351
24. वीरसिंहावलोक, उदररोगाध्याय पृ. 351
25. वीरसिंहावलोक, उदररोगाध्याय पृ. 357

उन्मादमनोरोगयोः कारणं लक्षणं तदपाकरणोपायश्च

– ईश्वरभट्टः

विदितमेव तत्रभवतां समेषां वेदाङ्गत्वेन प्रथिततमं खल्विदं ज्योतिश्शास्त्रं वेदाङ्गेषु षट्सु चक्षुर्भूतत्वात् नितरां महत्वं प्राधान्यं च जुषते। वेदविहितानां कर्मणां कालविधायकशास्त्रमिदं लोकानां शुभाशुभफलप्रदर्शने परमोत्कर्षभूतम्। गणितं-संहिता-होरेति स्कन्धत्रयात्मकमिदं गच्छति काले प्रमाणफलभेदेन द्वैविध्यमापन्नम्। उक्तञ्च–

प्रमाणफलभेदेन द्विविधं च भवेदिदम्।[१]
प्रमाणं गणितस्कन्धः स्कन्धावन्यौ फलात्मकौ।। इति।

कालक्रमेण प्रमाणफलभेदेन विभक्ते द्विविधेऽस्मिन् ज्योतिश्शास्त्रे फलभागं प्रति बहूनामविश्वासो-जात इति नैदं शक्यते निह्नुतुम्। अत्र तु कारणम् अस्य भागस्य गहनतैव। यतोऽत्र भूयांस उपलभ्यन्ते उत्सर्गा अपवादाश्च। अत्रोत्सर्गोऽपवादोऽयमिति सुसूक्ष्मं पर्यालोच्य विविच्य फलनिर्देशो न तावत्सुसाधः। तावद्धीशालिनो यथाकालं सम्पादितशास्त्रपरिचयागुरुमुखावगतवस्तुतत्वा देवब्राह्मणविश्वासशालिनः सिद्धमन्त्राः लक्षणसम्पन्नाः दैवज्ञा एव समर्थाः भवेयुः फलादेशे इत्यत्र नास्ति सन्देहः। ननु जगतः शुभाशुभनिरूपणे प्रवृत्तमिदं शास्त्रं कथं मानवस्य आरोग्यविषयकं निरूपयति, कस्तावत् चिकित्साशास्त्रेण सह अस्य शास्त्रस्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावासम्बन्धः इत्यस्मिन् विषये कश्चन सन्देहः अवश्यमुदेति। तत्रापि रोग-आरोग्ययोः चिन्तनविषयो विशिष्य वैद्यशास्त्रज्ञानां कृते एव सुतराम् आरक्षितोऽस्ति। अतो नायमुद्यमः सफल इति पुनः शङ्का क्रियते। एवं सति आशङ्काद्वयस्यापि समाधानं इत्थं निवेदयामहे।

यथा मनश्शास्त्रं चिकित्साशास्त्रे प्रमुखं स्थानं भजते तथैव ज्योतिश्शास्त्रमिदं प्रधानं स्थानमत्र भजति। चिकित्साशास्त्रे मनः शास्त्रवत् प्रत्यक्षं दृश्यफलं ज्यौतिषस्यापि अस्त्यैव। 'दृष्टे सम्भवति अदृष्टफलकल्पना न न्याय्येति' दृष्टार्थता दृष्टरूपफलप्रतिपादनं प्रवृत्तेऽस्मिन् ज्योतिश्शास्त्रे उन्मादमनोरोग्योः कारणं लक्षणं तदपाकरणोपायश्च इति विषयमुररीकृत्य शोधप्रबन्धः प्रस्तूयते। सम्प्रति अस्य महती उपयोगिता वरीवर्ति। यथा चिकित्साशास्त्रस्य कृते शरीरविज्ञानमेव मूलाधारमस्ति तथैव ज्योतिषे द्वादश भावेषु अङ्गप्रविभागं परिकल्प्य तत्तद् अङ्गस्योपरि कस्य कस्य ग्रहस्य राशेर्वा आधिपत्यमस्तीति परिशीलय्, भावेषु विद्यमानानां ग्रहाणां उच्च-नीच-अस्त-बाल-कुमार-युवा-वृद्ध-स्थविर-सुप्ताद्यवस्थानुसारेण ग्रहाणां तत्तद्-योगवशाच्च प्रायः के के रोगाः सञ्जायमाणाः सन्तीति जन्मकुण्डलया आधारेण अनुमीयते यद्वा विचार्यते। अतोऽस्मिन् शास्त्रे शीर्षास्यबाहुहृदयजठरकटिबस्तिमेहनोरूयुण-जानू-जङ्घ-

चरणप्रभृतीनि कालपुरुषस्यङ्गानि क्रमशः मेषादयो राशय एव आधारत्वेन गृहीतानि। तादृश-कालपुरुषवत्कल्प्यमाने पुरुषस्याङ्गेषु कस्यापि जातकस्य रुजां विषये रुजः निधानार्थं च प्राधान्येन षष्ठस्थानं परिशीलयते। तदुक्तं यथा–

तस्करारातिविघ्नादिव्याधयश्च तनुक्षतिः।[2]
मरणं वारिशस्त्रेण चिन्तनीयं हि षष्ठतः॥ इति।

यद्यपि सर्वेषां रोगाणां चिन्तनावसरे सर्वथा षष्ठ स्थानमेव न परिगणयेत्। यतः षष्ठस्थानं षष्ठाधिपतिरनयोः दोषराहित्येनाऽपि सर्वदा रोगेण प्रपीड्यमानाः जनाः सन्ति बहवः। अतो रुजः विचारणावसरे प्रायः षष्ठस्थानं रोगस्थानत्वेन गदितं चेदपि, सर्वेषां रोगाणां विमर्शनक्रमे षष्ठस्थानमेव रोगस्थानत्वेन न परिगणयेत् उदाहरणार्थं दीर्घावधिपर्यन्तं प्रपीड्यमानानां रोगाणां विचारः चतुर्थ द्वादशभावयोः सकाशात्, तीव्रबाधाकारकव्याधीनां विचारः षष्ठभावतः, अनिरीक्षत-अकल्पिक-आकस्मिक-अपघात-मरणसूचकरोगाणां विचारः अष्टमभावतश्च अजरतं परिचिन्तितव्यम्। अपि च कस्यापि जनस्य सञ्जायमानस्य सामान्यरोगस्य बहूनां विज्ञेयांशानां लक्षणानि स्थिति-गतेर्विषये च तनुस्थानं सम्यक् विचिन्तयेत्।

तत्र तनुस्थानतः रोगस्य वैशिष्ट्यापेक्षया रोगिणो विषये अधिकं विषयविशेषम् अवगन्तुं वयं पारयामः। लग्नस्थितराशिवशात् तत्र विद्यमानग्रहवशात् लग्नाधिपतेर्वशाच्च पृथक्-पृथक् विषयाः विमृश्यमाणाः भवेयुः। जातकस्य नैसर्गिकी जीवनशक्तिः कीदृशी अस्ति, रोगिणः रोगावरोधक शक्तिः कीदृशी वर्तते, वातपित्तकफश्चेति त्रयाणां दोषाणां मध्ये जातकस्य का प्रकृतिः, सात्विकराजसिकतामसि-कश्चेति त्रिषु गुणेषु कः तावत् तस्य मनोधर्मः, कामक्रोधमदमोहमात्सर्यादिस्वभावेषु जातकस्य स्वभावः कः? एते सर्वे तनुभावतः एव अभ्युपगन्तव्याः सन्ति। अत एव जातकतत्त्वे उन्मादरोगं प्रतिपादयिता आचार्येण ईज्येऽङ्गे[3] कुजेऽस्ते उन्मादीति तनुभावेनाऽपि उन्मादरोगं न्यरूपि। 'लग्ने शनौ मदे त्रिकोणे कुजे उन्मादीति' पुनर्ब्रवीति। अथ च तत्रैव अन्ते इन्द्वर्कजौ लग्ने ज्ञ द्रष्टो'[5] विह्वलेति तनुभावे विद्यमानस्य ग्रहयोगवशात् पुनरून्मादयोगं ब्रूते। तस्मात् षष्ठस्थानमेव प्रायः रोगस्थानमिति अस्माभिः सर्वत्र घण्टाघोषेण समुद्घोष्यते तथैव रोगस्य विचारणावसरे लग्न-चतुर्थ-अष्टम-द्वादश स्थानान्यपि अवश्यं प्रविचिन्तनीयानि सन्ति। इत्थमत्र दिङ्मात्रं शास्त्रस्यास्य स्वरूपं रोगचिन्ताक्रमे विशेषतः चिन्त्यमाणस्थानानि च निरूप्य अधुना उन्मादरोगस्य विषये अत्र प्रदर्श्यते।

यथा समस्तरोगाणां ज्वरो राजेति विश्रुतः तथैव मनोरोगेषु उन्मादरोगः प्रधानः सर्वाधिक्येन प्रभावशाली च वर्तत इति अनुभव साक्षिकोऽयं विषयः। उत् उपसर्गपूर्वक मद् धातोः घञ् प्रत्यये कृते सति उन्मादेति पुल्लिङ्गे अस्य निष्पत्तिः भवति। मतिभ्रंशः, चित्तविभ्रमः, उच्मनाः मनोरोगविशेषश्च तात्पार्यायवाचिनो शब्दाः अस्य कथिताः। मानसिकव्याधीनां वर्गीकरणं कुर्वता ग्रन्थकारेण वीरसिंहावलोके उन्मादस्य निरुक्तिरित्थं कथिता तद्यथा–

मदयंन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमास्थिताः।[६]
मनसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः॥ इति

अयमर्थः – यस्माद्धेतोरुद्गताः प्रवृद्धा दोषाः उन्मार्ग मास्थिताः गदयन्ति चित्तं विक्षिपन्त्यस्मिन्। अतो अयमुन्माद इति कीर्तितः। सः उन्मादः मनसो व्याधिः मनोवैकृत्यकरणात् समजायते। तस्यैव अवस्थाभेदेन नामान्तराणि गदितानि। तत्रैव

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमुच्छ्रितैः।[७]
मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते॥ इति।

विषाद् भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम्।
स च प्रवृद्धस्तरूणी मन्दसंज्ञा विभर्ति च॥

इत्थं प्राधान्येन षड्विधेन उन्मादभेदं निरूप्य तस्य कारणं वीरसिंहावलोके एवं मनुते– विरुद्ध-दुष्ट-अशुचिभोजनं, देवगुरुब्राह्मणानां प्रकर्षेण घर्षणं यद्वा अभिघातः अभिभवश्च, भयः, हर्षोधिक्येन सञ्जायमानो मनोव्याधयश्च उन्मादहेतुत्वेन प्रणिगदितानि। तदुक्त यथा–

विरुद्धदुष्टाशुचि भोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।[८]
उन्मादहेतुर्भय हर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः॥ इति

अत्र दुष्टभोजनं धत्तूरबीजादिसहितम्, अशुचिशब्देन च रजस्वलादिस्पृष्टं भोजनम् भाव्यम्। तत्रैव उन्मादस्य लक्षणं ब्रुवता आचार्येण विषमचेष्टा, सत्वस्यालपता, मलस्य प्रदुष्टतायाश्च कारणेन बुद्धेः निरासो भूत्वा हृदयं प्रदूषितो भवति। हृदयस्य प्रदूषणमेव विभिन्न स्त्रोतेष्व धिष्टितो भूत्वा सपदि नरस्य चेतः प्रगोहितो भवतीति वर्ण्यते। तद्यथा–

तैरल्पसत्वस्य मलाः प्रदुष्टाः बुद्धेर्निरास हृदयं प्रदूष्य।
स्त्रोतास्याधिष्टस्य मनोवहानि प्रमोहन्त्याशु नरस्य चेतः॥ इति

अत्र प्रयुक्तस्य अल्पसत्वस्य अल्पसत्वगुणस्येति भावः मलाः वातादयः, बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्यति 'एतेन अश्रयस्य दृष्टया तदाश्रितायाः बुद्धेरपि दृष्टिरुक्ता। मनोरवहानि स्त्रोतांसि हृदयाश्रितानि सन्ति दश। एतानि विशेषतो बोद्धव्यानि। यतश्चकारेण सकलशरीरस्त्रोतांस्येव मनोऽधिष्ठानत्वेनोक्तानि। प्रमोहयन्तीत्यनेन चेतः विकृतिं कुर्वन्तीत्याशयः। तत्रैव पुनरून्मादस्य सामान्यस्वरूपं निरूप्यमाणो आचार्येणः बुद्धिविभ्रमः, सत्वस्य परिप्लवः, पर्याकुलितदृष्टिः, अधीरता, अबद्धवाक्यता, हृदयस्य शून्यता चेति उन्मादस्य सामान्यलक्षणं न्यरूपि। तदुक्तं यथा–

धीविभ्रमः सत्वपरिप्लवश्च पर्याकुलादृष्टिरधीरता च।[९]
अबद्धवाक्त्वं हृदयस्य शून्यं सामान्य मुन्मादगदस्य लिङ्गम्॥

अत्र धीविभ्रमो नाम शुक्तिकायां रजतज्ञानम्। सत्वपरि 'प्लवो नाम सत्वं मनः तस्य

चाञ्चलयम्। अबद्धवाक्त्वं नाम असम्भवभावित्वम्। शून्यं नाम स्मृतिशून्यत्वम् भाव्यम्।

पुनर्मनो दुःखजस्य विप्रकृष्टे सति उन्मादस्य लक्षणं ब्रूते तत्रैव। तद्यथा– चोर-नरेन्द्रपुरुष-शत्रु-अन्य वित्रास-धन-बान्धवसंक्षय-प्रियारिरसश्च मनोविकारस्य हेतवेति अभ्यदायि। उक्तञ्च–

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य[१०] धनबान्धवसंक्षयाद्वा।
गाढं क्षते मनसि च प्रिययारिरंसो जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः॥

अत्र प्रियया प्राप्तुमशक्यया जायमानो रिरंसः पुरुषस्य अतिशयेन उन्मादस्य कारणो भवतीति प्रविकल्पनीयः। अतिनिद्रा-अनिद्रा-अकारणेन रोदनं-हसनं-बह्वाशनञ्चेति अन्यानि कारणान्यपि चित्तविभ्रमस्य भवन्तीति शास्त्रान्तरेषु उच्यन्ते। विशिष्य तत्र वातपित्तकफसन्निपातागन्तुकनिमित्तास्तत्र पञ्चोन्मादाः खलु निगदिताः सन्ति। तत्र विशिष्य दोषनिमित्ताश्चत्वारः वर्तन्ते। भीरूणाम् उपक्लिष्टसत्वानाम् उत्सन्नदोषाणाञ्च मलविकृतोपहितानि अनुचितान्याहारजातानि वैषम्ययुक्ते नोपयोगविधिना प्रयुञ्जानानां तन्त्रप्रयोगो वा विषममाचरतामन्यां वा चेष्टां विषमां समाचरताम् अत्युपक्षीणदेहानाञ्च व्याधिवेगसमुद्भ्रमितानाम् उपहतमनसां वा काम-क्रोध-लोभ-हर्ष-भय-शोक-चिन्तोद्वेगादिभिः पुनरभिधाताभ्य आहतानां वा मनस्युपहते बुद्धौ च प्रचलिताभ्यामुदीर्वाः दोषाः प्रकुपिताः हृदयमुपसृत्य मनोवहानि स्रोतांस्यावृत्य जनयन्त्युन्मादम्। उन्मादं पुनर्मनो-बुद्धि-संज्ञा-ज्ञान-स्मृति-भक्ति-शील-चेष्टाहार-विभ्रमं विद्यात् इति चरकसंहितायामपि प्रतिपादितम्। एवम् आयुर्वेद शास्त्रोक्तरीत्या संक्षेपतः निरूप्य अस्य रोगस्य कारकग्रहः कः इति जिज्ञासा समुदिते सति मेषादिराश्यवयवनिष्पन्नस्य होरापुरुषस्य सूर्यादिग्रहैः सम्बन्धकल्पनावसरे कालपुरुषस्य 'मनश्चन्द्रमा'[११] इत्युक्तत्वात् मनोबुध्यहङ्कारचित्तानामुपलक्षणत्वाच्च मनोभूतस्य चन्द्र एव रोगस्यास्य कारको ग्रहः। जातके चन्द्रस्य दोषाभावं विना कस्यापि जातकस्य अयं रोगो नोत्पद्यते। चन्द्रानन्तरं बुधः मनोविकारस्य कारकः अपरो ग्रहः। पूर्वोक्त काल पुरुषस्य आत्मादिभूतेषु ग्रहेषु बुधस्याधिपत्यं मस्तिष्कोपरि अस्ति। किञ्च 'ज्ञ' वचः[१२] इति निर्देशात् वागिन्द्रयस्योपरि अस्य प्राधान्येन आधिपत्यम्। 'ज्ञ' शब्देन ज्ञानरूपत्वमपि निगद्यते। वच इत्यस्मिन् पदे अक्षरसंख्यया चतुष्षष्टिः भवति। अतो बुधः चतुःषष्टिकलाकारकोऽपि वर्तते। अपि च वातपित्तकफश्चेति त्रिदोषस्यापि प्रधानकारकोग्रहो कुमारभूतः बुधः। अतो जातके अस्य दोषाभावं विना न कस्यचित् पुरुषस्य मनोविकार भवति।

रोगस्यास्य कारकस्थानम्

अयं रोगः मानसिकविकारेण सञ्जायमानत्वात् शरीरिणां समस्तपदार्थचिन्तक्रमे विहितेषु द्वादशभावेषु मनसः स्थानं चतुर्थस्थानमेव मुख्यतया रोगविमर्शनविधौ परिशीलयेत्। तत्रादौ रोगिणः शरीरप्रकृतिः, स्वभावः शीलं, मनः दैहिकसौख्यप्रभृतयो गुणधर्माः जातकस्य तनु भावेन अस्माभिः चिन्तयितुं शक्यन्ते। अतो लग्नभावः तस्मात् लग्न-लग्नाधिपत्योः दोषैर्विना न कस्यचिद् मनोविकारो जायते। यथा पूर्वं प्रतिपादितं तदनुसारेण चतुर्थभावमपि अस्य रोगस्य चिन्तनावसरं महत्वपूर्णं स्थानमावहति।

यतो चतुर्थस्थानं सुखदु:खयो अभिव्यञ्जकस्थानमिति न विस्मरणीयो विषय:। हृदयस्थानमपि इदमेव। आत्म-बुद्धि-मन:-चेतनादीनामाश्रयं स्थानमपि इदमेव।

'यस्मिन् मनो व्रजति तत्र गतोऽयमात्मा इत्युक्तन्यायेन मनोवियोगे आत्मन: जाड्यं प्रसज्यते। तस्मात् चतुर्थस्थानं चतुर्थेशयो: दोषाभावे सति मनोविकारो न सम्भवति।

रोगकारक लग्नानि

मानसिकविकारं मुख्यतया सञ्जनयत: मिथुनकन्ये। पूर्वोक्त राशिद्वयस्य दूषणं विना न कस्यापि मनोविकार: सम्भवति। मिथुनकन्ये विहाय अन्येषु मेष-कर्क-वृश्चिक-मकर-कुम्भश्चेति एषु लग्नेषु समद्भूता: विशेषत: अनेन रोगेण पीड्यमाना: विलोक्यन्ते।

इत्थं ज्यौतिशास्त्रदृष्ट्या उन्माद रोगस्य मनोरोगस्य च कारकग्रह कारकस्थानं तत्कारक-लग्नानि प्रतिपाद्य अधुना मनोरोगस्य भेदद्वयं क्रियते। तत्रादौ रोगनिजागन्तुकभेदेन प्रकारद्वयं भजते। पुन: निजागन्तुकभेदेऽपि भेद द्वयम्। निजरोगे तावत् शरीरोद्भवरोग: चित्तोद्भवरोगश्चेति भेदद्वयमकार्षु:। आगन्तुके रोगविशेषे दृष्टनिमित्तजन्यो अदृष्टनिमित्तजन्यश्चेति च पुनर्भेदद्वयं चक्रु:। उक्तञ्च-

सन्ति प्रकारभेदाश्च रोगभेदनिरूपणे।[१४]
ते चाप्यत्र विलिख्यन्ते यथा शास्त्रान्तरोदिता:।। इति।

रोगास्तु द्विविधाज्ञेया: निजागन्तुकभेदत:।।[१५]
निजाश्चागन्तुकाश्चापि प्रत्येकं द्विविधा: पुन:।
निजाशरीरचित्तोत्था दृष्टा-दृष्टनिमित्तजा:।
तथैवा गन्तुकाश्चैवं व्याधयस्युश्चतुर्विधा:।। इति।

तत्र पूर्वोक्तनिजभेदे वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, संसर्गजन्य, वातपित्तजन्यो, वातकफजन्यो, पित्तकफजन्य:, सन्निपातजन्यश्चेति। अष्टौ भेदा: कीर्तिता:। तत्र अष्टमाधिपति:, अष्टमभाव: अष्टमं विलोक्यमाणो ग्रह: तद्भावे विद्यमानो ग्रह: एषु य बलिष्ट: तद्गतगदा विज्ञातव्या: सन्ति। ते च पृच्छकस्य कृते आदेश्या: भवन्ति।

तदुक्त यथा-

वातपित्त कफोद्भूता: पृथक्संसर्गजास्तथा।
सन्निपातभवाश्चैते शारीरा: कीर्तिगता गदा:।।
अष्टमेन तदीशेन तद्द्रष्टा तद्गतेन वा।
विज्ञातव्या: स्युरेताषां वीर्यतस्तत्कृता: गदा:।। इति।

तत्रैव निजरोगे चित्तोद्भवस्य लक्षणानि इत्थं न्यरूपि। कोप-भय-मोह-दु:ख-कामादीनां वेगजातास्तु मनोविकारेण जनिष्यमाणो व्याघय:। अष्टमभावधिपति: पञ्चमभावाधिपत्योश्च अन्योन्यदृष्टि: अन्योन्य-

केन्द्रस्थित्यादिपरस्परसम्बन्धेन चित्थोत्थरोगः (मनोरोगः) समजायन्ते।

उक्तञ्च–

क्रोधसाध्वसशोकादि वेगजातास्तुमानसाः।[17]
ज्ञेया रन्ध्रमनोनाथमिथयोगेक्षणादिभिः ॥ इति।

आगन्तुकव्याधिषु दुष्टनिमित्तजन्य अदृष्टनिमित्तजन्य इति प्रकारद्वयम्। महात्मनां शापः, शत्रुकृत आभिचारक्रिया, पतनं, अवघातश्च प्रायः सम्मिलिताः भवन्ति। अतो तद् व्याधेः चिन्तनं षष्ठभावः तद्भावाधिपग्रहः।

षष्ठभावम् ईक्ष्यमाणो ग्रहः तद्भावे व्यवस्थितो ग्रहः षष्ठभावेशस्य योगे विद्यमानो ग्रहः, षष्ठभवाधिपतिम् ईक्ष्यमाणो ग्रहश्चेति एभिः मनोरोगचिन्तनं कुर्यात्। अष्टमाधिपति-षष्ठभावयोः कश्चन सम्बन्धाविशेषश्चेत् शापादिनिमित्तप्राबल्यं वाच्यम् मनोरोगस्य। तथा चोक्तम्–

शापाभिचारघातादिजाता दृष्टनिमित्तजाः।[18]
ज्ञेया षष्ठतदीशाभ्यां तद्द्रष्टा तद्गतेन वा
रन्ध्रेशषष्ठसम्बन्धे शापाद्या प्रबलाश्च ते।
अदृष्ट हेतुजा ज्ञेयाः बाधकग्रहसम्भवाः॥ इति।

इत्थं मनोरोगस्य भेदं विविच्य अधुना उन्माद मनोरोगयोः परिहाराय प्रायश्चित्तविधिः निगद्यते। विविधपापकर्मभेदेन तत्तत्कर्मणां कृते प्रायश्चित्तभेदाः विस्तरेण सायणाचार्येण कर्मविपाकसंहितायां प्रतिपादिताः सन्ति। तत्तद्रोगशमनाय प्रायश्चित्तादीन् ज्ञात्वा तदुक्तविधिना प्रायश्चित्तं कारयेत्। उदाहरणार्थं मनोरोगस्य कारणं सायणोक्तवत् प्रतिपाद्यमाणो प्रश्नमार्गकारः गुरुनिन्दः अगम्यस्त्रोगमनं, परद्रव्यापहारश्चेति तत्कारणं ब्रूते। तद्रोगपरिहाराय स्वर्णेन निर्मितं गजप्रतिमां दानाय दद्यादिति प्रायश्चितं वक्ति। तदुक्तं यथा–

धीजाड्योन्मादहेतुर्गुरुजनहननं भोगतृष्णाविधानं।[19]
दुर्नार्यादौ परेषां न विदितमिता वाग्वेत्ति यच्चास्य चौर्यम्।
प्रायश्चित्तं च शान्त्य विहितमिह गजस्यार्पणं जूर्त्तिहेतुः।
हिंसाहेर्द्वेषणं स्त्रीगमनमपि गुरोर्दुर्गया चात्रहोमः॥ इति।

तत्रैव उपक्रमे रोगिणः व्याधेरुपशमनाय औषधं पश्यमाहारं तैलाश्यङ्गं योग्यवासस्थानं च विशेषतः रोगविमुक्तये श्रद्धया दद्यात्। विशिष्य दैवानुग्रह प्राप्तये सर्वरोगशान्त्यर्थं च मृत्युञ्जयहवनं विधेयमिति निरूप्यते।

उक्तञ्च–

औषधं पथ्यमाहारं तैलाभ्यङ्गं प्रतिश्रयम्।[20]
रोगिभ्यः श्रद्धया दद्यास्द्रोगी रोगविमुक्तये॥

मृत्युञ्जयहवनं खलु सर्वरूजां शान्तये विधेयं स्यात्।
सर्वेष्वपि होमेषु ब्राह्मणभुक्तिस्तथा-तथाप्तवचः॥

तीव्रज्वराभिचारादि शान्तिदं हवनं मतम्।
मृत्यञ्जयाख्यंमन्त्रेण नैव केवलमायुषम्॥ इति॥

इत्थम् उन्मादमनोरोगयोः कारणं लक्षणं तदवाकरणोपायाश्चेति संक्षिप्ततया निरुपिता इति शम्।

सन्दर्भग्रन्थः

(१) प्रश्नमार्गः
(२) जातकतत्त्वम्
(३) वीरसिंहावलोकः उन्मादाधिकारः
(४) शब्दकल्पद्रुमः
(५) बृहज्जातकम्
(६) दशाध्यायी विवृतिः

पादटिप्पणी

१. प्र. मा. प्र. अ. श्लो. सं-९
२. प्र. मा. प्र. अ.-१४ श्लो. सं-८
३. जा. त. वि. प्र. अ. सूं-१५१
४. जा. त. वि. प्र. अ. सूं-१५२
५. जा. त. वि. प्र. अ. सूं-१६०
६. श. क. पृ. सं.-२४४
७. श. क. पृ. सं.-२४५
८. श. क. पृ. सं.-२४४
९. तत्रैव पृ. सं.-२४५
१०. तत्रैव पृ. सं.-२४५
११. बृ. जा. अ.-२ श्लो. १
१२. बृ. जा. अ.-२ श्लो. १
१३. बृ. जा. द. टी पृ. सं.-३७
१४. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-१७
१५. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-१८-१९
१६. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-२०
१७. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-२२
१८. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-२३, २४
१९. प्र. मा. प्र. अ.-२३ श्लो. सं-२६
२०. प्र. मा. प्र. अ.-१३ श्लो. सं-३५, ३६, ३७

मानसिकरोग विचार

– श्री चक्रधर कर

मन एवं मस्तिष्क में विकार दोष के कारण उत्पन्न होने वाले मानसिक उन्माद व मतिभ्रम आदि रोग मानसिक रोग कहलाते हैं। इस रोग के कारण बुद्धि भ्रमित हो जाती है जिससे व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं तथा व्यवहार में भी परिवर्तन देखा जाता है। मनुष्य अच्छे-बुरे अकर्त्तव्य-कर्त्तव्य के भेद करने में असमर्थ होता है।

रोगों के भेद–

सामान्यतः सहज और आगन्तुक भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं तथा सहज और आगन्तुक रोगों में से प्रत्येक दो प्रकार के कहे गए हैं। सहज-रोग शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार के होते हैं तथा आगन्तुक रोग दृष्टनिमित्त-जन्य और अदृष्ट निमित्त-जन्य भेद से दो प्रकार के होते हैं। इस तरह चार प्रकार के रोग होते हैं।

रोगास्तु द्विविधा ज्ञेया निजागन्तुविभेदतः।
निजाश्चागन्तुकाश्चापि प्रत्येकं द्विविधाः पुनः॥
निजाशरीरचित्तोत्था दृष्टादृष्टनिमित्तजाः।
तथैवागन्तुकाश्चैवं व्याधयः स्युश्चतुर्विधाः॥[1]

शारीरिक रोग–

वात, पित्त और कफ के विकार से उत्पन्न होते हैं अथवा इनमें से किन्हीं दो के संसर्ग से उत्पन्न होते हैं। सन्निपात दोषों से उत्पन्न रोगों को भी शारीरिक रोग कहा जाता है।[2]

मानसिक रोग–

क्रोध, हर्ष और शोक आदि आवेगों से उत्पन्न रोग मानसिक रोग कहे जाते हैं। इन मानसिक रोगों का विचार अष्टमेश और चतुर्थेश की युति एवं दृष्टि आदि के आधार पर करना चाहिए।।[3]

दृष्टनिमित्तजन्य रोग–

शाप और अभिचार (मारण-मोहन आदि) के कारण एवं घात (षड्यन्त्र या योजनाबद्ध तरीके से प्रहार) आदि प्रत्यक्ष घटनाओं के द्वारा उत्पन्न रोगों को दृष्टनिमित्त-जन्य रोग कहते हैं।

मृत्युञ्जयहवनं खलु सर्वरूजां शान्तये विधेयं स्यात्।
सर्वेष्वपि होमेषु ब्राह्मणभुक्तिस्तथा-तथाप्तवचः॥

तीव्रज्वराभिचारादि शान्तिदं हवनं मतम्।
मृत्यञ्जयाख्यंमन्त्रेण नैव केवलमायुषम्॥ इति॥

इत्थम् उन्मादमनोरोगयोः कारणं लक्षणं तदवाकरणोपायाश्चेति संक्षिप्ततया निरुपिता इति शम्।

सन्दर्भग्रन्थः

(१) प्रश्नमार्गः
(२) जातकतत्त्वम्
(३) वीरसिंहावलोकः उन्मादाधिकारः
(४) शब्दकल्पद्रुमः
(५) बृहज्जातकम्
(६) दशाध्यायी विवृतिः

पादटिप्पणी

१. प्र. मा. प्र. अ. श्लो. सं-९
२. प्र. मा. प्र. अ.-१४ श्लो. सं-८
३. जा. त. वि. प्र. अ. सूं-१५१
४. जा. त. वि. प्र. अ. सूं-१५२
५. जा. त. वि. प्र. अ. सूं-१६०
६. श. क. पृ. सं.-२४४
७. श. क. पृ. सं.-२४५
८. श. क. पृ. सं.-२४४
९. तत्रैव पृ. सं.-२४५
१०. तत्रैव पृ. सं.-२४५
११. बृ. जा. अ.-२ श्लो. १
१२. बृ. जा. अ.-२ श्लो. १
१३. बृ. जा. द. टी पृ. सं.-३७
१४. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-१७
१५. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-१८-१९
१६. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-२०
१७. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-२२
१८. प्र. मा. प्र. अ.-१२ श्लो. सं-२३, २४
१९. प्र. मा. प्र. अ.-२३ श्लो. सं-२६
२०. प्र. मा. प्र. अ.-१३ श्लो. सं-३५, ३६, ३७

मानसिकरोग विचार

– श्री चक्रधर कर

मन एवं मस्तिष्क में विकार दोष के कारण उत्पन्न होने वाले मानसिक उन्माद व मतिभ्रम आदि रोग मानसिक रोग कहलाते हैं। इस रोग के कारण बुद्धि भ्रमित हो जाती है जिससे व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं तथा व्यवहार में भी परिवर्तन देखा जाता है। मनुष्य अच्छे-बुरे अकर्त्तव्य-कर्त्तव्य के भेद करने में असमर्थ होता है।

रोगों के भेद–

सामान्यतः सहज और आगन्तुक भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं तथा सहज और आगन्तुक रोगों में से प्रत्येक दो प्रकार के कहे गए हैं। सहज-रोग शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार के होते हैं तथा आगन्तुक रोग दृष्टनिमित्त–जन्य और अदृष्ट निमित्त–जन्य भेद से दो प्रकार के होते हैं। इस तरह चार प्रकार के रोग होते हैं।

रोगास्तु द्विविधा ज्ञेया निजागन्तुविभेदतः।
निजाश्चागन्तुकाश्चापि प्रत्येकं द्विविधाः पुनः॥
निजाशरीरचित्तोत्था दृष्टादृष्टनिमित्तजाः।
तथैवागन्तुकाश्चैवं व्याधयः स्युश्चतुर्विधाः॥[1]

शारीरिक रोग–

वात, पित्त और कफ के विकार से उत्पन्न होते हैं अथवा इनमें से किन्हीं दो के संसर्ग से उत्पन्न होते हैं। सन्निपात दोषों से उत्पन्न रोगों को भी शारीरिक रोग कहा जाता है।[2]

मानसिक रोग–

क्रोध, हर्ष और शोक आदि आवेगों से उत्पन्न रोग मानसिक रोग कहे जाते हैं। इन मानसिक रोगों का विचार अष्टमेश और चतुर्थेश की युति एवं दृष्टि आदि के आधार पर करना चाहिए॥[3]

दृष्टनिमित्तजन्य रोग–

शाप और अभिचार (मारण-मोहन आदि) के कारण एवं घात (षड्यन्त्र या योजनाबद्ध तरीके से प्रहार) आदि प्रत्यक्ष घटनाओं के द्वारा उत्पन्न रोगों को दृष्टनिमित्त-जन्य रोग कहते हैं।

इन रोगों का विचार षष्ठ स्थान षष्ठेश और षष्ठ स्थान, को देखने वाले या उसमें स्थित ग्रह के आधार पर करना चाहिए। अष्टमेश और षष्ठ स्थान आदि का परस्पर सम्बन्ध होने पर शाप आदि उक्त कारण प्रबल होते हैं।[४]

अदृष्ट-निमित्तजन्य रोग–

बाधक ग्रहों के द्वारा उत्पन्न रोग अदृष्ट निमित्त पूर्वजन्मकृत् कर्म या प्रारब्ध वश उत्पन्न होते हैं।

रन्ध्रेशषष्ठसम्बन्धे शापाद्याः प्रबलाश्च ते।
अदृष्ट हेतुजा ज्ञेया बाधकग्रहसम्भवाः।।[५]

उन्माद रोग के कारण– इस रोग के होने के कई कारण हैं।

प्रथम–यह रोग हर्ष इच्छा अर्थात् अत्यधिक महत्वकांक्षा आदि कारण से होता है।

द्वितीय–यह रोग निरन्तर भय, मानसिक तनाव एवं शोक के कारण होता है।

तृतीय–यह रोग स्वास्थ्य और प्रकृति के प्रतिकूल अपथ्य भोज्य पदार्थ ग्रहण करने के कारण होता है।

चतुर्थ–यह रोग गुरु और देवता आदि की निन्दा करने से तथा उनके कोप से होता है।

हर्षेच्छाभयशोकादेर्विरुद्धाशुचिभोजनात्।
गुरुदेवादिकोपाच्च पंचोन्मादा भवन्त्यथ।।[६]

पञ्चम–यह रोग अनिन्द्रा के कारण भी होता है। मनुष्य सारी रात जागता है, उसे नींद नहीं आती मानसिक थकान के कारण वह असम्बद्ध कथन करता है।[७]

उन्माद नामक मानसिक रोग पाँच प्रकार का होता है।

१. वातजन्य, २. पित्तजन्य, ३. कफजन्य, ४. संनिपातजन्य और ५. आगन्तुक (गुरु/देव आदि के कोप से उत्पन्न)

१. वातजन्य उन्माद का लक्षण– जिस व्यक्ति के वातजन्य उन्माद हो वह कभी हँसता, चिल्लाता, बिलखना, गाना गाता, नाचना, रोना, एक स्थान पर न ठहरना, शरीर के हाथ पैर आदि अङ्ग को फेंकना-पटकता लाल और कृष्णवर्ण होना, शरीर कमजोर होने पर भी बल होना, अधिक बड़बड़ाना आदि वातजन्य रोग का लक्षण है।

त्रिदोषजाः सन्निपाता आगन्तव इति स्मृताः।
हसनास्फोटनाक्रन्दगीतनर्तनरोदनम्।।

अस्थानमङ्गविक्षेपस्ताम्रा मृदुकृशा तनुः।
जीर्णे बलं च वाग्बह्वी वातोन्मादस्य लक्षणम्।।[८]

२. पित्तज उन्माद का लक्षण– यह व्यक्ति के व्याकुलता और क्रोध को बढ़ाता है। गम्भीर, और द्रवीभूत होना जोर-जोर से बोलना या लड़ना। छाया, ठण्डी चीज तथा घी की इच्छा करना, उसका शरीर शेष, पीला, तथा गरम होना यह सब पित्तजन्य उन्माद का लक्षण माना गया है।

संरम्भामर्षवैदग्ध्यमभिद्रवणतर्जनम्।
छायाशीतान्नतोयेच्छा रोषः पीतोष्णदेहता।[९]

३. कफजन्य उन्माद का लक्षण– यह व्यक्ति स्त्रियों से बातचीत करने की अधिक इच्छा रखते हैं। नींद में बड़बड़ाते हैं, गुम-सुम रहना अर्थात् कम बोलना। मुँह से लार या झाग निकलना, उल्टी होना अधिक खाना, उसके नाखून, आँख सफेद होना यह सब लक्षण कफजन्य उन्माद के हैं।

नारीविविक्तप्रियतानिद्रारोचौ मनाग्वचः।
लालाछर्दिर्बलं भुक्तौ नखादिषु च शुक्लता।।[१०]

४. सन्निपातजन्य उन्माद का लक्षण– उपरोक्त वात, पित्त एवं कफजन्य उन्माद के जो लक्षण बतलाये गये हैं उनका मिला-जुला, मिश्रण होना ही सन्निपातजन्य उन्माद का लक्षण है।

एताः पित्तकफोन्मादचेष्टाः श्लोकोदिताः क्रमात्।
संमिश्रलक्षणो वर्ज्य उन्मादः सान्निपाकिः।।[११]

५. आगन्तुक उन्माद– देवता, राक्षस एवं नाग आदि को आगन्तुक ग्रह कहते हैं। ये अमर होते हैं तथा बल, वाणी, ज्ञान एवं पराक्रम सम्पन्न होते हैं। इनके कोप से उत्पन्न उन्माद को आगन्तुक उन्माद कहते हैं।

आगन्तवो ग्रहा ज्ञेयास्तेतु देवासुरादयः।
अमर्त्या बलवाक्ज्ञानविक्रमादिसमन्विताः।।[१२]

उन्माद होने के योग–

यदि बृहस्पति लग्नस्थ हो तथा मंगल सप्तम भाव में हो तो जातक अत्यधिक उन्मादी होता है तथा उसको उन्मादजन्य रोग जैसे रक्तचाप होता है।

जीवे विलग्ने वानिनन्दनेऽस्ते मदोदृतः स्यात् पुरुषो विशेषात्।[१३]

यदि शनि व द्वितीयेश मंगल के साथ युक्त हो तो जातक पित्तदोष के कारण पागल हो जाता है।

यमायेशौ भौमयुतौ पित्तज उन्मादः।[१४]

सूर्य या चन्द्रमा पापक्रान्त होकर राहु-केतु से दृष्ट हो अथवा तृतीय भाव में मंगल गुरु शनि की दृष्टि युति हो तो पागलपन होता है।[१५]

चन्द्रमा + राहु द्वादश भाव में हो तथा अष्टम भाव में या उक्त भावों में कम से कम दो अशुभ ग्रह स्थित हों। मतान्तर से (चन्द्र + शनि) व्यय भाव में होने पर पागल कर सकते हैं।[१६]

सूर्य और चन्द्र लग्न या पंचम नवम भाव में हो गुरु तृतीय भाव व किसी केन्द्र में हो जन्म समय में शनि सबसे बलवान् हो तो जातक उन्मादी होता है।[१७]

प्रश्नमार्ग के अनुसार आठ प्रकार के योग होने से जातक को उन्माद होता है।

१. जैसे– लग्न में गुरु सप्तम स्थान में शनि हो तो।

२. लग्न में गुरु सप्तम स्थान में मंगल हो तो।

३. लग्न में शनि सप्तम, पंचम, या नवम स्थान में मंगल हो तो।

४. लग्न में क्षीण चन्द्रमा बुध के साथ हो तो।

५. क्षीण चन्द्रमा और शनि दोनों व्यय स्थान में हो तो।

६. क्षीण चन्द्रमा पापग्रहों के साथ लग्न, एकादश, पंचम या नवम स्थान में हो तो।

७. सप्तम स्थान में पापग्रहों से युक्त गुलिक हो तो।

तृतीय, षष्ठ, अष्टम, व्यय स्थान में पापयुक्त बुध होता जातक उन्माद रोगग्रस्त होता है।

लग्नस्थे धिषणे दिवाकरसुते भौमोथवा द्यूनगो।
मन्दे लग्नगते मादत्मजतपः संस्थो महीनन्दनः।
मर्तौ मूढशशीन्दूजौ कृशशशी मन्दश्च रिष्फस्थितौ।
पापोपेतकृशामृतांशुरुदयायस्वान्तधर्मोपगः ॥
अस्ते पापयुतो मान्दिर्वित्रिषष्ठाष्टमान्त्यगः।
उन्माददायिनो योगा एवमष्टौ समीरिताः॥[१८]

नीच या शत्रुक्षेत्री शनि, राहु, केतु से युक्त तथा मंगल से दृष्ट हो तो जातक उन्मादी होता है।[१९]

यदि शनि लग्न में हो सूर्य द्वादश भाव में हो चन्द्र व मंगल त्रिकोण में हो तो जातक पागल होता है।[२०]

शनि लग्न में हो और शनि से मंगल त्रिक स्थान में ६.८.१२ भाव में हो तो वह उन्मादी अर्थात् अत्यधिक उत्तेजना वाला होता है।[२१]

सनक एवं उसके योग–

अत्यधिक पागलपन अवस्था जिसमें व्यक्ति मारपीट गाली–गलौच एवं कलहादि करने लगता है, उस अवस्था को सनक कहते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति बेकाबू हो जाता है। उसे पागल खाने में भरती करना पड़ता है।[२२]

इस रोग का मुख्य कारण चन्द्रमा पर पापग्रहों का प्रभाव तथा उनकी अनिष्ट स्थानों में स्थिति के कारण होता है। जातक पारिजात में आया है, चन्द्रमा पापग्रहों के साथ राहु से युक्त होकर द्वादश, पंचम, अष्टम, भाव में हो तो जातक उन्मादी, क्रोधी, और कलह प्रिय होता है।

चन्द्रे सपापे फणिनाथयुक्ते रिःफे सुते रन्ध्रगतेऽथवाऽपि।
उन्मादभाक् तत्र सरोषयुक्तो जातस्तु नित्यं कलहप्रियः स्यात्।।[२२]

जातकतत्त्व के अनुसार केन्द्र स्थान में सूर्य और चन्द्रमा के साथ शनि हो तो शराब एवं अन्य मादक पदार्थों के सेवन से मनुष्य सनकी हो जाता है।[२३]

सर्वार्थचिन्तामणि में आया है, कि क्षीणचन्द्रमा राहु और मंगल द्वादश भाव में होने पर जातक उन्मादी होता है।[२४]

निराशा व मानसिक अवसाद–

मन में आशा उत्साह व उमंग का अभाव निराशा व अवसाद की स्थिति अवसाद रोग कहलाती है। ऐसा जातक भावी अनिष्ट की आशंका से परेशान रहता है। उसे जीवन नीरस, उद्देश्यहीन व अंधकारपूर्ण दिखाई पड़ता है। काम काज में उसकी रुचि नहीं होती। स्वयं को वह बहुत दुर्बल, असहाय उपेक्षित व एकाकी पाता है। जीवन में असफलताएँ, विषम परिस्थितियों में अपूर्ण इच्छाएँ, प्रियजन से वियोग या विछोह इस रोग का मुख्य कारण है।[२५]

अवसाद के ज्योतिषीय योग निम्न प्रकार हैं–

चतुर्थ भाव को विद्वानों ने मन कहा है। चतुर्थ भाव में पाप ग्रहों की स्थिति या दृष्टि तथा चतुर्थेश का त्रिक भाव या त्रिकेश से संबंध, अवसाद रोग देता है।[२६]

लग्न आत्मा है। अतः लग्न में नीच राशिस्थ ग्रह की स्थिति आत्मविश्वास में कमी देता है। लग्न व लग्नेश पर पाप ग्रह की दृष्टि युति अवसाद रोग देती है।[२७]

पंचम भाव पर पाप ग्रह की दृष्टि–युति अथवा पंचमेश का शनि से दृष्टि–युति संबंध, जातक के चिन्तन को विकृत कर उसे हताश व अवसाद युक्त बनाता है।[२८]

पिशाच बाधा–

मतिभ्रम, दृष्टिविभ्रम या काल्पनिक भय भी मस्तिष्क रोग है। दिग्भ्रम या मतिभ्रम से

जातक, काल्पनिक आकृतियों व छायाओं को देखकर, भयत्रस्त होता है। तंत्रिका प्रणाली में दोष, मस्तिष्क शोध या चिन्तन विकार के कारण ये दोष उत्पन्न होता है। प्राचीन ग्रंथों में इसे शाप जनित रोग कहा जाता है।

१. षष्ठस्थ पाप ग्रह शत्रुकृत अभिचार या पिशाच बाधा को दर्शाता है।[२९]

२. लग्नस्थ गुरु का मंगल, शनि से दृष्टि युति संबंध हो।[३०]

३. पंचम व नवम भाव में स्थित पाप ग्रह तथा पंचमेश या नवमेश का त्रिक स्थान से संबंध मतिभ्रम को दर्शाता है।[३१]

उन्माद रोग की चिकित्सा–

वातजन्य उन्माद स्नेह (तेल, घी) आदि पान से, पित्तजन्य उन्माद में विरचन (पैर की सफाई), कफजन्य उन्माद में नस्य सूंघनी और वामन, आगन्तुक उन्माद में स्नेह आदि पान समस्त क्रियाएँ करनी चाहिये। ग्रह मन्त्र और तान्त्रिकमन्त्रों का जप, हवन आदि प्रयोग से सभी प्रकार का उन्माद समाप्त हो जाता है।[३२]

परिशीलित ग्रन्थावली

१. प्रश्न–मार्ग १२/१८–१९ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
२. तत्रैव १२/२० प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
३. तत्रैव १२/२२ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
४. तत्रैव १२/२३ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
५. तत्रैव १२/२४ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
६. तत्रैव १२/३४ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
७. ज्योतिष और रोग कारण निवारण पृ. १२८ प्रकाशक एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
८. प्रश्नमार्गः १२/३५–३६ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
९. तत्रैव १२/३७ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
१०. तत्रैव १२/३८ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
११. तत्रैव १२/३९ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
१२. तत्रैव १२/४० प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
१३. चिकित्सा ज्योतिष पृष्ठ २४ प्रकाशक भारतीय प्राच्य एवं सनातन विज्ञान संस्थान २००२
१४. तत्रैव पृ. २५ प्रकाशक भारतीय प्राच्य एवं सनातन विज्ञान संस्थान २००२
१५. ज्योतिष और रोग पृ. १२८ प्रकाशक एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
१६. तत्रैव पृ. १२८ प्रकाशक एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
१७. ज्योतिष पीयुष पृ. २५० प्रकाशक श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट
१८. प्रश्नमार्गः १२/३१ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२
१९. ज्योतिष और रोग प्रकाशक पृ. १२८ प्रकाशक एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
२०. तत्रैव पृ. २५ प्रकाशक भारतीय प्राच्य एवं सनातन विज्ञान संस्थान २००२
२१. ज्योतिषशास्त्र में रोगविचार पृ. १३२ मोतीलाल बनारसीदास १९८४

२२. जातकपारिजात अ.६ श्लो. ८३ चौखम्भा संस्कृत संस्थान २००४
२३. उद्धृतं ज्योतिषशास्त्र में रोगविचार पृ. १३२ मोतीलाल बनारसीदास १९८४
२४. उद्धृतं तत्रैव मोतीलाल बनारसीदास १९८४
२५. ज्योतिष और रोग : कारण एवं निवारण प्रकाशक प्रकाशक एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२ पृ. १२८ पृ. १३४
२६. तत्रैव प्रकाशक पृ. १३४ एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
२७. तत्रैव प्रकाशक पृ. १३४ एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
२८. तत्रैव प्रकाशक पृ. १३४ एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
२९. तत्रैव प्रकाशक पृ. १३५ एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
३०. तत्रैव प्रकाशक पृ. १३५ एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
३१. तत्रैव प्रकाशक पृ. १३५ एल्फा पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण २००२
३२. प्रश्नमार्गः १२/४२ प्रथम खण्ड प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन्स संस्करण २००२

मानसिक रोगों के कारण व निदान

– राजेन्द्र

यह मानव जीवन प्रभु के द्वारा दिया गया एक सुन्दर उपहार स्वरूप है या यूँ कहें की परमेश्वर की सबसे सुन्दर रचना मनुष्य ही है। यदि यह आवरण हमें इस जीवन में प्राप्त हुआ है तो परम सौभाग्य हमें समझना चाहिए। परन्तु आज मनुष्य भौतिकवाद के इस चकाचौंध में इतना डूब गया है कि इस सुन्दर जीवन के महत्त्व को समझ ही नहीं पाता अपितु २४ घण्टे इसे भार समझकर अपने इस जीवन को बोझ समझकर ढ़ोना शुरू कर देता है। इसके पीछे के कारणों पर यदि ध्यान दिया जाय तो मनुष्य की अपेक्षाएँ ही उसके दुःखों का कारण जान पड़ता है। जैसे हमारी जिम्मेदारियाँ, हमारे सपने, प्रेम, कैरियर, अन्य आवश्यकताएँ जिनसे जुझते–जुझते हम कभी–कभी नकारात्मक सोच की उस सीमा को भी पार कर जाते हैं। जिनसे हमारे शरीर को रोगों से घिरना पड़ जाता है और सही दिशा निर्देशों के अभाव के कारण यह इतना व्यापक रूप धारण कर लेता है, जैसे पागलपन या फिर जीवन से हाथ धोने पड़ जाते हैं और वास्तविक उद्देश्य जीवन का जिसे पूर्ण करने के लिए परमात्मा ने कृपा की थी इस शरीर को हमें भेंट स्वरूप देने की इस अपने पिण्ड के अन्दर विद्यमान आत्मा को परमात्मा से मिलाने का उद्देश्य मात्र कुछ अज्ञानतावश अपूर्ण ही रह जाता है।

यदि यहाँ पर इन विचारणीय बिन्दुओं पर प्रकाश डाला जाए तो जीवन के उन अनसूलझे पहलुओं को सुलझाया जा सकता है और आज के इस युग में भी बहुत ऐसी चीजें जैसे मनोविज्ञान, योग, आयुर्वेद, मेडिटेशन है। जिनसे आश्रय ग्रहण कर सन्तुलित जीवन बनाया जा सकता है। परन्तु हमारे ज्योतिषशास्त्र ने तो इस क्षेत्र में बहुत वर्षों पहले विजय प्राप्त कर ली थी क्योंकि यदि समय–समय पर ज्योतिषीय परामर्श ग्रहण किया जाए तो आद्यन्त जीवन में घटने वाली घटनाओं का साक्षात्कार पहले ही किया जा सकता है तथा समय रहते सुधार भी किया जा सकता है। क्योंकि प्राचीन ऋषियों ने अपने ज्ञान, योग और तपोबल से दिव्य रहस्यों का उद्घाटन किया है। जिससे मनुष्य अपने शरीर, विचार, मस्तिष्क के ऊपर विजय प्राप्त कर सकता है। अपने साथ समाज को भी सही दिशा की तरफ ले जा सकता है।

ज्योतिषशास्त्र में रोगों के ऊपर बहुत कुछ कार्य मिलता है। जैसे चक्षु–नेत्र, कर्ण, मूक, बधिर, अन्ध, नपुंसक, मानसिक रोगादि। हम यहाँ पर मानसिक रोग के ऊपर ज्योतिषीय जानकारी

एकत्रित करेंगे। मानसिक रोग जैसे उन्माद, अनिद्रा, मिरगी, पक्षाघात, मस्तिष्क अवसाद, पिशाच-बाधा, मस्तिष्क के अन्य रोग जैसे अविश्वास, भय, आलस्य, अनिष्ट आशङ्का, काम, क्रोध, कामी, व्याभिचारी योग प्रमुख हैं।

मानव मस्तिष्क व मन में विकारवश उत्पन्न नकारात्मक ऊर्जा रोग कहलाते हैं। इनमें विशिष्टतया उन्माद प्रमुख है। विज्ञानशास्त्र सम्मत मस्तिष्क जिसे बुद्धि विभाग (Brain) तन्त्रिका तन्त्र अर्थात् (Nervous System) का नियन्त्रण कक्ष माना जाता है। यह मनुष्य के सबसे ऊपर कपाल (खोपड़ी) में अवस्थित मस्तिष्क के तीन प्रमुख भाग हैं। अग्र, मध्य और पश्च मस्तिष्क। इनमें से १२ कपालीय तन्त्रिकाओं के युग्म निकलते हैं। मस्तिष्क से निकली तन्त्रिकाएँ देह के विभिन्न अङ्गों में फैलकर ईश्वरीय सञ्चार प्रणाली की झाँकी देती है। रीढ़ नली में स्थित कंडरा (Spinal Cord) सुषुम्ना मेरु रज्जु के माध्यम से सूचना, संवेग, सर्दी, गर्मी, दर्द, शब्द, गंध, रूप, रस के संदेशों का आदान-प्रदान करता है। इन्द्रियों से प्राप्त सूचना के आधार पर मस्तिष्क आदेश भेजता है।

मानसिक रोगों में प्रमुखतया चन्द्रमा कारण होता है। क्योंकि चन्द्रमा मन का कारक है। मानसिक रोग भावनात्मक आघात, बहुधा एक महत्त्वपूर्ण पहलु होता है। इन रोगों में लग्न व लग्नेश, चतुर्थभाव तथा चतुर्थेश, पञ्चम भाव तथा पञ्चमेश एवं चन्द्रमा की प्रधानता रहती है। पञ्चम भाव बुद्धि का भाव है। जातक का आचरण जब बुद्धिहीन व्यक्ति की तरह हो तब इस प्रकार के योग उत्पन्न होते हैं।

उन्माद

विक्षिप्तता अर्थात् बुद्धि भ्रमित हो जाना, शारीरिक एवं मानसिक चेष्टाएँ असामान्य बोलचाल, असम्बद्ध तीव्रतर इच्छाएँ, बनता कार्य भी खराब हो जाना इत्यादि।

कारण – प्रश्नमार्ग के अनुसार विषम भोजन, अपवित्र भोजन, उपवास, भय, वैराग्य, अकारण क्रोध, शत्रुकृत अभिचार, गुरुनिन्दा, यज्ञादिकर्मों में त्रुटि एवं दैव निन्दा, इन १० कारणों से उन्माद होता है।[१] उक्त कारणों से उत्पन्न उन्माद ५ प्रकार का होता है–

१. वातजन्य २. पितजन्य ३. कफजन्य ४. सन्निपातजन्य ५. आगन्तुक!

१. वातजन्य– जोर-जोर से हँसना, चिल्लाना, विलखना, गाना, नाचना, रोना, एक स्थान पर न ठहरना, हाथ पैर आदि पटकना, शरीर का लाल एवं कृश होना, कमजोर होने पर भी बल होना, एवं अधिक बड़बड़ाना इत्यादि लक्षण वातजन्य उन्माद है।

२. पितजन्य– अधिक व्याकुल, क्रोधित, गम्भीर, द्रवीभूत होना जोर-जोर से बोलना, लड़ना, छाया, शीतल वस्तुओं को पीने की इच्छा, अधिक रोष पीला एवं गरम शरीर होना ये सब पितजन्य उन्माद है।

३. कफजन्य– स्त्रियों से बोलने को लालायित होना, नींद में बड़बड़ाना गुमसुम रहना, मुँह से लार निकलना, उल्टी होना, अधिक खाना, नाखून एवं आँख की पुतली आदि का सफेद होना कफजन्य उन्माद होता है।

४. सन्निपातजन्य– वात, पित, कफजन्य उन्माद के जो लक्षण बताए गये हैं। उनका मिश्रित रूप सन्निपातजन्य होता है।

५. देवता, गुरु, राक्षस, राजा आदि से भय या कोप होना अथवा आशाओं पर वज्रपात होना आगन्तुक उन्माद का लक्षण है।[२]

इन रोगों के वास्तविक कारण का प्रभाव मनुष्य के अवचेतन मस्तिष्क (अन्तश्चेतना) पर पड़ता है। जिसे साधारणतया नहीं जाना जा सकता परन्तु ज्योतिषशास्त्र भूत-भविष्य-वर्तमान में घटित होने वाली घटनाओं का कार्य कारण सहित विवेचन करता है। अतः उन्माद के प्रमुख योग–

१. लग्न में गुरु तथा सप्तम भाव में शनि हो।

२. लग्न में गुरु तथा सप्तम भाव में मंगल हो।

३. लग्न में शनि तथा पञ्चम, सप्तम या नवम स्थान में मंगल हो।

४. लग्न में क्षीण चन्द्रमा एवं बुध दोनों हो।

५. क्षीण चन्द्रमा एवं शनि ये दोनों व्यय भाव में हो।

६. लग्न, पञ्चम, नवम या एकादश स्थान में पापग्रहों के साथ क्षीण चन्द्रमा हो।

७. सप्तम स्थान में पापग्रहों के साथ गुलिक हो।

८. तृतीय, षष्ठ, अष्टम या व्यय भाव में पापग्रह के साथ बुध हो।[३]

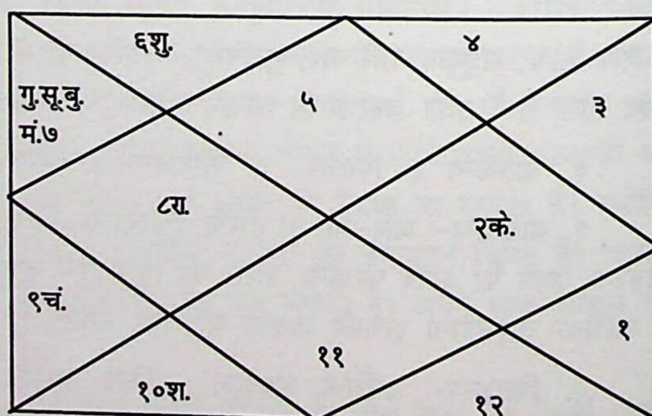
९. त्रिकोण स्थान में हो।[४]

उन्माद योग

जन्म तिथि–अक्तूबर १९९३,

समय– ०३:५५,

स्थान– अर्की, सोलन, हिमाचलप्रदेश



जातक की जन्म कुण्डली में तृतीय भाव में बुध पाप ग्रह सूर्य, मंगल के साथ युत है।

लग्नेश नीच राशि का है तथा शनि से दृष्ट है। शनि, मंगल, सूर्य की परस्पर दृष्टि सम्बन्ध के कारण जातक उन्माद रोग से पीड़ित है। वर्तमान में जातक अन्तश्चेतना से शून्य है, और रोग का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

सनक रोग

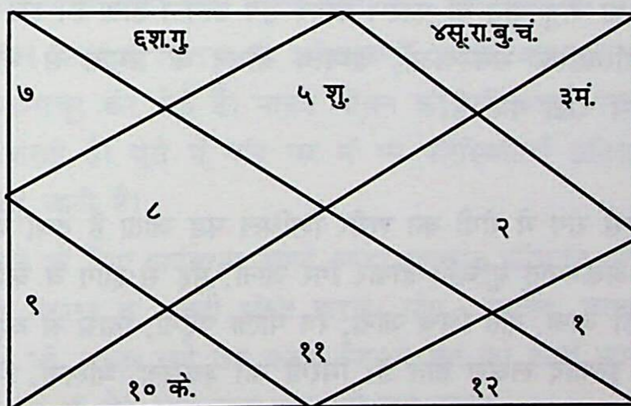
मारपीट, दंगा-फसाद, गाली-गलौच, कलह करते रहना यह पागलपन की ही अवस्था है। जिसे ज्योतिष में सनकयोग कहते हैं। इसमें व्यक्ति बेकाबू हो जाता है। उसे पागलखाने तक भेजना पड़ सकता है। मुख्य कारण चन्द्रमा पर पापग्रहों का प्रभाव तथा उसकी अभीष्ट स्थानों में स्थिति मानी गई है। पूर्णिमा में रोग उग्र तथा अमावस्या में शान्त रहता है। जैसे-

१. पापग्रह एवं राहु के साथ चन्द्रमा पाँचवें, आठवें, १२ स्थान में हो।[५]

२. केन्द्र स्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा के साथ शनि हो तो शराब एवं अन्य मादक पदार्थों के सेवन से मनुष्य सनकी हो।[६]

३. क्षीण चन्द्रमा, राहु एवं मंगल १२वें स्थान में हो।[७]

जन्म तिथि-३० जुलाई १९८१,
समय- ०९:००,
स्थान- दिल्ली



जातक की कुण्डली में जातक तत्त्व के अनुसार द्वादशभाव में सूर्य, चन्द्रमा, राहु के साथ होने के कारण सनक योग बना रहा है। जिससे जातक उपरोक्त समस्याओं से घिरा पड़ा है। लग्नेश का द्वादश में होना शिरोवेदना, मानसिक कष्ट का कारण बनता है और किसी बड़े मानसिक रोग पर व्यय होने की संभावना बनती है।

प्रमाद योग

यह पागलपन की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपनी सुध-बुध होश नहीं रहती अपितु अवधानता समाप्त हो जाती है। रोगी बड़बड़ाता रहता है। यह द्वितीयेश से उत्पन्न रोग है। जब द्वितीयेश पर अधिक पाप ग्रहों का प्रभाव होता है।[८] यथा-

१. द्वितीयेश पापग्रह एवं शनि के साथ रोग स्थान में हो तो वातकोप से प्रमाद होता है।

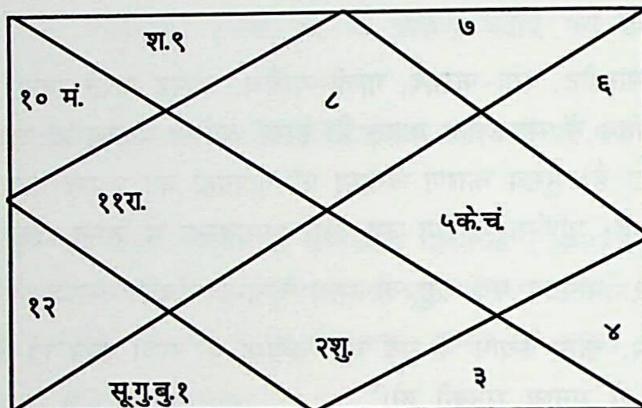
२. द्वितीयेश पापग्रह एवं सूर्य के साथ रोग स्थान में हो तो राजा आदि के कोपवश प्रमाद होता है।

३. द्वितीयेश पापग्रह एवं मंगल के साथ स्थान में हो तो पित्त प्रकोप से प्रमाद होता है।[९]

जन्म तिथि–२६.०४.१९८८,

समय– २१:००,

स्थान– दिल्ली



जातक की कुण्डली में द्वितीयेश गुरु पापग्रह के साथ रोग स्थान में स्थित है तथा केन्द्र में चन्द्र तथा केतु युति के कारण प्रमाद रोग उत्पन्न होता है। इस प्रकार का प्रमाद राजा व सरकारी संस्था, पारिवारिक समस्याओं, दाम्पत्य जीवन के प्रभाव से भी उत्पन्न होता है। जैसा के इस कुण्डली में देखा गया है।

मिरगी

इस रोग में रोगी का शरीर शिथिल पड़ जाता है तथा यह अपस्मार के नाम से भी जाना जाता है। अकस्मात् मूर्च्छित होकर गिर जाना, मुँह से झाग व कठोर स्वर निकलना, अंग कठोर व टेढ़े मेढ़े हो जाना, दाँत भिच जाना, रंग पीला पड़ना, प्यास से व्याकुलता तथा मुखाकृति में विकृति आ जाना इत्यादि लक्षण होते हैं। मिरगी की श्वसना, मलिना, निद्रा, जृम्भिका, अनशना, भासिनी, मोहिनी, रोहिनी, क्रोधिनी, तापिनी, शोषणी, ध्वंसिनी ये १२ दुतिया है। ये सब नाम अनुरूप चेष्टाएँ करवाती है।[१०]

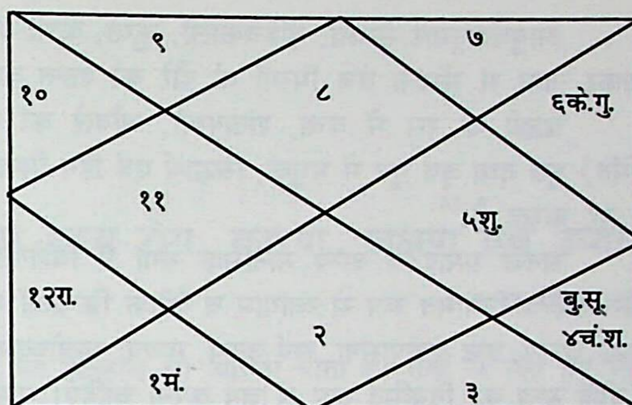
कारण–

१. अष्टम में शनि, त्रिकोण में राहु, अनिष्ट स्थान में शनि, सूर्य हो तथा शुभ ग्रह बलवान हो।[११]

२. शनि के साथ चन्द्रमा हो दोनों पर मंगल की दृष्टि हो।[१२]

३. अष्टम स्थान में चन्द्रमा एवं राहु हो।[१३]

४. ग्रहण काल में जन्म हो, शनि एवं मंगल पाँचवें या ८वें स्थान में हो तथा बृहस्पति केन्द्र एवं त्रिकोण में न हो।[१४]



जन्म तिथि–०४ अगस्त २००५,

समय– १३:५२,

स्थान– गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश

जातक की कुण्डली में अष्टम में शनि, त्रिकोण में राहु तथा शनि के साथ चन्द्रमा और दोनों पर मंगल की दृष्टि है। ग्रहण काल का जन्म है। अतः जातक मिरगी रोग से पीड़ित है।

उपचार

मनुष्य मन की प्रकृति बड़ी जटिल है। भारतीय चिन्तन में मन के महत्त्व को जानना और समझना शायद तभी जिसने मन को जीता उसने सारा संसार जीता तथा कहा गया है। **मन के हारे हार है मन के जीते जीत**। यह मन बाहर से कितना भी शक्तिशाली, कठोर जान पड़े परन्तु बहुत कोमल है। छोटी सी ठेस इसे चकनाचूर कर देती है। मानव जीवन की जटिलताएँ, स्पर्धा, संघर्ष, मन को थकान व तनाव दिया करती है। ऐसे में यदि घर में भी परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो तो मानसिक रोगों की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है।

इन रोगों से निपटारा चाहने के लिए सर्वप्रथम अपने अन्दर मूलभूत परिवर्तन अपेक्षित होते हैं। जैसे महापुरुषों के जीवन पर चिन्तन व अच्छी संगत करना। योग, आयुर्वेद, व्यायाम, ध्यान आसनादि लगाना इत्यादि। मन को जो अच्छा लगे वह करना जिससे मन को ऊर्जा प्राप्त हो और मन शान्त हो जिससे वह अच्छे बुरे में भेद जान सके व आगे बढ़ सके।

उन्माद रोग की चिकित्सा

वातजन्य उन्माद में स्नेह (तेल, घी आदि) पितजन्य में विरेचन, कफजन्य में नष्य और वमन तथा आगन्तुक में स्नेह पान आदि समस्त क्रियाएँ करनी चाहिए। ग्रह मन्त्र और तान्त्रिक मन्त्रों के जप तथा हवन आदि प्रयास से सभी उन्माद शान्त हो जाते हैं।[१५]

अपस्मार शान्ति

सर्वप्रथम अपस्मार का शमन करने के लिए कूष्माण्ड बलि करनी चाहिए। भीषण अपस्मार का शमन करने के लिए सुदर्शन या क्रोधाग्नि (मन्त्र शास्त्र में प्रसिद्ध) मन्त्रों से उनके अक्षरों की संख्या को १ हजार से गुणाकर तिल की आहुति देनी चाहिए। ऐसा मन्त्र-महार्णव में वर्णित है।[१६]

आयुर्वेदानुसार सैन्धव, वृश्चिकाली, कुष्ठ, कणा और भार्ङ्गी इन औषधियों का वारीक चूर्ण बनाकर नाक से सुँघाना तेज मिरगी के दौरे को शान्त करने में प्रशस्त है।[१७]

ब्राह्मी के रस में वचा, शंखपुष्पी, आँवले का रस और मधुक आदि (क्वाथविचि से निर्मित) घृत तथा वृष मूत्र में मधुक, सिद्धार्थ एवं हिंग मिलाकर बनाया घृत पीना या सूँघना अपस्मार को दूर करता है।[१८]

सनक प्रमाद व अन्य मानसिक रोगों में विशेषतया खान-पान शीतल पेय जल इत्यादि प्रयोग करें व नियमित रूप से व्यायाम व दैनिक क्रियाओं में सुधार व दृढ़ निश्चयी बनें। और नित्य सन्ध्या वन्दन, इष्ट देवोपासना, सूर्य अर्घ्य, गायत्री मन्त्रोच्चारणादि करें तथा मोती धारण करें। चन्द्रमा के बीज मन्त्र का नियमित रूप से जप करना चाहिए। सामाजिक कार्यों में लगे रहना चाहिए, और नकारात्मक विचारों को समाप्त करने के लिए सतत कार्यरत रहना चाहिए व सकारात्मक विचारधारा के साथ जीने की आदत डालनी चाहिए। क्योंकि इन मानसिक रोगों में नकारात्मक विचार कारण होते हैं। अतः यह विचारों की जंग सद्विचारों से ही जीती जा सकती है।

संदर्भ :

१. विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वा मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः।। चरकसंहिता चिकित्सास्थान ९/४

२. हर्षेच्छाभयशोकादेर्विरुद्धाशुचिभोजनात्।
गुरुदेवादिकोपाच्च पञ्चोन्मादा भवन्त्यथ।। प्रश्नमार्ग १२/३४

३. प्रश्नमार्ग अ. १२, श्लो. ३१-३२

४. सारावली अ. २२, श्लो. २३

५. जातकपारिजात, अध्याय ६, श्लो. ८१-८३

६. जातकपारिजात, अध्याय ६, श्लो. ८१-८३

७. जातक तत्त्व, मिश्रविवेक, सू. ८३

८. सर्वार्थचिन्तामणि अ. ३, श्लो. ११५

९. सर्वार्थचिन्तामणि अ.३, श्लो. ११६

१०. श्वसना मलिना निद्रा जृम्भिकानशना तथा
त्रासिनी मोहिनी चाथ रोदनी क्रोधनी तथा।
तापनी शोषणी चैव ध्वंसिनी चेति कीर्तिताः।
दूत्यो द्वादश विख्याता अपस्मारस्य सुप्रियाः।। प्रश्न मार्ग अध्याय १२, श्लो. ५३-५४

११. जातकतत्त्व षष्ठविवेक, सू. ७३-७९

१२. जातकतत्त्व षष्ठविवेक, सू. ७३-७९

१३. जातकतत्त्व षष्ठविवेक, सू. ७३-७९

१४. जातकतत्त्व षष्ठविवेक, सू. ७३-७९

१५. प्रश्नमार्ग अध्याय १२, श्लो. ४१-४२

१६. प्रश्नमार्ग अध्याय १२, श्लो. ४६-४७

१७. प्रश्नमार्ग अध्याय १२, श्लो. ४८

१८. प्रश्नमार्ग अध्याय १२, श्लो. ४९

ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से हृदय रोग, कारण, लक्षण एवं उपाय

– बृज मोहन शर्मा

मानव जीवन के साथ ही रोग का इतिहास भी आरम्भ होता है। रोगों से रक्षा हेतु मनुष्य ने प्रारम्भ से ही प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया, तथा आज तक इसके निदान एवं उपचार हेतु वह प्रयत्न कर रहा है। विश्व के प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद से रोगों का परिज्ञान आरम्भ हो जाता है, जिसमें पाण्डुरोग, हृदयरोग, उदररोग, एवं नेत्र रोगों की चर्चा प्राप्त होती है। पौराणिक कथाओं में विविध प्रकार के रोगों की चर्चा एवं उपचार के लिए औषधि, मन्त्र एवं तन्त्र आदि का प्रयोग प्राप्त हुआ है।

मानव जीवन में रोगोत्पति के कारणों को ज्योतिषशास्त्र और आयुर्वेद पूर्वजन्मार्जित मानता है। **"जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।।"**[1] आर्षपरम्परा में तो रोगों के विनिश्चयार्थ ज्योतिष शास्त्रीय ग्रहयोगों सहित आयुर्वेदिय परम्परा का विकास सर्वतोभावेन दर्शनीय है। सुश्रुत, चरक आदि आचार्यों ने चिकित्सार्थ अतुलनीय योगदान दिया है।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र मानव जीवन के लिए एक उपयोगी शास्त्र है। इस शास्त्र में अनादि काल से जनजीवन उपयोगी अनेक विषयों पर कल्याण-कारक चिन्तन होता रहा है। वैदिक विज्ञान में यज्ञ क्रिया का मानव के स्वास्थ्य, आयु एवं पर्यावरण से गहन सम्बन्ध प्रतिपादित किया है। अत एव **"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"**[2] तथा **"कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः"**[3] जैसी उक्तियाँ मानव जीवन और स्वास्थ्य को दृष्टिगत रखते हुए ही प्रसिद्धि को प्राप्त हो सकी हैं। यज्ञविधानार्थ कालशोधन के प्रसंग में ज्योतिष शास्त्र वेद का अंग माना गया है। ज्योतिष शास्त्र का कालशुद्धि पक्ष मानव जीवन के लिए उपयोगी सभी क्रियाओं के सम्पादनार्थ एक आवश्यक और अपरिहार्य अंग है। वहीं फलित ज्योतिष का **"होरा"** शास्त्र प्राणिमात्र के गर्भ में आने और जन्म लेने के समय तिथि और स्थान को आधार मानकर द्वादश भाव और नवग्रहों को मुख्य आधार स्वीकार करते हुए सर्वप्रथम स्वास्थ्य का ही चिन्तन करता है। इसी विचार को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय ज्योतिष शास्त्र की सभी शाखाओं में मानवजीवन और रोग जैसे विषयों पर व्यापक अनुसन्धान किया गया है। यह शास्त्र मानव जीवनोपयोगी अनेक सन्दर्भों की व्याख्या जीवन में घटने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान आकाशीय ग्रह नक्षत्रों के पृथ्वी पर तथा प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन एवं अनुसन्धान कर प्रस्तुत करता है। धर्मशास्त्र का मूल वाक्य है कि **"शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्"**[4]

ज्योतिष का भी मूल वाक्य है **"आयुः पूर्वं परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत्"**[५]।। वस्तुतः स्वास्थ्य, रोग, आयु और कर्मानुबन्ध ये चार इस प्रकार के विषय हैं जो कि परस्पर सम्बद्ध हैं। स्वास्थ्य का चिन्तन करने के कारण और आयु संवर्धन तथा दीर्घायु के मूल में स्वस्थ रोग रहित जीवन की भूमिका ही आयुर्वेद का मूल प्रतिपाद्य विषय है।

आयुर्वेद और ज्योतिष दोनों का ही चिन्तन रोगों के बारे में अनिवार्य है। अत एव ज्योतिष के विभिन्न ग्रन्थों में रोगों की उत्पत्ति के योग, रोगों का निदान, रोगों का कारण, रोगों की साध्यता, असाध्यता, उनकी उत्पत्ति और समाप्ति के काल ज्ञान के विषय में व्यापक अनुसन्धान किया गया है।

ज्योतिष शास्त्र ने ही प्रधान रूप से रोगोत्पत्ति के मूल कारणों में **"कर्म"** को स्वीकार किया है, इसलिए यहाँ कर्मज एवं दोषज– दो प्रकार की व्याधियों की चर्चा प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त तीसरी आगन्तुक व्याधि का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ग्रहों की प्रकृति, धातु, रस, अंग, अवयव, स्थान बल एवं अन्यान्य विशेषताओं के आधार पर रोग का निश्चय किया गया है तथा उनके निदान के उपाय भी बताए हैं। यहाँ हम केवल हृदय रोग के विषय में विचार करेंगे।

हृदय रोग के लक्षण– यह रोग अधिकांशतः मन एवं मस्तिष्क पर दबाव के कारण होता है। प्रायः देखा जाता है कि आवेग, उद्वेग या संवेग की उग्रतावश दिल का दौरा पड़ जाता है। हृदय में तीव्र वेदना या असाह्य दर्द को हृदय शूल कहते हैं। यह दिल के दौरे का पूर्व लक्षण है। दिल में होने वाली घबड़ाहट या बेचैनी को हृत्कम्प कहते है। आचार्य वैद्यनाथ के अनुसार शरीरस्थ सप्तधातुओं के अधिपति आकाशस्थ सूर्यादि ग्रह हैं–

मज्जास्नायुवसाऽस्थिशुक्ररुधिरत्वग्धातुनाथाः क्रमाद्।
आरार्कीज्यदिनेशशुक्रशशभृत्तारासुताः कीर्तिताः।।[६]

यहाँ मज्जाकारक भौम, स्नायुकारक शनि, वसा कारक गुरु, रूधिर कारक चन्द्रमा, त्वचा का स्वामी बुध, अस्थिकारक सूर्य, वीर्य कारक शुक्र कहा गया है। सूर्यादि के क्रमशः कुक्षि, हृदय, शिर, वक्षस्थल, उरु, मुख, जानु और दोनों पैर–ये अङ्ग हैं।

यथा– सूर्यादीनां कुक्षिहृन्मूर्द्धवक्षांस्यूरु वक्त्रं जानुनी चांघ्रियुग्मम्।
अङ्गानि स्युर्व्याधयोऽङ्गे ग्रहाणां वक्तव्या दौर्बल्यदौस्थ्यादिभाजाम्।।[७]

हृदयरोग कारक ग्रहयोग

चन्द्रमा यदि शत्रुगृही हो तो हृदयरोग होता है।[८]

सूर्य यदि कुम्भ राशिगत हो तो धमनी में अवरोध उत्पन्न करता है।[९]

मकर राशिगत शुक्र हो तो हृदयरोग होता है।[१०]

षष्ठेश सूर्य यदि चतुर्थभावगत हो तो जातक हृदय रोगी होता है।[११]

सूर्य, मंगल और गुरु चतुर्थ में हो।[१२]

चतुर्थस्थान में शनि हो।[१३]

सूर्य चतुर्थ भावगत हो तो हृदय रोग होता है।[१४]

तृतीयेश यदि केतु से युक्त हो तो जातक हृदय रोगी होता है।[१५]

सूर्य वृषराशिगत हो तो जातक हृदय रोग से ग्रस्त होता है।[१६]

वृश्चिकराशिगत सूर्य हृदय रोग उत्पन्न करता है।[१७]

चतुर्थेश चतुर्थ भावगत पापयुक्त हो तो हृदय रोग होता है।[१८]

चतुर्थ भावगत षष्ठेश की युति सूर्य शनि के साथ होने पर हृदयरोग होता है।[२०]

हृदय रोगकारक स्थान

ज्योतिष के आचार्यों ने सूर्य को हृदयरोग कारक के रूप में स्वीकार किया गया है। चतुर्थ भाव हृदय का प्रतिनिधि भाव है। अतः चतुर्थ भाव एवं चतुर्थेश पर पाप प्रभाव इस रोग का सूचक है। यह रोग बहुधा मन और मस्तिष्क पर दबाव के कारण होता है। फलित शास्त्र में मन का विचार चतुर्थ भाव से और मस्तिष्क का विचार पंचम से होता है। इसलिए कुछ आचार्यों ने चतुर्थ पंचम इन दोनों भावों पर पाप प्रभाव को इस रोग का कारण माना है।

चतुर्थ भाव में कर्क या सिंह राशि का होना

पंचम भाव में कर्क या सिंह राशि का होना

दशम या एकादश में कर्क या सिंह राशि की स्थिति।

हृदय रोगकारक ग्रह

ज्योतिष के ग्रन्थों में जो हृदय रोगकारक ग्रह योग प्राप्त होते हैं उनके आधार पर हृदय रोग के आरम्भ में निम्नलिखित ग्रहों की सर्वाधिक भूमिका दिखती है–

१. सामान्यहृदयरोगकारक–सूर्य, शनि

२. हृदयाघातकारक–शनि, मंगल

३. उच्चरक्तदाबकारक–मंगल, गुरु

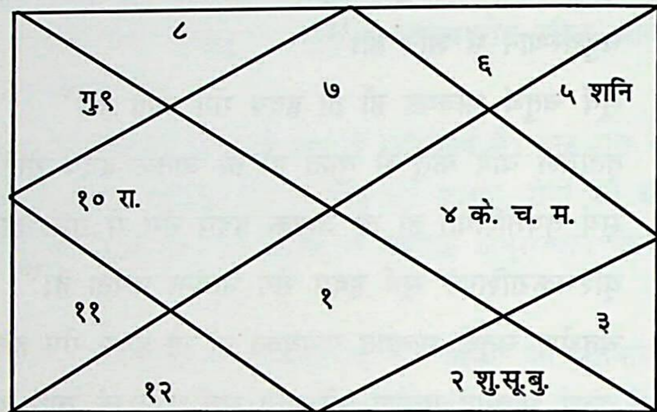
४. हृच्छूलकारक–राहु, शनि, मंगल

उदाहरण– आइए अब कुछ व्यक्तियों की कुण्डलियों में घटित हो रहे शास्त्रोक्त हृदयरोगों के योगों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

१. जन्मतिथि–७/६/२००८

जन्म समय–१६:३०

जन्मस्थान–दिल्ली (भारत)



इस जातक का जन्म तुला लग्न में हुआ है। और इसकी जन्म राशि कर्क है। लग्नेश शुक्र अष्टम में स्थित सूर्य के साथ अस्त है। जिससे लग्नेश बलहीन हो गया है। पापग्रह युक्त चन्द्रमा पर चतुर्थ भावस्थ राहु की दृष्टि से हृदयरोग की स्थिति बन रही है। जातक को जन्म के पश्चात् नौ महीने से हृदयरोग हुआ है। उस समय जातक की कुण्डली में शनि की महादशा में चतुर्थ भावस्थ राहु की अन्तर दशा एवं प्रत्यन्तर थी। वर्तमान में उपचार से स्वास्थ्य लाभ हो रहा है।

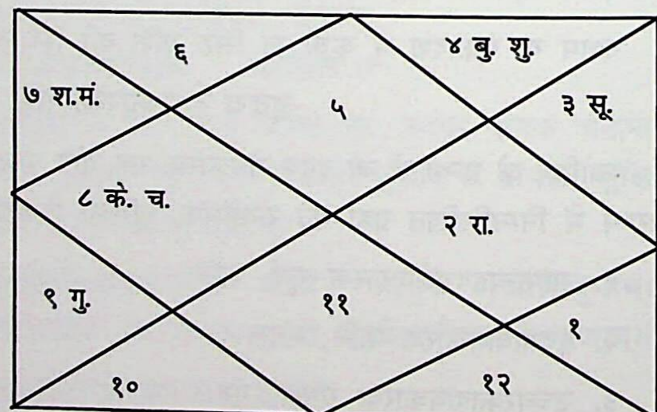
यथोक्तम्–

हृच्छूलरोगमुपयाति सूखे फणीशे पापेक्षिते गतबले यदि लग्न नाथे।
शूलामयं तनुपतौरिपुनीचराशौ भौमे सुखे रविसुते यदि पापदृष्टे।।[२२]

२. जन्मतिथि–१०/७/१९८४

जन्म समय–९/५५

जन्मस्थान–फैजाबाद (भारत)



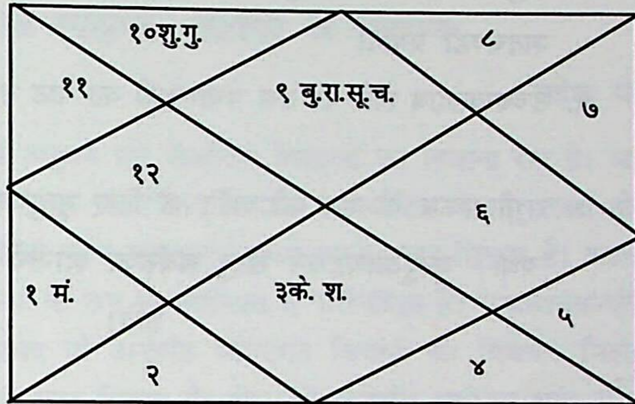
इस जातक की कुण्डली सिंह लग्न की है। और जन्म राशि वृश्चिक है। चतुर्थभावस्थ नीच के चन्द्रमा पर राहु की दृष्टि से हृदय रोग की संभावना प्रकट होती है। इस जातक को वर्तमान में शुक्र की महादशा में राहु का अन्तर चल रहा है। जिसमें इसे हृदय रोग की शिकायत हुई है।

यथा– कुरुते शुत्रगृहेऽर्को निःस्वं विषयप्रपीडितं चापि।
तुहिनमयूखः कुरुते हृद्रोगिणमरिगृहे नरं सततम्।।[२३]

३. जन्मतिथि–२५/१२/१९७३

जन्म समय–७/००

जन्मस्थान–पानीपत (भारत)



उपरोक्त कुण्डली में तृतीयेश शनि केतु के साथ होने पर हृदय रोग घटित होता है।

यथा– जडो भवेद्वासरनाथसूनुयुक्तेऽतिभीतो फणिसंयुते स्यात्
बहिर्गदो हृद्गदजाडययुक्तः केत्वन्विते मान्दियुते तथैव।[२४]

हृदय रोग का उपचार

औषधं पथ्यमाहारं तैलाभ्यङ्गं प्रतिश्रयम्
रोगिभ्यः श्रद्धया दद्याद्रोगी रोग निवृतये।।[२५]

हृदय रोग के प्रशमनार्थ सबसे पहले हमें रोगकारक ग्रह का ज्ञानकर उसके दोष प्रशमनहेतु तीनों प्रकार की ग्रहोपचार की विधि का अनुपालन करना चाहिए–

१. हृदय रोगकारक ग्रह का रत्न धारण।

२. रोगकारक ग्रह के औषधि से स्नान।

३. कारक ग्रह के मन्त्र का जाप।

४. शनि रोग कारक होने पर वैदिक मन्त्र का जप करे।

५. राहु के कारक होने पर बीजमन्त्र का जप करे।

६. मंगल के रोग कारक होने पर बीज+तान्त्रिक मन्त्र दोनों का प्रयोग करें। हृदय रोग के उपचार हेतु ज्योतिषीय उपचारों के अतिरिक्त बहुत सारे आध्यात्मिक तथा धार्मिक अनुष्ठान प्राप्त होते हैं, जिनके द्वारा हृदयरोग को कम अथवा नष्ट किया जा सकता है। जैसे–

१. ललितास्तोत्र/ सहस्त्रनाम का दैनिक पाठ।

२. आदित्य हृदय स्तोत्र का पाठ।

३. नृसिंह मन्त्र/पाशुपतास्त्रस्तोत्र का पाठ एवं जप।

४. राहु की स्थिति में बटुकभैरव या महाविद्या का पाठ।

५. शतचण्डी प्रयोग।

६. उच्चरक्तदाब होने पर रास पंचाध्यायी का पाठ तथा सूर्य सूक्त का पाठ कल्याणकारक है।

७. सभी प्रकार के रोग की शांति के लिए मृत्युञ्जय हवन करना चाहिए।

यथा– **मृत्युञ्जयहवनं खलु सर्वरुजां शान्तये विधेयं स्यात।।**[२६]

इति।

संदर्भ :

१. प्रश्नमार्ग-१३/२९
२. शतपथ ब्रा.१.१.१.५
३. वेदाङ्ग ज्योतिष
४. कुमा. स.- सर्ग ५
५. प्रश्नमार्ग ९/३
६. जा.पा.२/२८
७. प्रश्नमार्ग १२/२७
८. सारा-४४/१९
९. सारा-२२/६४
१०. सारा-२८/१९
११. जातकालंकार-२/१६
१२. जातकालंकार-३/३५-३६
१३. सारा-९/६०
१४. जा.पा.८/६८
१५. जा.पा.१२/३६
१६. होरा. प्र. १०/४४
१७. श.हो. १०/४६
१८. गदावली-२१२३
२०. जा.भू. ६/११
२२. जा.पा.६/९१
२३. सारा ४४/१९
२४. जा.पा.१२/३७
२५. प्रश्नमार्ग १३/३५
२६. प्रश्नमार्ग १३/३६

हृदय रोग के लक्षण, कारण व निदान

– महेश पाण्डेय

पुरातन काल से ही भारतवर्ष अनुपम एवं वैज्ञानिक विद्याओं का खजाना रहा है। भारतवर्ष व विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ में भी ज्योतिष का विशद् विवरण ऋग्ज्योतिष में समुपलब्ध होता है। लग्धाचार्य कृत वेदाङ्ग ज्योतिष में ज्योतिष परक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का सूत्रपात मिलता है। कालानुरोध से ज्योतिषशास्त्र के मुख्यत: तीन स्कन्धों के रूप में अवस्थित व परिनिष्ठित है। 'स्कन्धत्रयज्योतिषम्' ज्योतिष शास्त्र स्कन्धत्रय में होरा प्रभेद के अन्तर्गत व्यष्टिगत विचारों का विवेचन मिलता है। सुयोग–कुयोगादि विविध घटकों का विवेचन मिलता है। होरा की व्युत्पत्ति अहोरात्र शब्द से हुई है, इस सन्दर्भ में आचार्य वारहमिहिर ने बृहज्जातक में लिखा है–

होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पंक्तिं समभिव्यनक्ति।।[१]

उपरोक्त तथ्यों का गहनतापूर्वक अध्ययन से पता चलता है कि ज्योतिष पूर्वजन्मवाद को घोषित करता है। रोगविचार करते समय ऋषियों ने कहा है–

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।[२]

रोगविचार राशिचक्र के ९० अंश से १२० अंश के बीच की स्थिति को हृदय रूप दृष्टिगोचर करता है। वराहमिहिर ने कहा है–

कालाङ्गानि वराङ्गमाननमुरो हृत्क्रोडवासभृतो
वस्तिर्व्यञ्जनमूरुजानुयुगले जङ्घे ततोऽङ्घ्रिद्वयम्।
मेषाश्विप्रथमानवर्क्षचरणाश्चक्रस्थिता राशयो
राशिक्षेत्रगृहर्क्षभानि भवनं चैकार्थसम्प्रत्यया:।।[३]

द्वादश भावों में चतुर्थ स्थान से हृदय सम्बन्धी विचार किया जाता है। आयुर्वेद में त्रिदोष व सप्त धातुओं का विवरण मिलता है। आयुर्वेद में पंचाङ्ग पद्धति से विभिन्न रोगों का कारण व निदान का ज्ञान होता है। ज्योतिष में पापग्रह पंचमहाभूतों के अधिपति है। जैसे मंगल–तेज, बुध–आकाश, गुरु पृथ्वी, शुक्र–जल, शनि–वायु। इन्हीं पञ्चमहाभूतों के अधीन मानव शरीर का निर्माण होता है।

ज्योतिष शास्त्र ने ही प्रधान रूप से रोगोत्पत्ति के मूल कारणों में **"कर्म"** को स्वीकार किया है, इसलिए यहाँ कर्मज एवं दोषज–दो प्रकार की व्याधियों की चर्चा प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त

तीसरी आगन्तुक व्याधि का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ग्रहों की प्रकृति, धातु, रस, अंग, अवयव, स्थान बल एवं अन्यान्य विशेषताओं के आधार पर रोग का निश्चय किया गया है तथा उनके निदान के उपाय भी बताए हैं। यहाँ हम केवल हृदय रोग के विषय में विचार करेंगे। आचार्य वैद्यनाथ के अनुसार शरीरस्थ सप्त धातुओं के अधिपति आकाशस्थ सूर्यादि ग्रह हैं–

मज्जास्नायुवसाऽस्थिशुक्ररुधिर त्वग्धातुनाथाः क्रमाद्।
आरार्कीज्यदिनेश-शुक्रशशभृत्तारा सुताः कीर्तिताः॥ जा.पा. २/२८

यहाँ मज्जाकारक भौम, स्नायुकारक शनि, वसा कारक गुरु, रुधिर कारक चन्द्रमा, त्वचा का स्वामी बुध, अस्थिकारक सूर्य, वीर्य कारक शुक्र कहा गया है। आचार्य वराहमिहिर ने सूर्य को हृदयरोग कारक के रूप में स्वीकार किया है। इसी प्रकार परवर्ती परम्परा के ग्रन्थों में भी हृदयरोग कारक ग्रह योगों की प्राप्ति होती है।

लक्षण :-

हृदय रोग, आधुनिक जीवन शैली का सर्वसामान्य सार्वलौकिक कष्ट है। आधुनिक समय में मानसिक तनाव, व्यावसायिक स्पर्धा, भारी भोजन, व्यायाम की कमी, शरीर की कम क्रियाशीलता, धूम्रपान आदि इस रोग की ओर उन्मुख करते हैं। उक्त वर्णन जिस सामान्य प्रकार के हृदय रोग पर अधिक प्रभाव डालते हैं उन्हें "इसकीमिक हार्ट डिसीज" (ischaemic heart disease) या "कॉरोनरी आर्टरी डिसीज" (coronary artery disease) कहते हैं। इस रोग में हृदय के किसी भाग में माँसपेशियों में रक्त संचार कम हो जाता है और जो रक्त वाहिनी में अवरोध के कारण पैदा होता है जिससे हृदय की गति रुक जाती है।

हृदयरोग कारक ग्रहयोग

१. चन्द्रमा यदि शत्रुगृही हो तो हृदयरोग होता है। (सारा-४४/१९)

२. सूर्य यदि कुम्भ राशिगत हो तो धमनी में अवरोध उत्पन्न करता है। (सारा-२२/६४)

३. मकर राशिगत शुक्र हो तो हृदयरोग होता है (सारा-२८/१९)

४. षष्ठेश सूर्य यदि चतुर्थभावगत हो तो जातक हृदय रोगी होता है। (जातकालंकार-२/१६)

५. सूर्य, मंगल और गुरु चतुर्थ में है। (जातकालंकार-३/३५-३६)

६. चतुर्थस्थान में शनि हो (सारा-९/६०)

७. सूर्य चतुर्थ भावगत हो तो हृदय रोग होता है। (जा.पा.-८/६८)

७. तृतीयेश यदि केतु से युक्त हो तो जातक हृदय रोगी होता है। (जा.पा. १२/३६)

८. सूर्य वृषराशिगत हो तो जातक हृदय रोग से ग्रस्त होता है। (होरा. प्र. १०/४४)

९. वृश्चिकराशिगत सूर्य हृदय रोग उत्पन्न करता है। (श.हो.१०/४६)

१०. चतुर्थेश चतुर्थ भावगत पापयुक्त हो तो हृदय रोग होता है। (गदावली-२१२३)

११. चतुर्थगत यदि शनि, भौम, गुरु हो तो हृदय रोग होता है। (होरा रत्न)

१२. चतुर्थ भावगत षष्ठेश की युति सूर्य शनि के साथ होने पर हृदयरोग होता है। (जा.भू. ६/११)

१३. तृतीयेश राहु-केतु से युक्त हो तो हृदयाघात होता है। (ज्यो.र.)

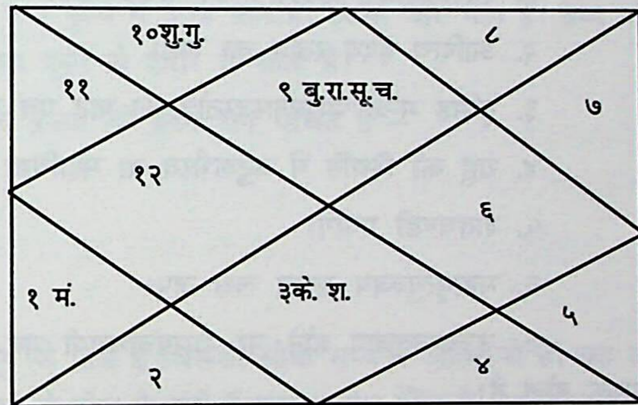
चतुर्थ भाव हृदय का प्रतिनिधि भाव है। अतः चतुर्थ भाव एवं चतुर्थेश पर पाप प्रभाव इस रोग का सूचक है। यह रोग बहुधा मन और मस्तिष्क पर दबाव के कारण होता है।

उदाहरण– आइए अब कुछ व्यक्तियों की कुण्डलियों में घटित हो रहे शास्त्रोक्त हृदयरोगों के योगों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

१. जन्म तिथि–२५/१२/१९७३

जन्म समय–७/००

जन्मस्थान–पानीपत (भारत)



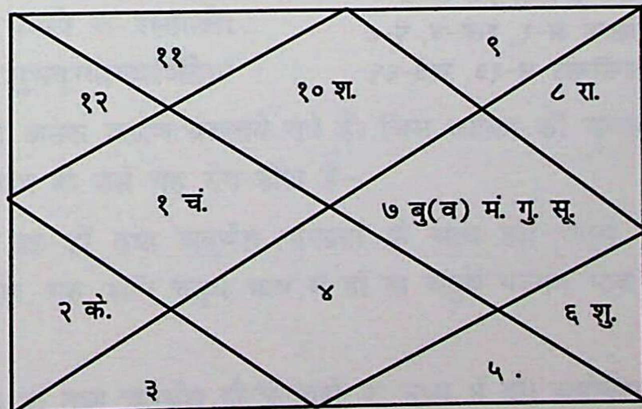
उपरोक्त कुण्डली में तृतीयेश शनि केतु के साथ होने पर हृदय रोग घटित होता है।

यथा– **जड़ो भवेद्वासरनाथसूनुयुक्तेऽतिभीतो फणिसंयुते स्यात्**
बहिर्गदो हृद्गदजाडययुक्तः केत्वन्विते मान्दियुते तथैव। (जा.पा.१२/३७)

१. जन्म तिथि–३१/१०/१९९३

जन्मसमय–१३:१४,

जन्मस्थान–नई दिल्ली



जातक की कुण्डली में चतुर्थ और पञ्चमभाव में पापग्रह हो, पाप षष्ठयंश से युत हो, और शुभग्रहों की दृष्टि से रहित हो तो हृदय रोग होता है। इस जातक को साँस लेने से सम्बन्धित परेशानी चल रही है और साँस लेने में अत्यधिक पीड़ा होती है। जिसका आयुर्वेदिक उपचार चल रहा है। प्रस्तुत कुण्डली में चतुर्थ भाव मंगल, सूर्य द्वारा दृष्ट, पञ्चम भाव के पापक्रान्त होने से तथा षष्ट्यंश में भी चतुर्थेश की स्थिति पापक्रान्त होने से जातक हृदय रोगी है, जिसकी पुष्टि निम्नलिखित पद्यों से दृष्टिगोचर हो रही है।

हृद्रोगी पञ्चमे पापे सपापे च रसातले।
क्रूरषष्ठ्यंशसंयुक्ते शुभदृग्योगवर्जिते।।[४]

हृदय रोग का उपचार

१. ललितास्तोत्र/सहस्रनाम का दैनिक पाठ।

२. आदित्य हृदय स्तोत्र का पाठ।

३. नृसिंह मन्त्र//पाशुपतास्त्रस्तोत्र का पाठ एवं जप।

४. राहु की स्थिति में बटुकभैरव या महाविद्या का पाठ।

५. शतचण्डी प्रयोग।

६. महामृत्युञ्जय सपाद लक्ष जप।

७. उच्चरक्तचाप होने पर रासपंचाध्यायी का पाठ तथा सूर्य-सूक्त का पाठ कल्याणकारक होता है।

८. नित्य हनुमान चालीसा पाठ।

संदर्भ :

१. बृहज्जातक अ-१, श्लो-६, पृ-१५
२. प्रश्नमार्ग भूमिका, पृष्ठ सं.-८
३. बृहज्जातक अ-१, श्लो-४, पृ-८
४. जातकपरिजात अ-१३, श्लो-६९

हृदय रोग एवं उपचार

– श्याम सिंह

हृदय शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अनाहत चक्र इसी के पास है जिसका हृदय-चक्र जागृत है, उसे साधना कर कुण्डली जागरण करने की आवश्यकता नहीं है। सम्पूर्ण शरीर में रक्त संचरण का दायित्व हृदय का है। परमात्मा की यह विचित्र एवं अद्भुत रचना है। इसे स्वस्थ रखना हमारा पवित्र कर्त्तव्य है। मानव निर्मित उत्कृष्टतम पम्प कुछ ही वर्षों में बेकार हो जाता है। परन्तु यह पम्प १०० वर्ष से अधिक क्रियाशील रहता है। यह छाती के मध्य भाग में बायीं तरफ में स्थित है। इसका वजन स्त्री २०० ग्राम तथा पुरुष में ३०० ग्राम है। इसके चार भाग हैं। तथा दो पम्प हैं। एक पम्प से रक्त फेफड़ों में तथा दूसरे से शरीर में जाता है।

आयुर्वेद में मुख्यतः तीन प्रकार के हृदय रोग वर्णित हैं[१]–

१. श्लैष्मिक हृदयरोग

२. वातिक हृदयरोग

३. पैत्तिक हृदयरोग

हृदय का प्रतिनिधित्व सूर्य के पास है जिसका सीधा सम्बन्ध आत्मा से है। यह अग्नि तत्त्व है। जब अग्नि तत्त्व का संबंध जल से होता है तभी विकार उत्पन्न होता है। अग्नि जल का शोषक है। जल ही अग्नि का मारक है चतुर्थ भाव से हृदय का विचार किया जाता है। अतः चतुर्थ भाव एवं चतुर्थेश पर प्रभाववश हृदय रोग होता है। अतः वैद्यनाथ प्रभृति कुछ आचार्यों ने चतुर्थ एवं पञ्चम इन दोनों भावों पर पापग्रहों के प्रभाव को रोग का कारण माना है। यथोक्तम्–

हृद्रोगी पञ्चमे पापे सपापे च रसातले।
क्रूरषष्ट्यंशसंयुक्ते शुभदृग्योगवर्जिते।।[२]

जातकग्रन्थों में इस रोग के अनेक कारण बतलाये गये हैं। जिस व्यक्ति की जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो उसे यह रोग होता है–

१. चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह हों तथा चतुर्थेश पापग्रहों के साथ हों। चतुर्थ भाव में गुरु-सूर्य-शनि की युति हो या मंगल, गुरु, शनि चतुर्थ भाव में हो या चतुर्थ पञ्चम भाव में पाप ग्रह हों।[३]

२. चतुर्थ स्थान में पापग्रह हों तथा चतुर्थेश दो पापग्रहों के मध्य में हो। यथोक्तम्–

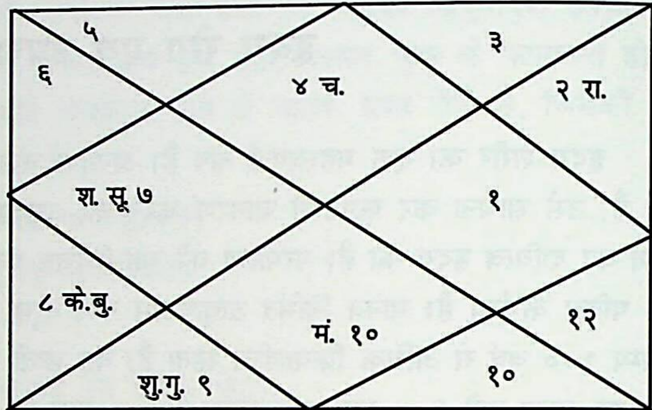
हृदये पापसंयुक्ते तदीशे पापसंयुते।
पापग्रहाणां मध्यस्थे हृद्गतं रोगमादिशेत्॥[४]

उदाहरण–

जन्मतिथि–१५.११.१९८४

समय–२२:५०,

स्थान– ठियोग, हिमाचल प्रदेश



यहाँ पर चतुर्थ स्थान में दो पापग्रह होने से तथा चतुर्थेश दो पापग्रह के मध्य में स्थित हैं। तथा पञ्चम पर राहु की दृष्टि लग्न पर शनि की दृष्टि और षष्ठ स्थान पर शनि की दृष्टि होने से तथा द्वितीयेश नीच का होने से चतुर्थ पर है। हृदय में कम्पन होता है। नित्य आदित्यहृदयस्तोत्र का पाठ करते हैं और वैदिक मन्त्र जप करते हैं।

३. चतुर्थेश जिस नवांश में हो उसका स्वामी क्रूर षष्ठ्यंश में हो तथा उस पर क्रूर ग्रह की दृष्टि। यथोक्तम्–

तदीशस्थांशराशीशे क्रूरषष्ठ्यंशसंयुते।
क्रूरग्रहेण सन्दृष्टे हृद्गतं शल्यमादिशेत्॥[५]

४. चतुर्थेश किसी शत्रु राशि में स्थित हो और चौथे भाव में शनि व राहु या मंगल व शनि या राहु व मंगल या मंगल हो एवं शनि या पाप ग्रह से दृष्ट हो तो हृदय रोग होता है।

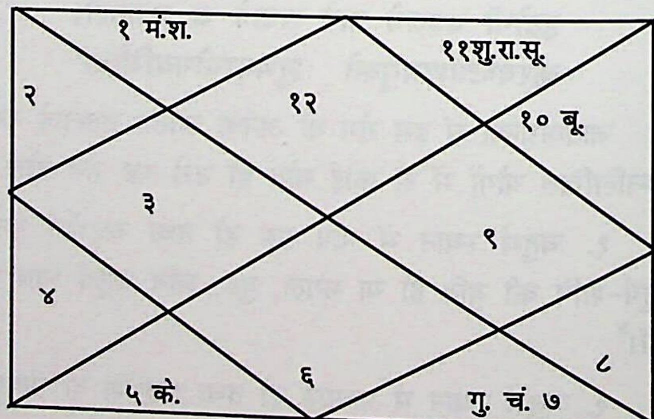
५. सूर्य यदि कुम्भ राशिगत हो तो धमनी में अवरोध उत्पन्न करता है।[६]

उदाहरण–

जन्मतिथि–२६.२.१९७०

समय–२२:५०,

स्थान– कोटखाई शिमला, हिमाचल प्रदेश



यहाँ पर सूर्य कुम्भ राशि स्थित अर्थात् शत्रु राशि स्थित होना चतुर्थ पञ्चम पर शनि व मंगल दृष्टि होना। धमनियों में अवरोध उत्पन्न हुआ। शनि की महादशा में सूर्य का अन्तर १०.०२. २०१३ में हुआ और IGMC शिमला में बाईपास सर्जरी हुई है।

६. चतुर्थेश द्वादश भाव में व्ययेश के साथ हो या नीच, शत्रुक्षेत्री या अस्त हो या जन्म राशि में शनि, मंगल, राहु या केतु हो जातक को हृदय रोग होता है।

७. चतुर्थ और पञ्चम भाव में पापग्रह हो, पाप षष्ठ्यांश से युत हो और शुभ ग्रह के योग हो तथा दृष्टि से रहित हो तो जातक को हृदय रोग होता है। पञ्चम भाव, पञ्चमेश, सूर्यग्रह एवं सिंह राशि पापग्रहों के प्रभाव में हो तो जातक को दो बार दिल का दौरा पड़ता है।[७]

८. चतुर्थेश अष्टमेश के साथ अष्टम स्थान में हो। षष्ठेश की बुध के साथ लग्न या अष्टम भाव में युति हो तो जातक को हृदय रोग का कैंसर तक हो सकता है।

९. नीचराशिगत, शत्रुराशिगत या अस्तंगत चतुर्थेश अष्टम स्थान में हो।[८]

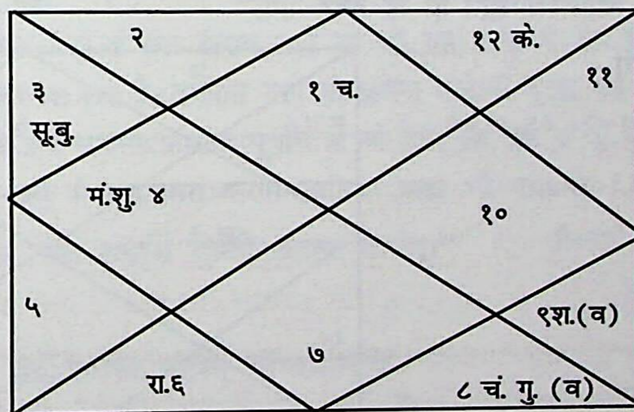
१०. चतुर्थ स्थान में शनि हो तथा सूर्य एवं षष्ठेश पापग्रहों के साथ हों। चतुर्थ भाव में मंगल हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि पड़ती हो तो रक्त के थक्कों के कारण हृदय की गति प्रभावित होती है जिस कारण हृदय रोग होता है।[९]

उदाहरण—

जन्मतिथि—२०.०६.१९५९

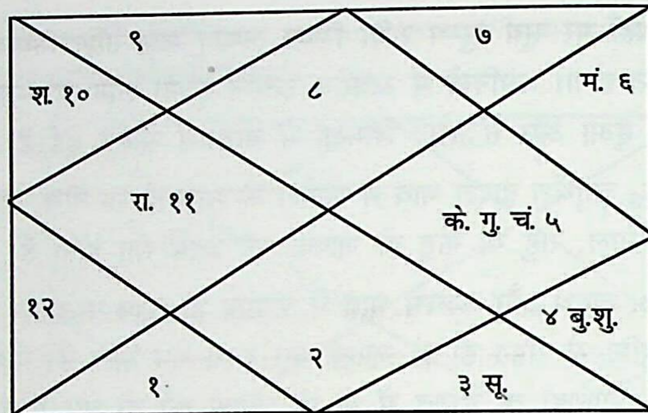
समय—२:५५,

स्थान— सितापुर रोड, लखनऊ



यहाँ पर लग्नेश और अष्टमेश चतुर्थ में नीच का है तथा चतुर्थेश अष्टम में नीच का है। और षष्ठेश पापग्रह के साथ है। मंगल की महादशा में रक्त में थक्कों के कारण हृदय गति प्रभावित हुई है। आयुर्वेदिक उपचार हो रहा है, ७.८.२०१३ से।

११. चतुर्थ और पञ्चम स्थान में पापग्रह हो। पञ्चमेश भाव सिंह राशि पापयुक्त भी दृष्ट हो।



उदाहरण–

जन्मतिथि–२९.०६.१९३३

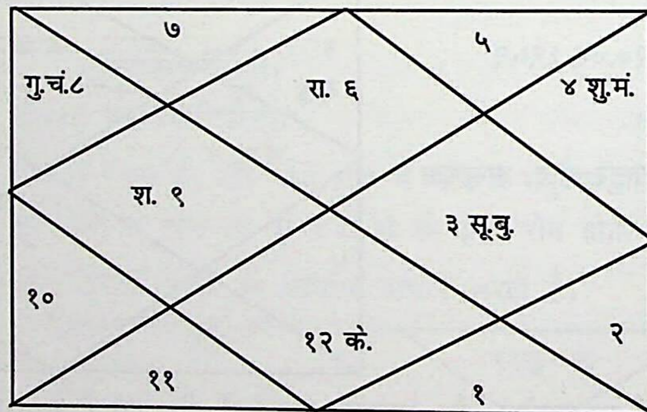
समय–१८:१०,

स्थान– लाहौर, पाकिस्तान

यहाँ पर चतुर्थ स्थान में राहु तथा पञ्चम पर मंगल और शनि की दृष्टि है। पञ्चमेश पापग्रह के स्थान में है। गुरु की महादशा और राहु की अन्तर्दशा १९८८ से पहला दौरा पड़ा आज तक चार दौरे पड़ चुके हैं। पर हर साल शतचण्डीयज्ञ तथा महामृत्युञ्जय जप सपादलक्ष हो रहा है, और रोग कुछ हद तक ठीक है।

१२. शनि या गुरु षष्ठेश होकर चतुर्थ भाव में पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक को हृदय व कम्पन रोग होता है। शुभग्रह क्रूराक्रान्त हों तथा षष्ठेश पापयुक्त हों।[१०]

चतुर्थस्थ शनि हो तो हृदय रोगी[११]



उदाहरण–

जन्मतिथि–२०.०६.१९५९

समय–१३:४०,

स्थान– दिल्ली

यहाँ पर पञ्चमेश षष्ठेश चतुर्थ में पापग्रह से देखा जा रहा है। लग्न में राहु होने से तथा राहु की महादशा में यह रोग हुआ। २०१२ मई में ऑपरेशन हुआ।

१३. शुक्र नीच राशि में हो तो उसकी महादशा में हृदय में शूल होता है। द्वितीयस्थ शुक्र हो तो भी उसकी दशा में हृदय शूल होता है। यथोक्तम्–

भृगोः सुतस्यावरोहकाले प्रचण्डवैश्यागमनं धनाप्तिम्।
स्त्रीपुत्रबन्ध्वार्त्तिमनोविकारं हृच्छूलरोगं मदनार्त्तिमेति॥[१२]

१४. चतुर्थ स्थान में शनि हो। लग्नेश चौथे स्थान में हो या नीच राशि में हो या मंगल चौथे भाव में पापग्रह से दृष्ट हो या शनि चौथे भाव में पापग्रहों से दृष्ट हो तो हृदयरोग होता है। लग्न में शनि स्थित हो एवं दशम भाव का कारक सूर्य शनि से दृष्ट हो तो जातक हृदय रोग से पीड़ित होता है।[१३]

१५. यदि राहु सुख में हो और लग्नेश पापदृष्ट और बलहीन हो तो हृदय-शूल रोग होता है। लग्नेश शत्रुगृह में व नीच राशि में हो और मंगल चौथे में हो, शनि यदि पापग्रह से देखा जाता हो तो हृदयरोग होता है। यथोक्तम्–

हृच्छूलरोगमुपयाति सुखे फणीशे पापेक्षिते गतबले यदि लग्ननाथे।
शूलामयं तनुपतौ रिपुनीचराशौ भौमे सुखे रविसुते यदि पापदृष्टे॥[१४]

हृदय रोग का उपचार

हृदय रोग के प्रशमनार्थ सबसे पहले हमें रोगकारक ग्रह का ज्ञान कर उसके दोष प्रशमन हेतु तीनों प्रकार की ग्रहोपचार की विधि का अनुपालन करना चाहिए–

१. हृदय रोगकारक ग्रह का रत्न धारण।

२. रोगकारक ग्रह के औषधि में स्नान।

३. कारक ग्रह के मन्त्र जप।

एक परम्परा आजकल चल पड़ी है कि खराब ग्रहों या जो ग्रह कष्ट दे रहा है, उसके रत्न या जप को नहीं स्वीकार किया जा रहा है, क्योंकि ग्रहों के प्रसन्न होने से दुःख को बढ़ायेगा। वस्तुतः यह धारणा निर्मूल है। जब हम समस्त प्रक्रिया पूर्वाचार्यों के द्वारा लिखित ग्रन्थों के आधार पर करते हैं तो उपचार पक्ष भी वहीं से अङ्गीकृत करना चाहिए। कहा भी गया है–

यद् ग्रहकृतं दौष्ट्यं तस्य ग्रहस्य तुष्ट्यै तद्रत्नं धार्यम्।[१५]

बृहत्संहितानुसारेण–

ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ नास्ति योग्यमस्माकं
स्वयमेव विकल्पयितुं---------------------।[१६]

शनि के षष्ठेश तथा हृदयरोग कारक होने पर वैदिकमन्त्र का जप। राहु के रोगकारक तथा चतुर्थस्थ या लग्नस्थ होने पर बीजमन्त्र का जप सूर्य के षष्ठ या द्वादशवें भावगत तथा रोगकारक होने पर वैदिक मन्त्र जप।

१. ललितास्तोत्र सहस्रनाम का दैनिक पाठ। 'हृदय ललिता देवी' का जप।

२. आदित्यहृदयस्तोत्र का प्रतिदिन पाठ।

३. यदि राहु की स्थिति कहीं से ग्रहयोग में या दशा में बन रही है तो बटुक भैरव प्रयोग या महाविद्या का प्रयोग।

४. शतचण्डीप्रयोग

५. महामृत्युञ्जय या मृतसञ्जीवनी प्रयोग हृदयरोग या मारकेश की दशा आने से पूर्व सपादलक्ष जप करें।

६. उच्च रक्तदाब होने पर रासपञ्चाध्यायी (भागवतपुराण) का पाठ तथा सूर्यसूक्त का पाठ कल्याण कारक है।[१७]

आयुर्वेदशास्त्रानुसार– श्रपर्णी (गम्भरी) मधुक (मुलैठी) इन २ द्रव्यों का समान मात्रा में लेकर यथाविधि क्वाथ बनाकर इसमें मधु, मिश्री और गुड़ मिलाकर पिलाने एवं वमन कराने से पैत्तिक हृदय रोग में लाभ होता है।

पित्तज हृदय रोग में हृदय स्थान पर छाती में चन्दन (सफेद चन्दन), खस आदि शीतल द्रव्यों का लेप एवं शीतल जल में भिगोकर पंखे की हवा मारकर छाती पर छीटे देना चाहिए। तथा द्राक्षा, परुषक (फालसा) इन २ द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर पीस लें और इसमें शर्करा एवं मधु मिलाकर शर्बत बना ले, इसी शर्बत में थोड़ा तैल मिलाकर पिला दें।[१८]

हींग, उग्रगंध, बिड्लवण, शुण्ठीसोंठ, पिप्पली, कुष्ठ, अभया (हरीत) चित्रक, यवक्षार, कालानमक, पुष्कर मूल, इन ११ द्रव्यों को समान मात्रा में नियमित रूप में जौ के पानी के साथ लेते रहने से शूल रोग एवं हृदयरोग नष्ट होते हैं।[१९]

संदर्भ :

१. ज्योतिषशास्त्र में चिकित्साशास्त्र अ. २, पृ. ५३
२. जातकपारिजात अ. १३, श्लो. ६९
३. सर्वार्थचिन्तामणि अ. ५, श्लो. ६५
४. सर्वार्थचिन्तामणि अ. ५, श्लो. ६५
५. सर्वार्थचिन्तामणि अ. ५, श्लो. ६६
६. सारावली २२/६४
७. सर्वार्थचिन्तामणि अ. ५, श्लो. ६७
८. सर्वार्थचिन्तामणि अ. ५, श्लो. ६६
९. जातकालङ्कार अ. ३, श्लो. १२
१०. जातकालङ्कार अ. ३, श्लो. १३
११. सारावली, अ. ३०, श्लो. ७७
१२. सर्वार्थचिन्तामणि अ. १५, श्लो. ५१
१३. सारावली, अ. २३, श्लो. ६४
१४. जातकपारिजात अ. ६, श्लो. ९१
१५. ज्योतिषतत्त्वाङ्क सन् २०१४ वर्ष ८८, पृ. ३५२
१६. बृहत्संहिता अ. ९, श्लो. ७
१७. ज्योतिषतत्त्वाङ्क पृ. ३५३
१८. वीरसिंहावलोक: पृ. ३०२
१९. वीरसिंहावलोक: पृ. ३०३

रोगों का सम्भावित काल

– डॉ. सुभाषचन्द्र मिश्र

समस्त भारतीय ज्ञान के मुख्य स्रोत वेद हैं। विद्वानों की मान्यता है कि वैदिक साहित्य में समग्र ज्ञान उपलब्ध है, वेद में ही समस्त भारतीय चिन्तनधारा के मार्गदर्शक तत्त्व विद्यमान हैं। जैसा कि मनु ने कहा है–

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वंवेदात्प्रसिध्यति।

यही कारण है कि सभी भारतीय तथा पाश्चात्य वैज्ञानिक भारतीय वैदिक ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं।

वैदिक साहित्य अति विस्तृत है तथा इसको षडाङ्गों में विभाजित किया गया है, जो क्रमशः इस प्रकार है–

व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प, शिक्षा तथा छन्दशास्त्र है। जैसा कि भास्कराचार्य ने भी कहा है–

शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधै॥[1]

वेद के षडाङ्गों में ज्योतिष शास्त्र को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। क्योंकि ज्योतिष शास्त्र को वेद का चक्षु माना जाता है, जैसा कि भास्कराचार्य ने कहा भी है–

वेद चक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिः चक्षुषाऽऽङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः॥[2]

आकाशमण्डल में जितने तेजोमय पिण्ड दिखाई पड़ते हैं उनको समग्र रूप से ज्योतिषीय इकाई के नाम से जाना जाता है। जिनको अलग–अलग नक्षत्र या ग्रह के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन ग्रह नक्षत्रों से कुछ अमृतमयी किरणे कुछ विषमयी किरणें तथा कुछ उभयमयी किरणें उत्सर्जित होती रहती हैं। समस्त चराचर जगत इन किरणों के प्रभाव से प्रभावित होता है।

ज्योतिष शास्त्र को सिद्धान्त संहिता तथा होरा नामक त्रिस्कन्धों में विभाजित किया गया है। मानव जीवन में प्राप्त होने वाले समस्त शुभाशुभ फलों का विचार–होरा स्कन्ध में मिलता है। ज्योतिष शास्त्र में जैसा वर्णित है–

जन्मान्तर कृतं कर्म व्याधिरूपेण जायते।

प्रश्न यह उठता है कि जन्मान्तर कृत कर्म क्या है? तथा उनका विभाजन किस प्रकार होता है? भारतीय चिन्तनधारा में कर्म का महत्त्व हर स्थान पर दिखाई देता है। तथा कर्म के आधार पर ही मनुष्य के जीवन में होने वाले शुभाशुभ फल का निर्धारण होता है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा अजर अमर है इसका कभी भी नाश नहीं होता केवल कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण अनेकानेक योनियों में बदलता रहता है। प्राणीमात्र के शरीर में रहने वाला यह तत्त्व नित्य एवं चैतन्य है, परन्तु कर्मानुबन्ध के कारण यह जरा, मृत्यु, व्याधि युक्त दिखलाई पड़ता है।

वैदिक दर्शनों में कर्म के संचित, प्रारब्ध एवं, क्रियमाण ये तीन भेद माने गये हैं। किसी के द्वारा वर्तमान समय तक किया कर्म, चाहे वह इस जन्म का हो या पूर्व जन्म का संचित कर्म कहलाता है। संचित का वह भाग जिसका फल मिलना शुरू हो गया है उसे प्रारब्ध कहते हैं तथा जो काम हम अब कर रहे हैं या भविष्य में करेंगे वे क्रियमाण कर्म कहलाते हैं। हमारे जीवन में उत्पन्न होने वाले रोग इन्हीं त्रिविध कर्मों के परिणाम हैं। मनुष्य के जीवन में उत्पन्न होने वाले रोगों में से जन्मजात तथा वंशानुक्रमगत रोग हमारे संचित कर्मों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। तथा जान बूझकर किये गये दुष्कर्मों द्वारा उत्पन्न रोग क्रियमाण कर्मों के फल हैं।

मनुष्य द्वारा जन्म-जन्मान्तर में किये गये शुभाशुभ कर्मों का फल इस जन्म में कब मिलेगा, कैसा मिलेगा इसका वर्णन केवल ज्योतिष शास्त्र में मिलता है-

जैसा कि वाराहमिहिराचार्य ने कहा है-

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम।
व्यञ्जति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।

जन्माङ्ग में स्थित शुभाशुभयोगसंचित कर्मों के सूचक होते हैं अर्थात् संचित कर्मों का विचार शुभाशुभ ग्रहयोगों के द्वारा किया जाता है, प्रारब्ध कर्मों का विचार ग्रहदशा तथा ग्रहयोगों के द्वारा किया जाता है और क्रियमाण कर्मों का विचार ग्रहयोगों ग्रहदशा तथा ग्रहगोचर के माध्यम से किया जाता है।

महर्षि पराशर ने ग्रहदशा के माध्यम से शुभाशुभ कर्मों के विचार को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है क्योंकि ग्रहदशा के माध्यम से व्यक्ति तथा वस्तु का निरूपण निश्चित रूप से हो जाता है कि किस समय हमारी स्थिति अनुकूल या प्रतिकूल होगी। इसका विचार भी ग्रहदशा के माध्यम से किया जाता है दशा के माध्यम से किसी घटना काल का सही-सही तथा सटीक समय निर्धारण सम्भव है।

चूँकि प्रारब्ध संचित का ही अंग है अतः इसका विचार करते समय संचित की उपेक्षा नहीं

की जा सकती, इसलिए प्रारब्ध कर्मों से उत्पन्न रोगों का विचार करते समय ज्योतिषाचार्यों ने योग तथा दशा दोनों पद्धतियों का आश्रय, लिया है। मिथ्या आहार विहार द्वारा उत्पन्न रोगों को क्रियमाण कर्मों का फल माना जाता है, किन्तु यह क्रियमाण भी संचित और प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है अतः रोगों के विचार के समय ग्रहयोग तथा दशाओं के साथ-साथ तात्कालिक ग्रहगोचरीय स्थिति अपेक्षित है।

रोगोत्पत्ति काल का विचार दो प्रकार से किया जाता है।

(१) ग्रहयोगों के द्वारा!

(२) ग्रहदशा द्वारा!

दशा के द्वारा रोगों के विचार में रोगोत्पति के सूक्ष्मतम काल का निर्णय सम्भव है। दशा के द्वारा हम यह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि रोग कब होगा।

दशाफल दो प्रकार का होता है–

(१) साधारण दशाफल

(२) विशिष्ट दशाफल

साधारण ग्रह के माध्यम से प्राप्त फल को साधारण दशाफल कहा जाता है। तथा ग्रह, स्थान, स्थिति, बलयोग आदि के माध्यम से प्राप्त फल को विशिष्ट फल कहते हैं।

रोग मनुष्य के जीवन की ऐसी घटना है जिससे मनुष्य की दैनिक गतिविधि रुक जाती है तथा जातक का जीवन दुःखमय हो जाता है। रोग का विचार षष्ठस्थान, षष्ठेश, षष्ठभाव में स्थित ग्रह, अष्टमभाव तथा व्ययभाव तथा इनमें स्थित ग्रहों आदि के द्वारा किया जाता है जैसा कि फलदीपिका में वर्णित है।

रोगस्य चिन्तामपि रोगभावस्थितैर्ग्रहैर्वा व्ययमृत्युसंस्थैः।
रोगेश्वरेणापि तदन्वितैर्वा द्वित्रयादिसम्बन्धवशाद् वक्तुम्॥[3]

रोगेश या षष्ठेश अष्टमेश, अवरोही, नीचराशिगत, पापयुक्त, पापदृष्ट, नीचांशगत, निर्बल अनिष्टस्थान स्थित क्रूरषष्ठांशादि स्थित ग्रह रोग कारक होते हैं।

उपर्युक्त स्थान में स्थित ग्रह अपनी दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा के समय रोगोत्पत्ति की सूचना देते हैं।

ग्रहयोग द्वारा रोगोत्पत्ति निर्धारण काल–

षष्ठभाव, षष्ठेश, यदि पापयुक्त हो, शनि या राहु से युक्त या दृष्ट हो तो मनुष्य आजन्म रोगी रहता है। षष्ठभाव में मंगल तथा अष्टमभाव में यदि षष्ठेश हो तो छठे या आठवें वर्ष में

जातक ज्वर से पीड़ित रहता है, षष्ठभाव में गुरुचन्द्र गुरु की राशि में स्थित हो तो १०-२० वर्ष की आयु में जातक कुष्ठरोग से पीड़ित होता है, षष्ठभाव में राहु, केन्द्र में शनि तथा अष्टमभाव में लग्नेश हो तो २६ वर्ष में जातक राज्यक्षमा रोग से पीड़ित होता है। द्वादशेश षष्ठभाव में तथा षष्ठेश द्वादश भाव में हो तो जातक गुल्मरोग से पीड़ित होता है। शनि के साथ चन्द्र षष्ठभाव में हो तो जातक को ५५ वर्ष की अवस्था में रक्त कुष्ठ होता है। लग्नेश तथा शनि षष्ठभाव में हो तो जातक ५९ वर्ष की अवस्था वातरोग से पीड़ित होता है।[४]

अष्टमभाव में शनि तथा सप्तमभाव में यदि भौम हो तो तीस वर्ष की अवस्था में जातक विस्फोटक पदार्थ से घायल होता है।[५]

अष्टमेश अपने नवांश में राहु के साथ यदि अष्टम भाव में हो तो २२ वर्ष की अवस्था में जातक गठिया तथा प्रमेहरोग से पीड़ित होता है।[६]

दशाओं के माध्यम से रोगोत्पत्ति काल का निर्धारण-

सूर्यादिग्रह अपनी-अपनी दशा में विभिन्न रोगों को उत्पन्न करते हैं। सूर्य की महादशा में सामान्यतया चित्तप्रकोप ज्वर शिरोवेदना आदि रोग होते हैं। किन्तु सूर्य यदि रोग कारक हो तो उसकी विभिन्न स्थिति के अनुसार उसकी महादशा, अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर्दशा, प्राणदशा, सूक्ष्मदशा में भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।[७] पर स्वयं शत्रु ग्रह की दशा में अनिष्ट की सम्भावना रहती है।[८] जिस पापग्रह की दशा होती है उसी ग्रह की धातु का शरीर में क्षय होता है[९] जन्मनक्षत्र से नौवें नक्षत्र से जिस ग्रह की दशा होती है, उस ग्रह की दशा से भूतकाल के फल की जानकारी होती है। कर्म नक्षत्र से नवें नक्षत्र से प्राप्त होने वाली ग्रह की दशा में भविष्यकालीन फल की जानकारी होती है।[१०] सूर्य की दशा में स्थिति विशेष से निम्नलिखित रोग उत्पन्न होते हैं जैसे-शत्रुराशिस्थ केन्द्रगत सूर्य की दशा में श्रोणीकण्ठ नेत्र सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं एवं नीचस्थ सूर्य की दशा में नेत्रकष्ट, शिरोरोग, कुष्ठ तथा आँव-रोग उत्पन्न होता है। इसी प्रकार आरोही, अति शत्रु राशिस्थ समराशिस्थ, नीचस्थ षष्ठस्थ द्वितीयभावस्थ चतुर्थभावस्थ द्वादशभावस्थ सूर्य की दशा में क्रमशः अग्निपीड़ा ज्वलन, शारीरिक कष्ट युद्ध में चोट मनोविकार ज्वर प्रमेह गुल्म अतिसार मूत्रकृच्छ आदि रोगों की सम्भावना होती है।[११]

चन्द्र की महादशा में संक्रामक रोग, एलर्जी, जन्म रोग विषमता से उत्पन्न रोग यथा-काश, प्रतिश्ययाय श्लेष्मा, मूत्राधिक्य आदि। चन्द्रमा मन का कारक ग्रह है। अतः चन्द्रमा की महादशा, अन्तर्दशा आदि के समय मानसिक रोग तथा उन्माद, विक्षिप्ता, कामजन्य रोग एवं अनेक मानसिक शारीरिक रोग चन्द्रमा की महादशा में उत्पन्न होते हैं। क्षीणचन्द्र की दशा, नीचराशिगत चन्द्र की दशा, षष्ठस्थ निधनस्थचन्द्र की दशा के समय कुक्षिरोग, मस्तक पीड़ा, नेत्रपीड़ा, काश, प्रतिश्याय आदि की सम्भावना रहती है।[१२]

भौम की दशा में सामान्यतया दुर्घटना रक्त विकार, घात, राज्यदण्ड आदि अशुभ फल प्राप्त होते हैं। परन्तु भौम की जन्माङ्ग में स्थिति के अनुसार निम्नरोग उत्पन्न होते हैं यथा केन्द्रस्थ द्वितीयभावास्थ अष्टमस्थ, नीचराशिस्थ भौम की दशा में विषजन्य रोग, मुखविकार, नेत्रविकार, गुदारोग, अग्निमय मूत्ररोग, सर्पदंश की सम्भावना रहती है। बुध की दशा में सामान्यतया चमड़ी की बीमारी, उद्वेग, मानसिक बीमारियाँ तथा ज्वरादि होते हैं। बुध की अशुभ दशा में त्रिदोष कष्ट की सम्भावना होती है[१३], परन्तु जातक की जन्मकुण्डली में बुध अपनी स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न रोग की सूचना देता है यथा[१४] यदि बुध नीचराशिस्थ शत्रुराशिस्थ पापग्रह से युक्त या तृतीयभावस्थ षष्ठभावस्थ हो तो निम्न रोगों की उत्पत्ति का कारण बनाता है। यथा–मानसिक कष्ट, चोर से भय कर्णरोग, नेत्ररोग, दाद, खाज, एक्जिमा, पाण्डुरोगादि।

गुरु की अशुभदशा में खाने-पीने का अभाव शरीर में सूजन, पंगुता, गठिया, कान के रोग, वीर्य विकार, मेदा का क्षय आदि रोग सम्भावना होती है।[१५] जन्माङ्गचक्र में गुरु अपनी स्थिति विशेष से विभिन्न रोगों की सूचना अपनी दशा काल में देता है।[१६] यदि जातक की कुण्डली में गुरु अस्त हो तो जातक अपने काल में अनेक प्रकार के रोगों से रूबरू होता है। यदि गुरु नीचांशगत है तो गुरु की दशा में गुल्मरोग तथा विवर्चित रोग का प्रकोप होता है। षष्ठगुरु की दशा भेदारोग, वातरोग, उदररोग होता है।

शुक्र की अशुभदशा में स्त्रीकृतपापजन्यरोग, कामरोग, वीर्यरोग की प्रबल सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। अतिशत्रुराशिगत शुक्र की दशा में नेत्र रोग, संग्रहणी, गुल्मरोग होता है, परमनीचांशगत, शुक्र की दशा के समय में मानसिक रोग होता है।[१७]

शनि की दशाकाल में जातक के अपने जीवन में वायुजन्य व्याधि, तद्रा, अङ्गक्षत, आदि रोग होते हैं।[१८] यदि जातक की कुण्डली में शनि रोग कारक हो तो निम्न रोग पैदा करता है।[१९] यदि शनि लग्नस्थ हो तो अपनी दशा के समय सिर दर्द, कृशता रोग से जातक के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। तथा तृतीयस्थ षष्ठस्थ एवं व्यय राशिगत शनि की दशा के समय, मानसिक रोग, वातव्याधि, विषमय, तथा अग्निदाह से रोग की सम्भावना होती है। सञ्चरणशील शनि की दशा में क्षय, वातरोग, पित्तरोग, होता है। सप्तमस्थ शनि की दशा में मूत्रकृच्छ रोग होता है। जैसा कि सर्वार्थ चिन्तामणि में कहा गया है–

दारराशिगतस्थापि शनर्दायेऽरिपीडनम्।
मूत्रकृच्छं महाद्वेषं स्त्रीहेतोमरणं च वा।। स.चि.म. १५/११३

राहु की दशा के समय उदर विकार मानसिक अशान्ति, तथा अभिचार एवं जादू-टोना मन्त्र-यन्त आदि के कारण जातक का जीवन रोग से ग्रस्त रहता है नीचस्थ राहु की दशा में विषय की सम्भावना होती है।[२०] सप्तमस्थराहु की दशा में सांप काटने का डर होता है अष्टस्थ राहु की

दशा में चोट या दुर्घटना से जातक मृत्युं को प्राप्त होता है। षष्ठस्थ राहु की दशा में प्रमेह, क्षय, चर्मरोग, गुल्म पित्तक्षय आदि रोग होते हैं।

जैसा कि सर्वार्थचिन्तामणि में कहा गया है–

दशाविपाके त्वरिराशिगस्य, चौराग्निभूपैर्भयमाप्तनाशम्।।
प्रमेहगुल्मपित्तरोगम् त्वग्दोषरोगं त्वथवामृतिर्वा।।

स.चि.म. १६/१२

केतु की दशा के समय शास्त्रघात उष्णतारोग, यथा फोड़ा फुन्सी, मूर्च्छा, आतशक आदि रोग होते हैं।[२१]

प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्म दशा में होने वाले रोग–

जिस प्रकार प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में सूर्यादि ग्रहों की प्रत्यन्तर्दशा चलती है उसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की प्रत्यन्र्दशा दशा में सूर्यादि ग्रहों की सूक्ष्मदशा भी चलती है। इन सूक्ष्मदशाओं में सर्वाधिक छोटी सूक्ष्मदशा का मान ६ घटी १२ पल तथा सर्वाधिक बड़ी दशा का मान १ मास ३ दिन २० घटी होता है। इस प्रकार सूक्ष्मदशा के द्वारा १६ घटी (६११ घण्टा) १३ दिनों के अन्तर्गत होने वाले रोगों की जानकारी हमें मिल जाती है।

यथा–सूर्य प्रत्यन्तर्दशा में सूर्य की सूक्ष्मदशा आने पर मृत्यु भय।

सूर्य प्रत्यन्तर्दशा में सूर्य की सूक्ष्मदशा आने पर रक्त स्राव।

सूर्य प्रत्यन्तर्दशा में शनि की सूक्ष्मदशा आने पर मानसिक रोग।

इसी प्रकार सूर्य की प्रत्यन्तर्दशा में अन्य ग्रहों की सूक्ष्मदशा से भी रोगी का सम्भावित काल हम १ मास से ६ घंटा के भीतर जान सकते हैं।

प्राणदशा के द्वारा रोगों के सम्भावित काल का निर्धारण–

प्राणदशा का काल २० मिनट से लेकर ५ दिन ३० घटी का होता है। अतः प्राणदशा के माध्यम से किसी जातक के जीवन में होने वाली रोगों की पूर्वसूचना रोग आने के ५ दिन से लेकर २० मिनट के अन्तर तक दे सकते हैं।

सूर्यादि ग्रहों की सूक्ष्मदशा में विभिन्न ग्रहों की प्राणदशा आने पर निम्न रोग की सम्भावना होती है यथा–

सूर्य की सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा के काल में चोर तथा अग्निभय।

सूर्य की सूक्ष्मदशा में राहु की प्राणदशा के काल में चोर तथा विषभय।

सूर्य की सूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा के काल में चोर तथा मृत्यु।

चन्द्र की सूक्ष्मदशा में मंगल की प्राणदशा के काल में चोर तथा क्षय, कुष्ठभय, रक्तस्राव।

चन्द्र की सूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा के काल में चोर तथा मूर्छा, आकस्मिक वेदना।

चन्द्र की सूक्ष्मदशा में केतु की प्राणदशा के काल में चोर तथा विषभय, उदर रोग।

चन्द्र की सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा के काल में चोर तथा मनोव्यथा।

चन्द्र की तरह भौमादि ग्रहों की सूक्ष्मदशा में अन्य ग्रहों की प्राणदशा के समय में रोगों का विचार किया जाता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मानव जीवन में आने वाली बिमारियों के सम्भावित काल का विचार हम ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से जातक की जन्मकुण्डली में प्राप्त होने वाली ग्रहों की दशाओं, ग्रहयोगों, प्रश्नकालीन ग्रह स्थित, गोचरीय ग्रहस्थिति के माध्यम से पूर्णतया कर सकते हैं। ग्रहों की महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा, प्रश्नकालीन तथा गोचरीय ग्रहस्थिति जातक के जीवन में समय-समय पर आने वाले रोगों की सूचना देने में सक्षम है। दशाओं का काल स्थूल होने के कारण बीमारियों की सूचना का काल अपेक्षाकृत लम्बा हो जायेगा इसलिए किसी रोग की सूक्ष्म कालीन सूचना देने के लिए सूक्ष्मदशा, प्राणदशा तथा गोचरीय ग्रहस्थिति का उपयोग ज्यादा सटीक होगा

आज का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान रोग पूर्वरोग की सूचना देने में ज्यादा सक्षम नहीं है, कुछ बीमारियों की पूर्व सूचनायें आधुनिक चिकित्सा उपकरण के माध्यम से हमें स्थूल रूप से अब प्राप्त होने लगी है, जबकि ज्योतिषशास्त्र प्राचीनकाल से ही इस सम्बन्ध में विलक्षण प्रतीभा का धनी है। यदि चिकित्साशास्त्र में ज्योतिष शास्त्र का उपयोग रोगों के निदान में किया जाये तो यह उक्ति चरितार्थ हो जायेगी।

"ज्योर्तिवैद्योनिरन्तरो"।

संदर्भ :

१. सि.शि.ग.अ. श्लोक-२०
२. सि.शि.ग.अ. श्लोक-१
३. वृ.पा.हो.शा.-१८/१८-१९
४. तत्रैव-१८-२० एवं ज्योतिष शा. में रोग विचार, पृ. २४३
५. तत्रैव
६. तत्रैव
७. ज्योतिष शा. में रोगविचार, पृ. १४४
८. जा.पा. दशाफलाध्याय १८/१६
९. तत्रैव-१८/२३

१०. तत्रैव–१८/२३

११. सर्वार्थचिन्तामणि १३/१–४९

१२. सारावली एवं तत्रैव–१३/१–४५ एवं ज्यो.शा. में रोगविचार, पृ. १४५, ४०/६२,७०,७२,५७

१३. सारावली ४०/४४

१४. सर्वार्थचिन्तामणि १४/१–४८, एवं ज्यो.शा. में रोगविचार, पृ. १४५–१४६
वृहज्जातक में कहा है–पारुष्यं क्षमबन्ध मानसयुश्चः पीड़ा च धातु ययात–वृ.जा. ८/१५

१५. सारावली ४०/४४

१६. सर्वार्थचिन्तामणि १५/१–४७

१७. सर्वार्थचिन्तामणि १५/१–४७

१८. सारावली ४०/५०–५१

१९. सर्वार्थचिन्तामणि १५/१–४५

२०. सर्वार्थचिन्तामणि १६/१–२ एवं ज्यो.शा. में रोगविचार, पृ. १४८

२१. फलदीपिका दशफलाध्याय १९/१४

नेत्र रोग

–मुनीश्वर दत्त

चक्षुरक्षायां सर्वकालं मनुष्यैर्यत्नः कर्त्तव्यो जीविते यावदिच्छा।
व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिदिवानां पुंसामन्धानां विद्यमानेऽपि वित्ते।।

नेत्र हमारे शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जो कि हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियों में से एक है। जो हमें बाह्य जगत् का अवलोकन करवाकर उसका ज्ञान करवाता है। नेत्र हमारे शरीर की ललाटास्थि (Frontal Bone) में बने दो गड्ढों में सुरक्षित रहते हैं। जहाँ पर उन्हें चर्बी में से जाने वाले रक्तवाहनियों से पोषण मिलता है। नेत्र की कुछ चपटी व गोलाकार संरचना है। जिसका व्यास आधुनिक चिकित्सकों ने लगभग २:२५ से.मी. माना है।[१] किन्तु आचार्य सुश्रुत ने नेत्र का मान २ अङ्गुल माना जाता है। किन्तु मतान्तर से नेत्र का मान 2 अंगुल मोटा तथा ढाई अंगुल लम्बा व चौड़ा होता है।[२] प्राचीनाचार्यों के मत से इस २ अंगुल नेत्रगोलक आयाम का १/३ भाग कृष्णमण्डल और इस कृष्णमण्डल का १/७ दृष्टिमण्डल तथा इस दृष्टि मण्डल में **'मसूरदलमात्रान्तु'** मसूर के दाने बराबर दृष्टि होती है। नेत्र में ५ मण्डल, ६ सन्धि और ६ पटल होते हैं।[३] आधुनिक चिकित्सकों ने नेत्र को ३ आवरणों में बाँटा है जो कि बाह्य आवरण, मध्य आवरण, अन्त आवरण कहलाता है।

१. बाह्य आवरण– शुभ्र पटल या श्वेत पटल (Scleortic), पारदर्शी पर्दा।

२. मध्य आवरण– मध्य पटल (Choroid) और कृष्ण मण्डल या उपतारा (Lris), नेत्र मणि (Lens) नेत्र मणि के आगे पीछे दो पारदर्शक (पदार्थ) कोष्ठक Acqueous humour तथा Viterous humour

३. अन्त आवरण–नाडी पटल (Retina)।[४]

देखने की क्रिया–

जिस वस्तु को हम देखना चाहते हैं उस पर प्रकाश पड़ना चाहिए। फिर उस वस्तु का प्रतिबिम्ब प्रकाश की किरणें आँखों में पहुँचाती है। वह बिम्ब शुभ्र पटल, पारदर्शी पर्दा, पारदर्शी पदार्थ (Acqueous humour), पुतली, लैन्स तथा पारदर्शी पदार्थ (Viterous humour) से गुजरकर दृष्टिपटल पर केन्द्रित होता है। उसके बाद नाड़ी पटल में दृष्टि तन्त्रिकाओं द्वारा उसका

सन्देश मस्तिष्क तक पहुँचाया जाता है।[५]

नेत्र दोष–

सामान्यतः आधुनिक विज्ञान के अनुसार निकट दृष्टि दोष, दूर दृष्टि दोष, दृष्टि–वैषम्यता, मोतियाबिन्द, वृद्ध दृष्टि दोष, रतोंधी इत्यादि रोग है। किन्तु आचार्य सुश्रुत ने वात, पित, कफ, सन्निपात और आगन्तु के भेद से ७६ नेत्र रोग बताए हैं। **'षट् सप्ततिविकाराणामेषां संग्रहकीर्तना'**।[६] आचार्य माधव ने ७८ नेत्र रोग माने हैं। जिनका उपचार उन्होंने आयुर्वेदिक औषधी के सेवन, लेपन, लंघन, स्नानादि से इनकी चिकित्सा बताई है। आधुनिक चिकित्सकों ने भी नेत्र दोष के निवारण के लिए पौष्टिक भोजन का सेवन, नेत्र दोष के अनुसार विभिन्न तलीय लैंस युक्त चश्मों का प्रयोग करने को कहा है।

ज्योतिषशास्त्र में नेत्र रोग

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमपि कथ्यते।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

वस्तुतः कर्मवाद व पुनर्जन्मसिद्धान्त के अनुसार कर्म के तीन भेद कहे गए हैं। संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण। संचित व प्रारब्ध कर्म हमारे पूर्वार्जित अर्थात् पूर्वजन्मकृत कर्म होते हैं, जो भाग्य के रूप में हमें भोगने पड़ते हैं तथा क्रियमाण कर्म वह हैं जो हम वर्तमान में करते हैं। ज्योतिष शास्त्र में संचित व प्रारब्ध कर्म का ज्ञान जन्मकुण्डली में ग्रहयोगों व उनकी दशाओं से होता है तथा क्रियमाण कर्म का ज्ञान गोचर पद्धति से होता है। अतः ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने जीवन में रोग का प्रमुख कारण पूर्व जन्मकृत कर्म को माना है। कहा भी गया है–

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः॥[७]

यद्यपि मनुष्य के शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं, लेकिन हमें प्रसंगवश से नेत्र रोग का विचार करना है। अतः नेत्र रोग मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं। जन्मजात नेत्र–रोग, आगन्तुक एवं सामान्य। जन्म से अन्धा, काना, भैंगा होना जन्मजात नेत्ररोग का परिणाम है। आगन्तुक नेत्र रोग में दुर्घटनावश नेत्र दोष, अन्य जीवों द्वारा चोट पहुँचाने से तथा चेचकादि अन्य रोगों के परिणाम स्वरूप होते हैं। सामान्य नेत्र रोग वे कहलाते हैं जो आयु के साथ–साथ वृद्धावस्था में भी होते हैं। ज्योतिषशास्त्र के जातक ग्रन्थों में अन्धत्व, आँख फुटना, काणत्व, रंतौधी, भेंगापन एवं अन्य रोगों का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। जातकग्रन्थों में सूर्य को नेत्र का प्रधानकारक ग्रह माना है, तथा चन्द्रमा व शुक्र को उसका सहयोगी माना गया है। सूर्य चन्द्रमा कालपुरुष के नेत्र हैं तथा शुक्र शरीरांग में वीर्य का प्रतिनिधित्व करता है। शरीर में वीर्य की कमी के कारण इसका दुष्प्रभाव

इन्द्रियों पर भी पड़ता है। कुण्डली में द्वितीय भाव से दाएँ नेत्र तथा द्वादश भाव से बाएँ नेत्र का विचार किया जाता है। इनके अलावा षष्ठ व अष्टम भाव से भी नेत्रों का विचार किया जाता है। राशियों में वृष व मीन राशि से नेत्ररोग का विचार किया जाता है। कुण्डली में नेत्र रोग का विचार करने के लिए उपरोक्त तथ्यों का गम्भीरता से अध्ययन करना चाहिए। अतः हम यहाँ पर नेत्र रोग सम्बन्धित ज्योतिषशास्त्रोक्त विविध योगों पर विचार करेंगे।

१. सिंह लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा उन पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो तो जातक अन्धा होता है।[८]

२. सूर्य, शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीयेश छठे, आठवें तथा बारहवें भाव में हो तो जातक अन्धा होता है।[९]

३. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों द्वादशभाव में हो तो बालक जन्म से ही अन्धा होता है।[१०]

४. द्वादश भाव में अकेले सूर्य या चन्द्रमा भी नेत्र नाशक है। सूर्य से दायाँ, चन्द्रमा से बायाँ नेत्र नष्ट होता है।[११]

५. लग्न में राहु तथा सूर्य सप्तम में हो तो जातक निसन्देह अन्धा होता है (या नेत्र दोष होता है)।[१२]

६. द्वादश भाव में शनि मंगल हो तो नेत्रों का नाश होता है। शनि से दायीं, मंगल से बायीं आँख नष्ट हो जाती है।[१३]

७. मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो तो पित्त श्लेष्मा (मोतियाबिन्द) के प्रभाव से दाहिना नेत्र नष्ट हो जाता है तथा यदि यही स्थिति षष्टम भाव से यही स्थिति हो तो बायाँ नेत्र नष्ट होता है।[१४]

८. द्वादश भाव के क्षीण चन्द्रमा हो तथा उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो बायाँ नेत्र नष्ट होता है (काना) तथा इसी स्थिति में सूर्य हो तो दायाँ नेत्र नष्ट होता है।[१५]

९. सूर्य व चन्द्रमा दोनों वक्री ग्रह की राशि में हो तो जातक भेंगा (दृष्टि वैषम्य) होता है।[१६]

१०. कर्क लग्न में सूर्य हो तो जातक को बुदबुदलोचन होता है।[१७]

११. षष्ठेश वक्री ग्रह की राशि में हो तो आँखे दुखती हैं।[१८]

१२. लग्नेश मंगल या बुध की राशि में हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि न हो तो नेत्र में पीड़ा होती है।[१९]

१३. द्वितीयेश व शुक्र साथ में हो तो नेत्र रोग होता है।[२०]

१४. लग्न में सूर्य हो तो दृष्टि कमजोर होती है।[२१]

१५. अष्टम स्थान में सूर्य हो तो दृष्टि कमजोर होती है।[२२]

१६. त्रिकोण में सूर्य हो उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो ज्योति नष्ट हो जाती है।[२३]

नेत्ररोग सम्बन्धित कुण्डलियों का विश्लेषण

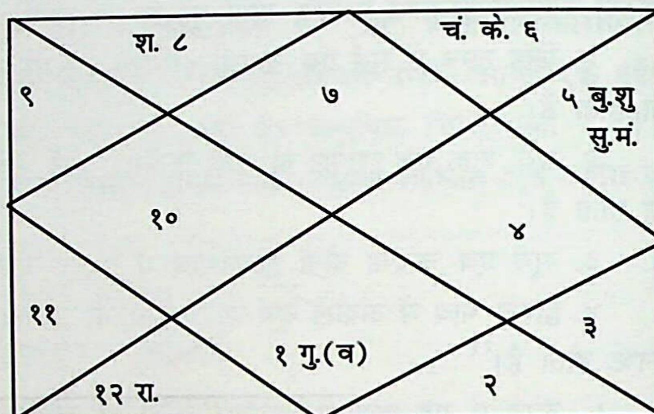
जन्मकुण्डली में नेत्ररोग व नेत्र दोष का अध्ययन करने के लिए सर्वप्रथम लग्नेश की स्थिति, सूर्य चन्द्रमा शुक्र की स्थिति द्वितीय, द्वादश भाव पाप ग्रहों से पीड़ित व युत होना, सूर्य चन्द्रमा शुक्र का त्रिक भाव में होना, मंगल, शनि, राहु इत्यादि पाप ग्रहों से सम्बन्ध होने से कुण्डली में नेत्र विकार उत्पन्न करते हैं।

उदाहरण–

(१) जन्मतिथि–२८.०८.१९८७,

समय– १२:००,

स्थान– रोहडु, शिमला



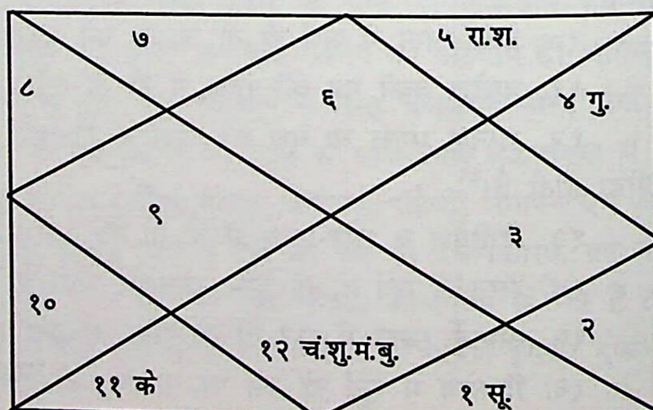
इस जातक का तुला लग्न व कन्या राशि है। जातक की नेत्रों की ज्योति अत्याधिक कमजोर है। जिससे जातक को दूर दृष्टि दोष उत्पन्न हुआ। राहु की दशा में शनि के अन्तरर्दशा में (ई. सन् १९९९) जातक इस रोग से ग्रसित हुआ। जातक को चश्मा राहु की दशा शनि की अन्तर दशा तथा चन्द्रमा के प्रत्यन्तर में लगा। जो कि तीनों ग्रह नेत्र रोग में सहायक है। इस कुण्डली में नेत्र विकार का प्रथम कारण चन्द्रमा क्षीण होकर द्वादश भाव में तथा केतु के साथ युति व चन्द्रमा पर किसी ग्रह की शुभ दृष्टि न होना यहाँ पर नेत्र रोग का कारण बनाता है।[२४] जिससे बाएँ नेत्र में अधिक विकार उत्पन्न होने की आशंका है। शनि मंगल की परस्पर दृष्टि सम्बन्ध व शनि के द्वितीय भाव में होने के कारण दाएँ नेत्र में भी विकार उत्पन्न होता है। द्वितीयेश मंगल, शुक्र के साथ युत होने के कारण नेत्र दोष उत्पन्न करता है।[२५] जातक नेत्र दोष के उपाय के लिए प्रतिदिन 'आदित्यहृदयस्तोत्रम्' का पाठ तथा सूर्य के बीजमन्त्र का जाप करता है।

उदाहरण–

(२) जन्मतिथि–२५.०४.१९७९,

समय– १६:१५,

स्थान– पानीपत हरियाणा



जातक का कन्या लग्न व मीन राशि है। जातक को दूरदृष्टि व निकट दृष्टि नेत्र दोष है। जातक को यह समस्या करीब १८ वर्षों से है। जन्माङ्ग में सर्वप्रथम लग्नेश अपनी नीच राशि में स्थित होने के कारण शिर व शरीर सम्बन्धित अनेक व्याधियाँ उत्पन्न करता है किन्तु यहाँ पर नेत्र रोग को उत्पन्न करने वाला ग्रह शनि है। सर्वप्रथम शनि का द्वादश भाव में होना ही वहाँ पर नेत्र विकार उत्पन्न करता है।[२६]

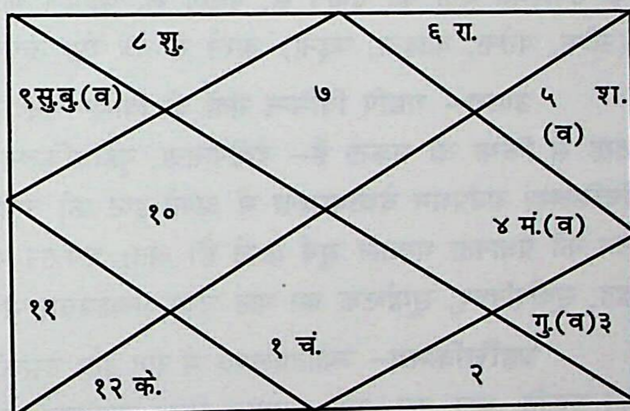
शनि का द्वितीय भाव को देखना तथा सप्तम भाव में द्वितीयेश शुक्र को देखकर इस कुण्डली नेत्र रोग उत्पन्न करता है तथा मंगल की द्वितीयेश शुक्र से युति तथा द्वितीय भाव को देखकर नेत्र दोष उत्पन्न करता है। अष्टम में सूर्य का होना नेत्र की ज्योति कम करता है।[२७] जातक की कुण्डली में शुक्र की विंशोत्तरी दशा में मंगल की अन्तरदशा प्रारम्भ हुई (१९९६ ई.) तो जातक के नेत्रों में समस्या उत्पन्न हुई। जातक को शुक्र की महादशा में मंगल के अन्तर व शनि के प्रत्यन्तर (१९९७ ई.) में चश्मा लग गया। जातक नेत्रदोष के उपाय के लिए प्रतिदिन सूर्योपनिषद् का पाठ करता है सूर्य के बीजमन्त्र का जाप करता है।

उदाहरण–

(३) जन्मतिथि–२१.१२.१९७७,

समय– १५:१५,

स्थान– पानीपत हरियाणा

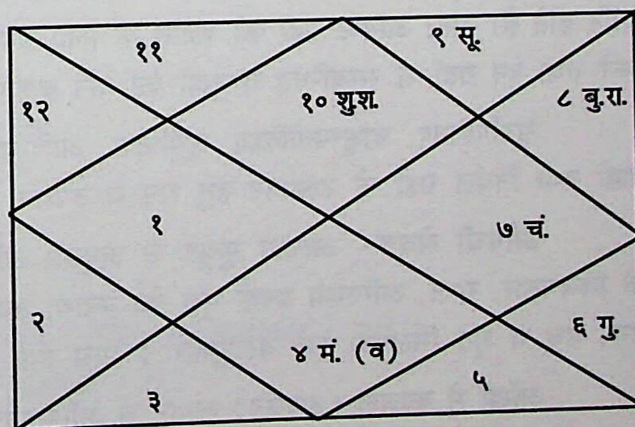


उदाहरण–

(४) जन्मतिथि–२०.१२.१९९२,

समय– ०९:२६,

स्थान– शिमला, हिमाचलप्रदेश



इस जातक की कुण्डली में दुर्घटनावश आँख फुटने का योग है। सर्वप्रथम द्वादश भाव में सूर्य के स्थित होने पर दाहिनी नेत्र दोष (फुटना) का योग है[३०] तथा द्वितीय भाव द्वितीयेश पर नीच मंगल का देखना इसकी पुष्टि और करता है इस जातक के साथ यह दुर्घटना राहु की महादशा में मंगल के अन्तर तथा शनि के प्रत्यन्तर में यह घटना घटी।

नेत्ररोग के कारण व उपाय

शरीर में रोग किन कारणों से उत्पन्न होता है तथा इसके क्या उपाय हैं? इस विषय पर आयुर्वेद व चिकित्साशास्त्रों में सविस्तार वर्णन किया है। किन्तु विस्तारभय के कारण संक्षेप में उसका वर्णन करूँगा।

कारण– उष्णवातावरण में आने के बाद जल का प्रयोग करने से (पानी पीने स्नानादि), अत्यधिक दूर देखने से, सामान्य नींद न आने से, निरन्तर रोने से, क्रोध या शोक करने से, मानसिक क्लेश से, अति मैथुन से, चोट लगने से, रात को शुक्ल-खटाई कुलथी, उड़द खाने से, मल-मूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने से, पसीने से, धूम्रपान करने से, अति वमन से, अति बारीक काम (सीना, परोना, काढना, पढ़ना) करने से नेत्र रोग उत्पन्न होता है।[३१]

उपाय– यद्यपि विभिन्न रोगों के विभिन्न निदान व उपाय हैं, उनका वर्गीकरण कुछ इस तरह से किया जा सकता है– देवोपासना, गृहचिकित्सा, औषधी सेवन, आधुनिक उपकरणों द्वारा चिकित्सा। सर्वप्रथम **देवोपासना** में अपने इष्ट की उपासना करना तथा इस संसार व शरीरांग में नेत्र की प्रधानता भगवान सूर्य करते हैं। अतः भगवान सूर्य को प्रसन्न करने के लिए रविवार का व्रत, सूर्योपनिषद्, सूर्याष्टक का पाठ यथा लब्धोपचार से उनकी पूजा अर्चनादि कर्म करने चाहिए।

ग्रहचिकित्सा– ज्योतिषशास्त्र में रोग और उसकी दैव्योपाश्रय चिकित्सा प्राप्त होती है। ग्रहों की प्रकृति, धातु, रस, अंग, अवयव स्थान बल एवं अन्यान्य विशेषताओं के आधार पर रोग की विनिश्चय किया जा सकता है। सामान्यतः नेत्ररोग के प्रमुख कारण ग्रह सूर्य, चन्द्र, शुक्र, मंगल, शनि होते हैं। अतः अनिष्ट ग्रहों की शान्ति के लिए उनके वैदिक लौकिक व नाम मन्त्रों का जाप करे तथा इन ग्रहों से सम्बन्धित वस्तुओं का दान ब्राह्मण को करें।

सूर्योपनिषद्, चाक्षुष्मतीविद्या, सूर्याष्टक, आदित्यहृदयस्तोत्र का पाठ करने चाहिए। अनिष्ट ग्रहों तथा निर्बल ग्रहों के उत्थापन हेतु रत्न व उपरत्न धारण करें।

औषधी सेवन– आचार्य सुश्रुत के अनुसार आँखों के तेज या प्राणों की इच्छा वाले हो वे विजयसार, साल, अग्निमथ इनके मूल का क्वाथ, उबली हुई उड़द, चित्रक मूलक, आँवले का रस, मधु व घृत मिलाकर इसे बलानुसार ३ मास तक खाए।[३२]

आँखों में काजल (अञ्जन) लगाने से आँख साफ होती है व ज्योति बढ़ती है तथा आँखों

में काजल लगाने से नेत्र वायु व धूप के प्रकोप को बर्दाशत कर लेते हैं। इसलिए आँख में प्रतिदिन काजल लगाना चाहिए।[३३] नेत्र रोगी को जीवन्ती, उत्तम बथुआ, मूली, चिल्ली, करेला, पोय, अरणी, सहिजन आदि का शाक खाना चाहिए। जिससे उसका नेत्र रोग शीघ्र ठीक हो जाएगा।[३४]

नेत्र रोगी को चिकित्सक की सलाहानुसार आँखों में चश्मा लगाना चाहिए। और नेत्रों की सुरक्षा के लिए समय रहते उपाय करते रहना चाहिए। क्योंकि शरीर में नेत्रों का महत्त्व बताने वाली बात नहीं है और आँखें ही हमारे जीवन में वो कड़ी है जो सत्य और असत्य के बीच संशय समाप्त कर वास्तविकताओं का स्पष्ट ज्ञान करवाती है। अतः सावधान रहना जरूरी है।

संदर्भः

१. विद्याद्द्वयंगुलबाहुल्यं स्वांगुष्ठोदरसमितम्।
द्वयंगुलसर्वतः सार्धभिषड्नयनबुद्धुदम्।। सुश्रुत संहिता उत्तरतन्त्र अध्याय १ श्लो. १
२. माधवनिदान नेत्ररोगनिदान से मधुस्त्रावटिका में, पृ. ७५८ श्लो. १
३. वीरसिंहावलोक, नेत्ररोगाधिकार पृ. ६०१
४. शरीर क्रिया और स्वास्थ्य विज्ञान, पृ. १७९-१८२ (ज्ञानेन्द्रिया)
५. वहीं पर, पृ. १८५
६. सुश्रुत संहिता उत्तरतन्त्र अध्याय १, श्लो. ४६
७. प्रश्नमार्ग १३/२९
८. बृहज्जातक निषेधाध्याय ४, श्लो. २०
९. सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय ३, श्लो. ३
१०. सारावली अरिष्टाध्याय १०, श्लो. ५८
११. सारावली अरिष्टाध्याय १०, श्लो. ५९
१२. सारावली अरिष्टाध्याय १०, श्लो. ६०
१३. सारावली अरिष्टाध्याय १०, श्लो. ५७
१४. सारावली अरिष्टाध्याय १०, श्लो. ६३-६४
१५. बृहज्जातक निषेधाध्याय ४, श्लो. २० का उत्तरार्द्ध
१६. जातकतत्त्व प्रकीर्णतत्त्व सूत्र २२५
१७. जातकपरिजात जातकभङ्गाध्याय ६, श्लो. ५३
१८. जातकतत्त्व प्रकीर्णतत्त्व सूत्र २२९
१९. जातकतत्त्व प्रकीर्णतत्त्व सूत्र २३०
२०. जातकतत्त्व प्रकीर्णतत्त्व सूत्र २४०
२१. बृहज्जातक अध्याय २०, श्लो. १
२२. बृहज्जातक अध्याय २०, श्लो. ३
२३. जातकतत्त्व प्रकीर्णतत्त्व सूत्र २४१
२४. व्ययगृहतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रवि-
र्न शुभगदिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः।। बृहज्जातक निषेकाध्याय ४, श्लो. २०
२५. स्वेशशुक्रयोगे नेत्ररोगी। जातकतत्त्व प्रकीर्णतत्त्वसूत्र २३८
२६. सारावली अध्याय १०, श्लो. ५७

२७. 'स्त्रीभिर्गत: परिभवं मदगे पतङ्गे स्वल्पात्मजो निधनगे विकलेक्षणश्च' १ बृहज्जातक अध्याय २०, श्लो. ३

२८. पुष्पवन्तावसद्दृष्टो वा त्रिके वक्रनेत्रे। जातकतत्त्व प्रकीर्णतत्त्व सूत्र २२६

२९. षष्ठेशे वक्रगर्भेऽक्षिरोगी। जातकतत्त्व प्रकीर्णतत्त्व सूत्र २२८

३०. अथवाप्यन्तरयुते द्वादशभे वापि जायमानस्य।
अत्रापि हरेन्नयनं दक्षिणमर्कः शशीसव्यम्।। सारावली अध्याय १०, श्लो. ५९

३१. (क) सुश्रुतसंहिता उत्तरतन्त्र, अध्याय १, श्लो. २५-२७
(ख) माधवविदानम्, नेत्ररोगनिदान, श्लो. १-३

३२. सुश्रुतसंहिता उत्तरतन्त्र, अध्याय २७, श्लो. १२

३३. वहीं पर, उत्तरतन्त्र, अध्याय १४, श्लो. १७-१९

३४. वीरसिंहावलोक नेत्ररोगाधिकार, श्लो. १०२

ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से हृदय रोग एवं निदान

–कपिल देव

प्राच्य विद्याओं एवं भारतीय मनीषा में ज्योतिष एक उपयोगी शास्त्र है। यह हमारे ऋषियों मुनियों के परिपक्व चिन्तन की देन है। हमारे तपस्वियों ने योगसाधना और तपस्या के उच्च शिखर पर "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" का साक्षात्कार कर व्यष्टि एवं समष्टि अर्थात् जीव एवं ब्रह्माण्ड के घटनाचक्र को जानने और पहचानने के सूत्रों का अवलोकन कर उनका नियमबद्ध प्रतिपादन किया जिसे ज्योतिष शास्त्र कहा जाता है।

यह शास्त्र कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, कार्यकारणवाद, एवं सत्कार्यवाद जैसी दार्शनिक सिद्धान्तों की कसौटी पर गणित, वेध एवं सर्वेक्षण जैसे वैज्ञानिक विधियों द्वारा मानस एवं ब्रह्माण्ड के जीवन के घटनाचक्र को जाँच एवं परख कर निरूपित करता है। दर्शन एवं विज्ञान के साथ इस शास्त्र का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाय तो अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है– कि दर्शन एवं भौतिक विज्ञान जहाँ मानव के सामने वैराग्य, निराश, एवं भयोत्पादकता का वातावरण सृजित कर मानव को **किंकर्त्तव्यविमूढ़** बना देता है। वहीं ज्योतिषशास्त्र उसी मानव को निराशा, भय एवं वैराग्य से उन्मुक्त कर कर्त्तव्य के क्षेत्र में लाकर खड़ा कर देता है और उसे वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की जानकारी देकर अपने प्रयत्न से अनुकूल बनाने तथा उसका उपयोग करने की प्रेरणा देता है।

आज के जीवन में जो तनाव, असन्तोष, हड़बड़ी, आपाधापी एवं धींगामुश्ती चारों ओर फैली हुई है, उसका मुख्य कारण यह है कि आज के सुशिक्षित, बुद्धिजीवी एवं शीर्षस्थ लोग भी काल (समय) के बारे में उचित जानकारी से अपरिचित हैं जिससे कि उन्हें अनेक प्रकार के मानसिक द्वन्द्वों का सामना करना पड़ रहा है। भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों में दैवज्ञों ने मनुष्य के मन पटल में उत्पन्न होने वाले विकारों से रोगोत्पत्ति का कारण माना है। वस्तुतः यह सब मनुष्य के तीन प्रकार के कर्मों प्रारब्ध, क्रियमाण, संचय पर अधिक निर्भर करता है। मनुष्य के जीवन में उत्पन्न होने वाले रोगों के कारणों को ज्योतिषशास्त्र और हमारा वैदिकशास्त्र पूर्वजन्मार्जित मानता है। **"जन्मान्तर कृतं कर्म व्याधिरूपेण जायते"**[1] शततापीय तन्त्र में भी कहा गया है कि पूर्वजन्म में किया गया पाप इस जन्म में कुष्ठ, क्षय, प्रमेह, संग्रहणी, अश्मरी आदि रोगों के रूप में उत्पन्न होते हैं। यथा–

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरुपेण जायते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः।।
कुष्ठाञ्च राजयक्ष्मा च प्रमोहो ग्रहणी तथा।
मूत्र कृच्छाश्मरीकासा अतिसार भगन्दरो।।[२]

सामान्यता रोग दो प्रकार के होते हैं–**"साध्य और असाध्य"** जो रोग चिकित्सा द्वारा सिद्ध हो जाते हैं वह रोग साध्य होते हैं, किन्तु जो रोग चिकित्सा एवं किसी अन्य उपायों के माध्यम से ठीक नहीं होते जीवनभर चलते रहते हैं या जिनके द्वारा रोगी की मृत्यु होती है उन्हें असाध्य रोग कहते हैं। जातक ग्रन्थों में मूलतः दैवज्ञों ने रोग साध्यत्व एवं असाध्यत्व का विचार बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से किया है। जातक के जन्माङ्ग में स्थित बारह भावों में भाव, भावेश, कारक के अनुसार एवं सूर्यादि ग्रहों के आधार पर उनके सञ्चार वशात निर्बल होने पर उनके प्रभाव से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते यथा–पाण्डुरोग, हृदयरोग, नेत्ररोग, उदररोग, मुखरोग इत्यादि जन्माङ्ग के लग्न से चतुर्थ भाव जो कि केन्द्र भी है, जातक के हृदय सम्बन्धी रोगों का विचार भी इस भाव से किया जाता है। यह स्थिति चतुर्थेश एवं उस भाव के पाप प्रभाववशात घटित होती है। यह रोग बहुधा मन एवं मस्तिष्क के दबाव पर दबाव के कारण होता है। प्रायः देखा गया है कि आवेश, उद्वेग या संवेग की उग्रतावश दिल का दौरा पड़ता है। ज्योतिषशास्त्र में मन का विचार चतुर्थ भाव से तथा मस्तिष्क का पञ्चम भाव से विचार किया जाता है। जातक के जन्माङ्ग में स्थित भिन्न-भिन्न ग्रहों के प्रभाव एवं उनकी प्रकृति के अनुरूप हृदय रोग का विचार किया जाता है। जातक ग्रन्थों में किसी भी रोग का निर्धारण करने से पूर्व उसके कारकों का विचार किया जाता है, जो कि मुख्य भूमिका का निर्वाह करते हैं–

- सामान्य हृदय कारक-सूर्य, शनि
- हृदयघात कारक-शनि, मंगल
- उच्च रक्त दाब कारक-मंगल, गुरु
- हृच्छूल कारक-राहु, शनि, मंगल

हमारे आर्ष ग्रन्थों में हृदय रोग सम्बन्धी निम्नलिखित वर्णन मिलता है–

हृदये पापसंयुक्ते तदीशे पापसंयुते।
पापग्रहाणां मध्यस्थे हृद्गतं रोगमादिशेत्।।[३]

हृदय स्थान पापग्रह से युक्त हो और उसका अधिपति पापग्रह से युक्त या पापग्रहों के मध्य हो तो जातक को **'हृद्रोग'** कहना चाहिए।

तदीशस्थांशराशीशे क्रूरषष्ट्यंशसंयुते।
क्रूरग्रहेण सन्दृष्टे हृद्गतं शल्यमादिशेत्॥[4]

पञ्चम भाव का अधिपति जिसके नवांश में स्थित हो वह क्रूरषष्ट्यंश में हो तथा क्रूर ग्रह के द्वारा देखा जाता हो तो जातक के **हृदय स्थान में शल्य** होगा–

तन्नाथे नाशभावस्थे नाशस्थानेषु संयुते।
नीचारिमूढभावे वा हृद्गतं रोगमादिशेत्॥[5]

पञ्चम भाव का स्वामी नाश (अष्टम) भाव में हो तथा अष्टमेश से युत हो अथवा नीच स्थान में, शत्रु स्थान में या अस्तगत हो तो जातक को **हृद्रोग** रोग होता है या सम्भावना होती है।

हृच्छूलभाग् जातनरस्तु नित्यं तथैव तौ सप्तमराशियुक्तौ।[6]
धनस्थितस्य शुक्रस्य पापभुक्तौ भृशं वदेत्।
राजदण्डं मनोदुःखं हृद्रोगाक्षिप्रपीडनम्॥[7]

धनभाव में स्थित शुक्र की दशा में यदि पापग्रह का अन्तर हो तो व्यक्ति बार-बार राजदण्ड प्राप्त करता है, मन अत्यन्त दुःखी रहता है, उसे **हृदयादि रोग** तथा नेत्ररोग इत्यादि कष्ट प्राप्त होते हैं।

स्यात्कृष्णपित्ती हृदिकम्पयुक् खलैः सम्पीडितः सन्सलिलेऽरिपे शनौ।
साघेऽथवेज्येऽथ तथाविधे रवौ हृद्रुग् तथेज्येनजभूभुवो भुवि॥[8]

चतुर्थ स्थान में षष्ठेश होकर शनि या गुरु स्थित हो और साथ में पापग्रह भी हों तो मनुष्य के शरीर पर काले चकत्रे (पित्त) होते हैं तथा उसके **हृदय की धड़कन** बड़ी रहती है।

यदि चतुर्थ में पापग्रह से युक्त षष्ठेश सूर्य हों तो मनुष्य **हृदय रोगी** होता है।

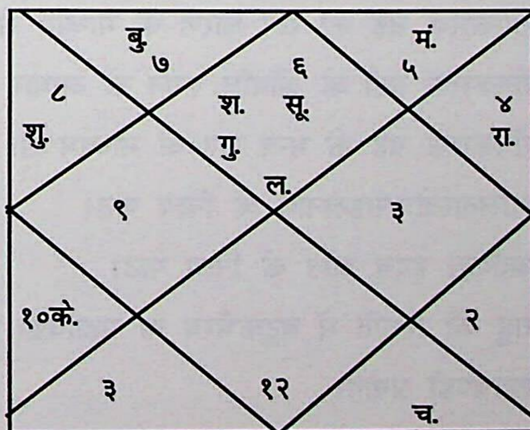
यदि चतुर्थ में गुरु, शनि एवं मङ्गल हों तो भी मनुष्य **हृदय रोगी** होता है।

उदाहरण–

- जन्म तिथि– १४-१०-१९८१

जन्म समय–४.३०

जन्मस्थान–दिल्ली (भारत)

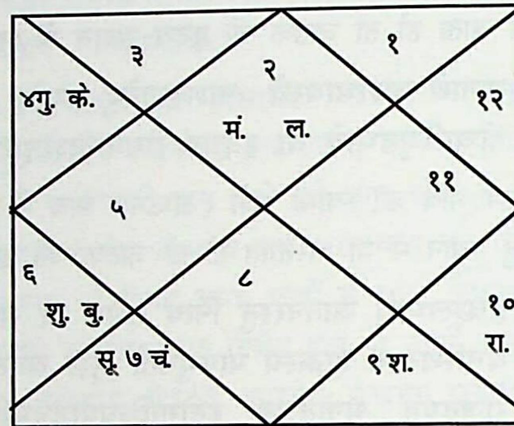


इस जातक कि जन्माङ्ग में कन्या लग्न में स्थित ग्रहों की युति वशात एवं चन्द्रमा के त्रिक भाव में हाने से उनकी प्रभावशीलता की वजह से जब चन्द्रमा कि दशा का प्रारम्भ हुआ तो जातक के हृदय में वेदना शुरू हुई यह १८-४-२०१३ से इनके साथ घटित हो रहा है।

• जन्मतिथि– १८-१०-१९९०

जन्म समय–२०.५८

स्थान–इटावा



जातक के जन्माङ्ग में भौम तथा सूर्य का त्रिक में नीचस्थ होना कफ जन्य रोगों की बढ़ोत्तरी करता है। इस जातक को पाँच वर्ष की आयु में ही साँस सम्बन्धी परेशानी तथा हृदय वेदना की समस्याओं से जूझना पड़ रहा है।

• हृदय रोग सम्बन्धी निदान–

हमारे ज्योतिष आर्ष ग्रन्थों में एवं आयुर्वेद में निहित कई प्रकार से रोगों के निदान के विषय में मिलता है। सर्वप्रथम दैवज्ञों को रोगकारक ग्रह का ज्ञान कर उसकी प्रकृति आदि के अनुरूप उसका निदान सम्बन्धी उपायों का विचार करना चाहिए। दैवज्ञों ने ग्रहों के माध्यम से होने वाली वेदनाओं के लिए पाँच प्रकार के उपायों को उद्घाटित किया है। जो तन्त्र, मन्त्र, रत्न, मणि, औषधि के विषय में वर्णित है।

- रोगकारक ग्रह का रत्न धारण के माध्यम से।
- रोगकारक ग्रहों के औषधि स्नान के आधार पर।
- रोगकारक ग्रह के मन्त्र जप के माध्यम से।
- ललितास्तोत्र/सहस्त्रनाम के नित्य पाठ।
- आदित्य हृदय स्त्रोत के नित्य पाठ।
- राहु की स्थिति में बटुकभैरव या महाविद्या के पाठ।
- शतचण्डी प्रयोग।

- महामृत्युञ्जय जप।
- पाशुपतास्त्र स्तोत्र पाठ।

रास पंचाध्यायी एवं सूर्य सूक्त का पाठ भी मानव को आरोग्यता प्रदान करता है। मनुष्य का धैर्य एवं उसकी तन्मयता अवश्य ही रोगों में स्थिरता लाती है ऐसा आर्ष मुनियों ने ग्रन्थों में वर्णित किया है।

संदर्भ :

१. प्रश्नमार्ग १३/२९
२. सुश्रुत संहिता सूत्र स्थानम् २५/४/१०
३. सर्वार्थचिन्तामणि अ-५, श्लो-६५
४. सर्वार्थचिन्तामणि अ-५, श्लो-६६
५. सर्वार्थचिन्तामणि अ-५, श्लो-६५
६. सर्वार्थचिन्तामणि अ-५, श्लो-७८
७. जातकभूषण भाग-१, अ-६, श्लो-११
८. वृद्धयवनजातक अ-७, श्लो-२

पक्षाघात रोगस्य कारणानि लक्षणानि, समाधानानि च

डॉ. राजेश शर्मा
ज्योतिषविभाग
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ

भारतीय ज्ञानं दार्शनिक पृष्ठभूमौ स्थितमस्ति। वैदिकदर्शनस्यानुसारम् आत्मा जरामृत्युहीनोऽस्ति इत्थं नित्यं चैतन्यञ्चात्मतत्वं कर्मबन्धन हेतोः विविधरोगैः ग्रस्तम्भवति। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' इति सिद्धान्तानुसारं प्राणी कर्मफलानि अवश्यमेव भुङ्क्ते। ज्योतिषशास्त्रेण प्राणीनां कर्मविश्लेषणं तत्कुण्डलीचक्रा धारेण कृत्वा तस्य वर्तमानभाविकष्टानां विषये आभासः प्रदीयते। 'कष्टानां' प्रभावेषु न्यूनता, समाष्टिर्वा कथम् आयायादितिविषयकं चिन्तनं ज्योतिषशास्त्रते क्रियते।

आचार्येण वाराहमिहिरेणोक्तमस्ति -

> **यदुपचितमन्यजन्मतिन तस्य शुभाशुभकर्मणः पङ्क्तिम्**
> **वनञ्जति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इब॥**

शुभाशुभकर्मानुसारं जातकस्य जीवने जायमानानां विधिाघटनानां, यथा, लाभो, हानिः, सुखं, दुःखं रोगः, शोकञ्चेत्या दीनामा् अध्ययनं ज्योतिषशास्त्रेण क्रियते। यत्र च रोगविचारो मुख्यता क्रियते। मनुष्यो यदि स्वस्थोऽस्ति तदा बल-बुद्धि-सामर्ध्य-प्रयोगेण पुरुषार्थचतुष्टयं प्राप्तुं शक्योति। अत एव समुक्तमस्ति - 'शरीरमाघं खलु धर्मसाधनम्' किन्तु कर्मविपाकानुसारं कश्चनाऽपि रोगेण पीड़ितो भवितुं शक्नोति। - यथोक्तमस्ति शरीरं व्याथिममन्दिरम् यद्यपि रोगमुक्त्यर्थं आयुर्वेद-होम्योपैथी-एलोपैथी इत्यादयो विविधाः चिकित्सापद्धतयः प्रचलितास्सन्तिं याश्च साध्यरोगाणाङ्ते लाभाकारिण्यो भवन्ति। किन्तु केषाञ्चन रोगाणां लक्षणम् अन्तिमचरणे परिलक्षितम्भवति। तदा ते असाध्यत्वं वद्यन्ति। एतादृशानां रोगाणां लक्षणं, तत्सम्भावितकालश्चेत्यादेः ज्ञानं रोगारम्भात् प्रागेव भेन्तदा रोगस्य पूर्णतया निदनां सम्भविष्यति। ज्योतिषशास्त्रेम् एतादृश्याः सम्भावनायाः पूर्वानुमानं प्रस्तुतीकर्तुं पूर्णतया संदक्षतां वहति।

ज्योतिषशास्त्रेण विवार्णितो रोगविचारः ग्रन्थेष्वेव सीमितो न भवेत्, तस्य व्यावहारिकता-सिद्धयर्थं वैज्ञानिकमनुसन्धानमद्य आवश्यकीभूतम् अस्ति।

अध्ययने व्यावहारिकी समस्या -

रोगग्रस्तानां जनानां विषये सम्पन् ज्ञानेन तत्कुण्डलीविश्लेषणेन च कश्चनाऽपि निर्णयोडत्र प्राप्तुं शक्तये। अत्र खलु बृहच्छोधस्य आवश्यकता वर्तते। यत्र च सहस्रसंख्याकानां रोगिणां कुण्डली

संद्रष्टव्या। तेषामितिवृत्तेश्च सम्यग् अध्ययनं भवेत्। तत्प्राप्तो निष्कर्षः सत्यं निकषा भवितुं शक्यते। प्रस्तुतोऽयं शोधः अल्पकाले एव यथोपलब्धासु सामग्रीषु आथारितम् अस्ति। यत्र ज्योतिषशास्त्रदृष्ट्या पक्षाघातस्य कारणानि, लक्षणानि, निदानोपायाश्च विविच्यन्ते।

पक्षाघातः -

पक्षस्य (देहार्धस्य) घातं (विनाशनं), यस्मात् यत्र वा पक्षाघातः शरीरस्य भागार्धस्य विनाशो येन रोगेण भवति स एव पक्षाघात उच्यते। हिन्दीभाषयाम् इदं 'लकवा' आंग्लभाषायाञ्च पैरालाइसिस (Paralysis) उच्यते। रोगेऽस्मिन् शरीरस्य अनेकाः स्वकार्यसम्पदानेऽसमर्थाः भवन्ति। पक्षाघात-प्रभावितेषु अङ्गेषु स्पर्शाद्यनुभवो न जायते। पक्षाघातेन मुखं, हस्तौ, शरीरस्य वामभागौ दक्षिणभागौ वा विशिष्टतया प्रभाविताः भवन्ति। रोगेणानेन पीड़ितो जनः विविधासु क्रियासु असमर्थतां प्रकटयति। यदा मस्तिष्क-मध्येऽन्योन्यं सम्बन्धो न जायते। तदा तत्परिणामः शरीरस्य विविधकार्येषु अवरोधरूपेण प्रस्फुटीभवति। पक्षाघातेन मुख्यस्नायुतन्त्रे बाह्यस्नायुतन्त्रे वा विकृति जार्यते। अनेन च मांसपेशीषु आधिक्येन प्रभावो जायते। रोगस्यास्य व्यापकता, आक्रमकता तन्मूलप्रकृतावाधृतो भवति।

पक्षाघातरोगस्य कारणानि -

भारतीयदर्शनानुसारं पक्षाघातादयो रोगाः जन्मान्तरेषु कृतानां महापातकानां सूचक चिहनम् अस्ति।

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्ष्ये बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिः शमः कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा मूत्र कृच्छ्राश्मरीकाशा अतिसार भगन्दरौ दृष्टव्रणं गण्डमाला पक्षघातोऽक्षिनाशनम् इत्येवमादयो रोगाः महापापोद्भवाः गदाः 'एलोपैथी' चिकित्सापद्धत्यनुसारं पक्षाघातरोगस्य नैकानि कारणानि सन्ति। यत्र मुख्यं कारणमिदमेवऽस्ति यत् कदाचिह एक स्मित्रेव समये जायमानेन आधातेन मस्तिष्कस्य कार्य प्रणाली प्रभाविता भवति। दुःखाधिक्यादपि मानसिकास्थितिः प्रभाविता भवति। शिरसि, ग्रीवायाम्बा रक्त-प्रवाहस्य अवरोधेन रक्तवाहिनीषु अन्तः रक्तस्रावः मस्तिष्कभागे हानिं जलयति।

जन्मतः पूर्व, जन्मानन्तरम्बा जायमानेन मष्तिकाय घातेन मुख्यस्नायुतन्त्रे 'लकवा' इत्यस्योत्पतिः भवति, येन हस्तयो पादयोश्च नियन्त्रणं न जायते। आधुनिकचिकित्साशास्त्रभिः रोगस्य कारणनि, लक्षणनि, प्रभावाश्चं विवर्णितास्सन्ति। यत्र (Paralysis) अधः अङ्गपक्षाघातः, (Diplogia) पूर्णाङ्गपक्षाघातः (Hemiplegia) अर्थाङ्गमुखपक्षाघातः, (Quadriplegia) (चतुर्थाश अङ्गपक्षाघातः) (Monoplagia) एकाङ्गपक्षाघातः (Poliomyelitis) विषाणुजन्तिः शिशुपक्षाघातः इत्यादयः प्रमुखाः सन्ति।

आयुर्वेदमतानुसारनम् अस्य रोगस्य कारणं वातविकारोऽस्ति यश्च शिरां स्नायुञ्च शोषयित्वा भागैकं विनाशपति।

यथा, **गहीत्वार्ध ततो वायुः शिरास्नायू विशोष्य च।**
पक्षमन्यतमं हन्ति, सन्धिबन्धान् विमोक्षयन्।।

पक्षाघातरोगस्य लक्षणनि –

प्रायशः पक्षाघातरोगेण पीड़िताः जनाः अस्य रोगस्य विषये पूर्वमेवानुभवन्ति। केषुचित् प्रसङ्गेषु स्नायु जन्मकालादेव उद्भवति। आधुनिक चिकित्साशास्त्रिणां मते, पक्षाघातरोगस्य लक्षणानि पक्षाघातप्रकारे आधृतानि भवन्ति। तथापि अनेके पक्षाघातरोगिणो यदा स्वाङ्गानां संचालनेऽसामर्थ्यं प्रकटयन्ति तदा ज्ञायते यद्रोगोऽयं स्वप्रभावं जनयति। विशेषतया प्रभावितेषु अङ्गेषु चेतनाराहित्यं जायते तसिमन्नङ्गे उष्णतायाः शैत्यस्य वाऽनुभवो न भवति।

आयुर्वेदऽपि पक्षाघातस्य लक्षणानि अधोलिखित रूपेण विवर्णितानि सन्ति –

यथा –

कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः।
एकाङ्गवातं तं के चिदन्ये पक्षवधं विदुः।।

शरीरस्याङ्गेषु अकर्मण्यता, चेतनाराहित्यम्वा जायेते तदा रोगोऽयं विवर्धते इति ज्ञातुं शक्यते।

आचार्यसुश्रुतस्य मते –

अधोगमाः सतिर्यग्गा.......................................नमयेच्च सः

ज्योतिषम् आयुर्वेदश्च –

शरीरस्थेषु त्रिदोषेषु परिगणितस्य वाताविकारस्य चिकित्सापद्धतिः अतीवकठिनाऽस्ति। यतो हि वायुदोषजनिताः नैके रोगाः सन्ति, येषां प्रभावात् कर्मेन्द्रियेषु असामर्थ्यं जायते। आयुर्वेदे, सर्वेऽपि एतादृशाः रोगाः वातदोषेषु, परिगण्यन्ते, एतादृशि सत्यपि आयुर्वेदस्योपचारपद्धतिः सुतरां प्रयुज्यमाना भवति। अस्यकारणमस्ति य ज्योतिषर्युवेदयोः मध्ये घनिष्ठतरः सम्बन्धोऽस्ति। रूणजनस्य कुण्डली विश्लेषणेन रोगस्य गाम्भीर्य संज्ञायते। रोगनिर्णयादयो विषयाः आयुर्वेदसम्बन्धिषु ज्योतिषसम्बन्धिषु च ग्रन्थेषु सुतरां विविक्तास्यन्ति। प्राचीनकाले विशिष्टाः वैद्याचार्याः ज्योतिषशास्त्रं सम्यकृतया जानन्ति स्मः–

प्राव-कल्पना –

ज्योतिषशास्त्रानुसारं रोगोऽयं वातप्रकृति सम्बद्धत्वान् मुख्यरूपेण शनिग्रहेण सह सम्बन्धं प्रकटीकरोति। शनिः स्नायुकारकग्रहोऽस्ति। अतः कुण्डल्यां शनेरशुभा स्थितिः पक्षाघातरोगं प्रबलीकरोति।

जगननाथ म सीन महोदयानां मते, यदि शनिः लग्नेशोभूत्वा पापग्रहैर्युक्तो दृष्टो वा भवति। तदा स्नायुरोगस्य संभावना भवति। सार्धमनेन आत्कारकेण सूर्येण, मनोमस्तिष्क कारकेण चन्द्रेण,

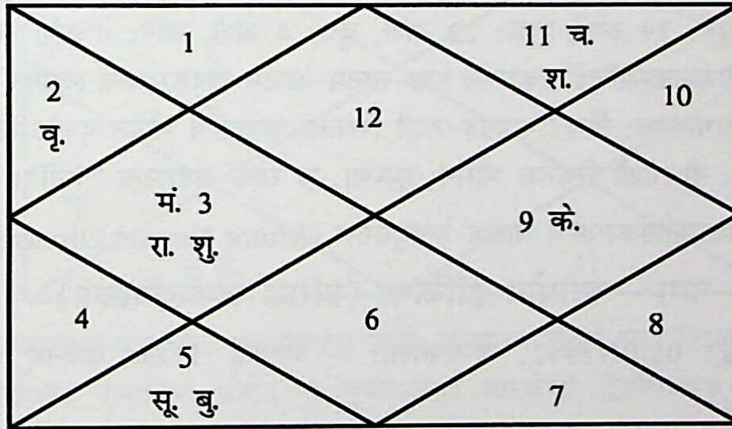
रोगकारकेण भौमेन, शरीरपुष्टिकारकेण गुरूणा च साकं शनेः सम्बन्धः पक्षाघातरोगस्य हेतुत्वेन भवितुं शक्यते। विषयेऽस्मिन् रोगेश-अष्टमेश-व्ययेशभावेषु ग्रहाणाम् अशुभास्थितिः विचारणीया भवति। रोगकारकग्रहाणामन्योन्यं सम्बन्धस्यापि विचारणा विधेयेति।

पक्षाघातरोगेण पीड़ितानां जनानां जन्मकुण्डल्याः ज्योतिषशास्त्राधारितमध्ययनम् -

पक्षाघातरोगेण पीड़ितानां जनानां जन्मकुण्डल्याः अध्ययने विविधाः व्यावहारिकसमस्याः वर्तन्ते यथा-जनमकालस्य अविश्वसनीयता, जातकस्य दृतिवृत्तिविषये ज्ञानाभावः, रोगिणा साकं प्रत्यक्षवार्तायाः अभावः, तल्चिकित्सकेन सार्धं रोगविषये विचारणायाः अभावा: अन्येभ्यः स्रोतोभ्यः रोगिणां विषये ज्ञानस्योभावः इति। एतासां समस्यानां स्थितिकारणात् विहिताध्ययनेन उचितपरिणामो नैव प्राप्यते। किन्तु लघु-अध्ययनेन विहितानेन बृहदनुसन्धानेषु साहाय्यं प्राप्स्यते।

नाम - धनञ्जयमिश्रः

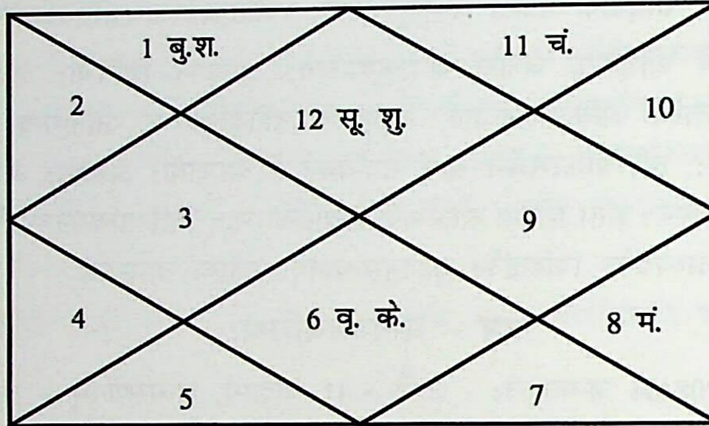
जन्मदिनाङ्कः - 24/08/64 जन्मकालः - रात्रौ 8.41 वादनम्, जन्मस्थानम् - कन्नौज (उ.प्र.)



कुण्डल्यामस्यां सप्तमेशो बुधः (वाणीकारकः), षष्ठेश सूर्येण (आत्मकारकेण, स्नायु-मेरूदण्डेत्यादेः प्रभावकेण च) सह षष्ठे भावे विराजमानोऽस्ति, चन्द्रश्च (मन-बुद्धिकारकः), द्वादशेश-शनिना साकं द्वादशे भावे वर्तते। एतेषाम् अन्योन्यं दृष्टिसम्बन्धोऽपि वर्तते। पापग्रहो राहुः अष्टमेशशुक्रेण (वीर्यकारकेण) द्वितीयेशभौमेन (रक्त-वसा-कारकेण) च सह चतुर्थभावे विद्यमानोऽस्ति। रोगारम्भ समये बुधस्य महादशायां सूर्यस्यान्तर्दशायां शनैः प्रत्यन्तरदशा प्रचलन्ती आसीत्। जातकः 10-11 वर्षेभ्यः पराधीनोऽस्ति। इतस्ततो भ्रमणेऽसमर्थः, कृत्रिमश्वासयुक्तश्चास्ति। जातकः पक्षाघातप्रकारेण वाहकस्नायुरोगेण (डवजवत छमनतवद क्पेमेंम) पीड़ितोऽस्ति।

नाम - माइकल रोबेट:

जन्मदिनाङ्कः - 13/04/1969, जन्मसमयः प्रातः 4.10 वादनम्, जन्मस्थानम्-बोस्टन (यु. एस.ए.) कुण्डलीप्रापयिता - डॉ. पी.वी.वी. सुब्रह्मण्यम्

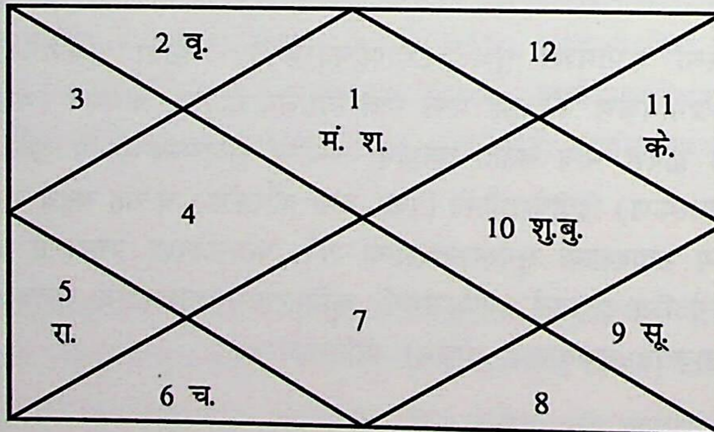


सूर्यः 29 अंशे, शुक्रः 22 अंशे, बुधः 4 अंशे, शनिः 4 अंशे च स्थिताः सन्ति। अतो निकटस्थाः विराजमानास्सन्ति। यत्कारणेन षष्ठ-सप्तम-अष्टम-द्वादशभावानां स्वामिनां युति-सम्बन्धोऽत्र वक्तुं शक्यते। द्वादशभावस्थः चन्द्रः पापग्रह-राशौ स्थित्वा पापग्रहेण भौमेन दृष्टोऽस्ति। सूर्याद् द्वितीये स्थाने स्थितः शनिः नीचराशौ स्थित्वा भौमेन, गुरूणा, च साकं षडाष्टकं निर्माति।

जातकः पक्षाघातप्रकारकेण वाहक स्नायुरोगेण (Motor Neuron Disease) पीड़ितोऽस्ति।

नाम - स्टीफेन-हॉकिंगः (प्रसिद्ध खगोलविज्ञानी)

जन्मदिनाङ्कः 08/01/1942, जन्मकालाः - मध्याह्न 12.00 वादनम्, जन्मस्थानम् - आक्सफोर्ड (यु.के;)

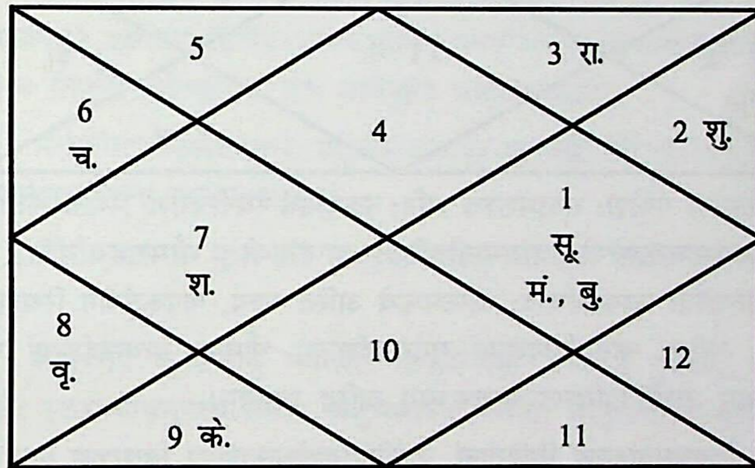


जन्मकालादेज्ञनिम् – अन्तजलितम् षष्ठेशस्य बुधस्य, सप्तमेशस्य शुक्रस्य च मित्रशनेर्गृहे युतिवर्तते

सार्धमनेन तौ सूर्योत् द्वितीय स्थाने वर्तेते। अष्टमेशो भौमः लग्ने स्वगृहे च स्थितोऽस्ति। लग्ने एव भौमेन सह शनिः नीचराशौ स्थितोऽस्ति। यश्च चन्द्रमसः अष्टमे स्थाने वर्तते। जातकः वाहकस्नायुरोगेण (डवजवत छमनतवद क्पेमेंम) पीड़ितोऽस्ति।

नाम – शुभाशीष चौधरी

जन्मदिनाङ्कः 24/04/1983, जन्मसमयः 11.07, पूर्वाह्नं जन्मस्थानम् – भागलपुराम् (बिहारः)



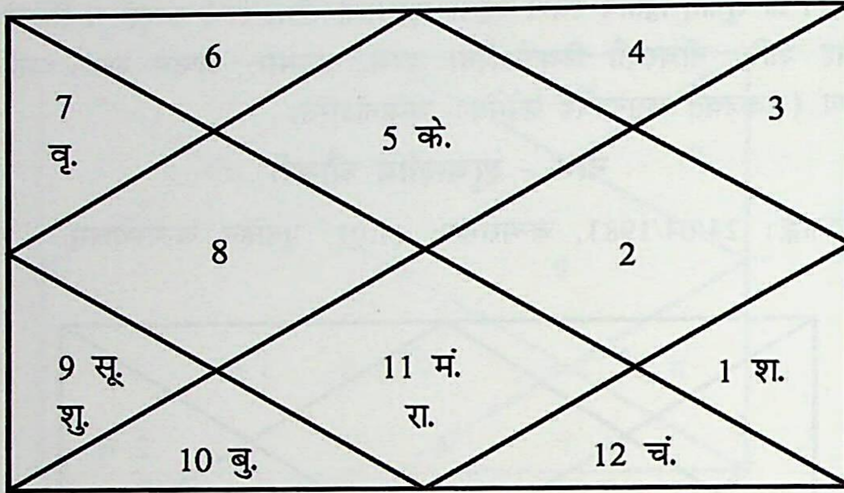
कुण्डल्यामस्यां सप्तमेशः अष्टमेशश्च शनिः उच्चतमे चतुर्थे भावे स्थितोऽस्ति। रोगेशो गुरूः पञ्चमभावे विराजते, पापग्रहेण भौमेन च दृष्टोऽस्ति। मारकेशो द्वितीयेशश्च सूर्यो वर्तते।, यस्य सप्तमेशेन शानि ना सार्ध शत्रुता वर्तते। समसप्तकमपि अस्यां कुण्डलयामस्ति। लग्नेशश्चन्द्रः तृतीयस्थेऽस्ति, तृतीयभावस्वामी बुधः पापग्रहैः सह चन्द्राह अष्टमभावेऽस्ति। चन्द्राद् द्वितीयस्थः शनिः वर्तत् यस्य लग्नभावे पूर्णदृष्टिरथस्ति।

जन्मकालादेर्ज्ञानं जातकेन प्रदत्तमस्ति

द्वादशस्थस्य राहोर्दशायां शनेरन्तर्दशायाञ्च वर्षद्वयं प्राक् जातकः दुर्घटनया ग्रस्तो जातः। एतास्मिन्नेव काले जातकस्य सार्धसप्त अपि प्रारब्धा। जातकः स्वकार्यविधाने सक्षमोजातः इदानीम्।

नाम : मधु मित्तल

जन्मदिनाङ्कः 12/01/1970, जन्मकालः 9.57 रात्रौ जन्मस्थानम् - देहली



कण्डल्यामस्यां षष्ठेशः सप्तमेशश्च शनिः नवमभावे स्वनीचराशौ स्थितोऽस्ति। यस्य अष्टमेशेन गुरूणा साकं समसप्तकयोगो जायमानोऽस्ति। सप्तकयोः भौमराह्वोर्युतिः, लग्नस्थकेतोः समसप्तकयोगश्चाव्यस्ति। व्ययेशश्चन्द्रः अष्टमभावे अस्ति यश्य, पापकर्तृयोगे स्थितोऽस्ति। द्वितीयेशो बुधः षष्ठे भावे अस्ति। केतोर्महादशायां गुरोरन्तर्दशायां, भौमस्य प्रत्यन्तर्दशायां पक्षाघातो जातः। जातकस्य स्वास्थ्यम् अशीतिप्रतिशतव्यावत्सभ्यग् अस्ति इदानीम्।

पक्षाघात विषयमवलम्ब्य विहितानां, ज्योतिषीयशोधकार्याणां विवरणम् -

जयपुरे राजस्थाने डॉ. सुरेन्द्रसोनी-प्रो. अजय कुमार शर्मभ्यां दशसंख्याकानां पक्षाघातरोगिणां जन्मकुण्डल्याः अनुशीलनं ज्योतिषीय दृष्ट्या कृतम्। यन्निष्कर्षाः अधोलिखितास्सन्ति।

1. अधरंगघात (Paraplegia) रोगेण पीड़ितानां जनानां दश-कुण्डलीषु नवसंख्याकासु कुण्डलीषु लग्नेशः केनचित् पापग्रहेण पीडितः आसीत्। एकस्यामेव कुण्डल्यां लग्नेशः शुभस्थितौ आसीत्।

2. मेषराशिः, तस्य स्वामी भौमश्च प्रायः पापग्रहाक्रान्तौ आस्ताम्। अधरंगघाते (Paraplegia) सिंहकन्याराशी अपि पीड़िते आस्ताम्।

3. सर्वास्वपि कुण्डलीषु मुख्यस्नायु-तन्त्रं प्रीाावयितारौ बुधशनी आस्ताम्। मुख्यतया शनिना राहुकेतोः साहाय्येन स्नायुतन्त्रं क्षतिग्रस्तं कृतम्।

4. सर्वासाम् कुण्डलीनामध्ययनेन इदञ्ज्ञातन्यद्रोगस्य कारकाः सुदृढायां स्थितौ वर्तन्ते किन्तु रोगनाशकाः शुभकारकाः निर्बलाः सन्ति।

5. दशास्वामिनाम् अशुभ भावेषु पापग्रहैः सह जायमानेन तत्सम्बन्धेनैव रोगारम्भो जातः। तथैव अन्तरदशायां, प्रत्यन्तरदशायाञ्च अशुभभावेषु पापग्रहैः सह जायमानेन सम्बन्धेनैव रोगारम्भो जातः।

6. अयमपि निष्कर्ष रूपेण वक्तुं शक्यते य ज्योतिष-आयुर्वेदयोर्मध्ये विशिष्टः सम्बन्धो वर्तते। द्वाभ्यामपि अन्तरस्य समर्थनं क्रियते।

निष्कर्ष -

पक्षाघातरोगिणां जन्मकुण्डल्या अध्ययनेन महत्त्वपूर्णानि तथ्यानि संप्राप्तानि।

1. पक्षाघातरोगस्य सम्बन्धे शनिः मुख्यकारकत्वेन आसीत्। शनैः षष्ठ-अष्टम-द्वादश भावाः (त्रिक स्थानम्) एकादश-द्वितीय-सप्तम भावेषु स्वाामिरूपेण नीचस्थाने स्थितिः पापग्रहैः सह युति-दृष्ट सम्बन्ध निर्माण ञ्चेत्यादिकं रोग सम्बर्धने सहायकमासीत्।

2. मनोमस्तिष्ककारकश्चन्द्रः शत्रुक्षेत्रे आसीत्। पापग्रहैः सह संयुतिः दृष्टिसम्बन्धश्चासीत्। एतत्सर्वं मानसिकोद्वेगसंवर्धने सहायकमासीत्।

3. वाणीकारकस्य बुधस्यापि अशुभास्थितिः आसीत् कारणेनानोऽपि रोगोऽयं प्रभावी जातः।

4. सर्वाष्वपि कुण्डलीषु मेषराशेः पापग्रहैस्सह सम्बन्धो दृश्यते। रक्तमांसादिकारको भौमोऽपि पापग्रहैः सहसम्बन्धमुपस्थापयति। अशुभभावेषु स्थितिः अशुभभावाधिपतित्वञ्च भौमविषये सभ्यकृतया दृश्यमाने भवतः।

5. अनेकासु कुण्लीषु पुष्टिकारकस्य गुरोः पापग्रहैः सहसम्बन्धो दृष्टः।

6. पापग्रहाणां गोचरे अशुभस्थितिः, शनेः सार्धसप्तवर्षो, ढैया चेत्यादावपि रोगस्य प्रबलता संदृष्टा।

रोगस्य निदानम् -

1. रोगस्य साध्यतायाः असाध्यतायाश्च ज्ञानम् -

ज्योतिषशास्त्रानुसारं रोगो यदि स्वाती, अश्लेषा आर्द्रा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वा भाद्रपदा, ज्येष्ठा चेत्यादिषु नक्षत्रेषूत्पद्यते। तदा सः असाध्यो भवति। रेवतीनक्षत्रे, अनुराधानक्षत्रे रा रोगारम्भ सति कष्टपूर्वकं प्राणरक्षा भवति। इत्थमेव उन्तराषाढानक्षत्रे, मृगशीर्षनक्षत्रे वा रोगारम्भे सति एकास्मिन् मासे रोगानिवृत्तिः मघानक्षत्रे विंशनिदिनेषु, हस्त-विशाखा-घनिष्ठानक्षत्रे रोगारम्भे सति पञ्चदशदिनेषु रोगनिवृत्तिः भवति। अश्विनी-कृत्तिका-मूलनक्षत्रेषु रोगारम्भे सति नवदिनेषु, भरणी-चित्रा-शतभिषानक्षत्रेषु रोगारम्भे सति एकादशदिनेषु, उत्तरभाद्रपदापुष्य-उत्तराफाल्गुनी-रोहिणी-पुनर्वसुनक्षत्रेषु रोगारम्भे सति सप्तदिनेषु

रोगान्मुक्तिजार्यते आयुर्वेदानुसारम् माषादयो ग्रन्थिकादितैल माषादितैलञ्चेत्यादीनां प्रयोगेण पक्षाघातरोगो विनष्टतां याति।

2. औषधिक्रियायाः विचारः – ज्योतिषशास्त्रानुसारं औषधीनां निर्माणार्थं सेवनार्थञ्च हस्तं, चित्रा, स्वाती, पुष्यं, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, रेवती, अनुराधा, मृगशीर्षः मूलञ्चेत्यादीनि नक्षत्रणि शुभंकराणि सन्ति। सूर्यश्चन्द्रो, बुधो गुरूः, शुक्रश्चेत्यादयो वाराश्च शुभाः सन्ति।

3. रोगारम्भे नक्षत्रपूजनम् –

यस्मिन्नक्षत्रे रोगारम्भेजातः, जन्नक्षत्रस्य स्वर्णप्रतिमा पूजनीया।

यथा –

ऋक्षेशरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिङ्ग मन्त्रेश्च सुगन्धिपुष्पैः।
वस्त्राक्षतैर्गुग्गुल धूपदीपनैवेद्य ताम्बूलफलैश्च सम्यक्।
पूजाञ्च कृत्वामयनाशनाय द्विजाय दद्यादतुलं शिवाय।

4. ग्रहप्रीत्यर्थ दानादीनि कर्माणि –

रोगकारक ग्रहाणां दशायाम्, अन्तर्दशायां, तद्गोचरीय–अशुभस्थितौ च तेषां शान्त्यर्थ दानं, जयः होमकर्म, पूजनादिकर्म चावश्यं विधातव्यानि।

यथा –

सूर्यादीनां मुनिभिरूदिता दक्षिणास्तु ग्रहाणां स्नानैर्दानैर्हवनबलिभिस्तत्र तुष्यन्ति यस्मात्।

दानकालविषये आचार्यवृहस्पतेः कथनम् अस्ति।

यमभे कुजवारस्थे चतुर्दश्यष्टमी युते कृष्णे पापोदये कुर्याद् दुष्टग्रहविवर्जनम् सूर्यादिकानां यद्दानं जपहोमार्चनादिकम् तेषां वारे प्रकुर्वीत सन्तुष्टास्ते भवन्ति हि।

5. रत्नादिधारणम् – अशुभग्रहाणां दोषदूरीकरणार्थं ज्योतिषज्ञपरामर्शानुसारं रत्नं ध्रियते।

कश्यपमुनिमते,

सूर्यादीनाञ्च सन्तुष्ट्यै माणिक्यं, मौक्तिकं तथा ।

सुविद्रुमं मारकतं पुष्परागञ्च वज्रकम्।
नीलगोमदे वैदूर्य धार्य स्वस्वग्रह क्रमात्।

उक्तरत्नानां धारणेऽसामर्थ्य भवति तदा विकल्प रूपेण इमान्युपरत्नानि धर्तुं शक्यन्ते धार्य तुष्ट्यै विद्रमुं भौमभान्वो रौम्यं शुकेन्दोश्च. हेमेन्दुजस्य मुक्ता सुरेर्लोह मर्कात्मजस्य लाजावर्तः कीर्तितः

शेष्योयश्च। इत्थमेव रोगकारक ग्रहाणामशुभफल-निवारणार्थं स्वर्णपत्रे, रजतपत्रे, ताम्रपत्रे, भोजपत्रे वा ग्रहयन्त्तं निर्माय धारणीयमिति। ग्रहकृताया अशुभतायाः निवारणार्थं विविधोपायाः करणीयाः। यथा,

देवब्राह्मणवन्दनाद् गुरूवचः संपादनत्प्रत्यहं सूाधनामभिभ साधूनामभिभाषणाच्छतिरव-श्रेयस्कथकर्णनात् होमादध्वारदर्शनाच्छति मनोभावाज्जपाद्दानतो नो कुर्वान्ति कदाचिदेव पुरूषस्यैवं ग्रहा पीडनम्।



श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-110016